जिसमें क़ुरान है, इसी कुल की हैं। आजकल इस कुल की उत्तराधिकारिणी वर्तमान अरबी तथा हबशी भाषाएँ हैं।

३—हैमिटिक कुल—इस कुल की भाषाएँ उत्तर अफ़्रीका में बोली जाती हैं, जिनमें मिस्र देश की प्राचीन भाषा काप्टिक मुख्य है। प्राचीन काप्टिक के नमूने चित्र-लिपि में खुदे हुए मिलते हैं। उत्तर अफ़्रीका के समुद्र तट के कुछ भाग में प्रचलित लीबियन या बर्बर, पूर्व भाग के कुछ अंश में बोली जाने वाली एथिओपियन, तथा सहारा मरुभूमि की होसा भाषा इसी कुल में हैं। अरब के मुसलमानों के प्रभाव के कारण मिस्र देश की वर्तमान भाषा अब अरबी हो गई है। कुछ समय पूर्व मूल मिस्री भाषा काप्टिक के नाम से जीवित थी। मिस्र देश के मूल-निवासी, जो काप्टिक नाम से ही प्रसिद्ध हैं, अपनी भाषा के उद्धार का प्रयत्न कर रहे हैं।

४—तिब्बती-चीनी कुल—इस कुल को बौद्ध-कुल नाम देना अनुपयुक्त न होगा क्योंकि जापान को छोड़ कर शेष समस्त बौद्ध धर्मावलंबी देश, जैसे चीन, तिब्बत, बर्मा, स्याम तथा हिमालय के अंदर के प्रदेश इसी कुल की भाषाएँ बोलने वालों से बसे हैं।

का नाम पड़ा है। मनुष्य जाति के इस वर्गीकरण के शास्त्रीय होने में संदेह होने पर जफ़ेटिक नाम छोड़ दिया गया, यद्यपि शेष दो नाम अब भी प्रचलित हैं। *भारत-जर्मनिक* से तात्पर्य उन भाषाओं से लिया जाता था जो पूर्व में भारत से लेकर पश्चिम में जर्मनी तक बोली जाती हैं। बाद को जब यह मालूम हुआ कि जर्मनी के और भी पश्चिम में आयर्लैंड की केल्टिक भाषा भी इसी कुल की है, तब यह नाम भी अनुपयुक्त समझा गया। आरंभ में भाषाशास्त्र में जर्मन विद्वानों ने अधिक कार्य किया था और यह नाम भी उन्हीं का दिया हुआ था। जर्मनी में अब भी इस कुल का यही नाम प्रचलित है। *आर्य कुल* नाम सरल तथा उपयुक्त था, किंतु एक तो इससे यह भ्रम होता था कि आर्य-कुल की भाषाएँ बोलने वाले सब लोग आर्य-जाति के होंगे जो सत्य नहीं है, इसके अतिरिक्त ईरानी तथा भारतीय उपशाखाओं का संयुक्त नाम आर्य-उपकुल पड़ चुका था, अतः यह सरल नाम छोड़ देना पड़ा। *भारत-यूरोपीय* नाम भी बहुत उपयुक्त नहीं है। इस नाम के अनुसार भारत और यूरोप में बोली जाने वाली सभी भाषाओं की गणना इस कुल में होनी चाहिये। किंतु भारत में ही द्राविड़ इत्यादि दूसरे कुलों की भाषाएँ भी बोली जाती हैं। इस नाम में दूसरी त्रुटि यह है कि भारत और यूरोप के बाहर बोली जाने वाली ईरानी भाषा की उपशाखा का उल्लेख इसमें नहीं हो सका। इन त्रुटियों के रहते हुए भी इस कुल का यही नाम प्रचलित हो गया है। अंग्रेज़ी तथा आधुनिक विद्वान् इस कुल को *भारतीय-यूरोपीय* नाम से ही पुकारते हैं।

संपूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया में इस कुल की भाषाएँ प्रचलित है। इन सब में चीनी भाषा मुख्य है। ईसा से दो सहस्र वर्ष पूर्व तक चीनी भाषा के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं।

५—यूरल-अलटाइक कुल—इसको तूरानी या सीदियन कुल भी कहते है। इस कुल की भाषाएँ चीन के उत्तर में मंगोलिया, मंचूरिया तथा साइबेरिया मे बोली जाती हैं। तुर्की या तातारी भाषा इसी कुल की है। यूरोप मे भी इसकी एक शाखा गई है, जिसकी भिन्न-भिन्न बोलियाँ रूस के कुछ पूर्वी भागों में बोली जाती हैं। कुछ विद्वान जापान तथा कोरिया की भाषाओं की गणना भी इसी कुल मे करते है। दूसरे इन्हे तिब्बती-चीनी कुल में रखते हैं। फिनलैंड तथा हंगरी की भाषाएँ भी इस कुल की मानी जाती हैं।

६—द्राविड़ कुल—इस कुल की भाषाएँ दक्षिण-भारत मे बोली जाती है, जिनमे मुख्य तामिल, तेलगू, मलयालम तथा कन्नड़ है। यह ध्यान रखना चाहिए कि ये उत्तर-भारत की आर्य भाषाओं से बिलकुल भिन्न हैं।

७—मलै-पालीनेशियन कुल—मलाया प्रायद्वीप, प्रशांत महासागर के सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, इत्यादि द्वीपों तथा अफ्रीका के निकटवर्ती मडागास्कर द्वीप मे इस कुल की भाषाएँ बोली जाती है। न्यूजीलैंड की भाषा भी इसी कुल की है। भारत मे संथालो इत्यादि की कोल-भाषाएँ इसी कुल मे गिनी जाती हैं। मलय-साहित्य तेरहवीं शताब्दी तक का पाया जाता है। जावा मे दो ईसवी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों तक के लेख इसी कुल की भाषाओं में मिले हैं। इन देशों की सभ्यता पर भारत के हिंदू काल का बहुत प्रभाव पड़ा था।

८—बंटू कुल—इस कुल की भाषाएँ दक्षिणी अफ्रीका के आदिम-निवासी बोलते हैं। जंजीबार की स्वाहिली भाषा इसी कुल मे है। यह व्यापारियों के बहुत काम की है।

९—मध्य-अफ्रीका कुल—उत्तर के हैमिटिक तथा दक्षिण के बंटू कुलो के बीच मे, शेष मध्य-अफ्रीका मे, एक तीसरे कुल की बोलियाँ बोली जाती हैं। इनकी गिनती मध्य-अफ्रीका कुल मे की गई है। ब्रिटिश सूडन की भाषाएँ इसी कुल मे है।

१०—अमेरिका की भाषाओं का कुल—उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका के मूल-निवासियों की बोलियों को एक पृथक् कुल मे स्थान दिया गया है। मध्य-अफ्रीका की बोलियों की तरह इनकी संख्या भी बहुत है, तथा इनमें आपस में भेद भी बहुत है। थोड़ी-थोड़ी दूर पर बोली मे अंतर हो जाता है।

११—आस्ट्रेलिया तथा प्रशांत महासागर की भाषाओं के कुल—आस्ट्रेलिया महाद्वीप तथा टस्मेनिया के मूल-निवासियों की भाषाएँ एक कुल के अंतर्गत रक्खी जाती हैं।

प्रशांत महासागर के छोटे-छोटे द्वीपों में दो अन्य भिन्न कुलों की भाषाएँ बोल जाती हैं।

१२—शेष भाषाएँ—कुछ भाषाओं का वर्गीकरण अभी तक ठीक-ठीक नहीं हो पाया है। उदाहरणार्थ, काकेशिया प्रदेश की भाषाओं को किसी कुल में सम्मिलित नहीं किया जा सका है। इनमें जार्जियन का प्रचार सब में अधिक है। यूरोप की बास्क तथा युद्स्कन नाम की भाषाएँ भी बिल्कुल निराली हैं। संसार के किसी भाषा-कुल में इनकी गणना नहीं की जा सकी है। यूरोप के भारत-यूरोपीय कुल की भाषाओं से इनका कुछ भी संबंध नहीं है।

ख—भारत-यूरोपीय कुल[1]

संसार की भाषाओं के इन बारह मुख्य कुलों में भारत-यूरोपीय कुल से हमारा विशेष संबंध है। जैसा बतलाया जा चुका है, इस कुल की भाषाएँ प्रायः संपूर्ण यूरोप, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान तथा उत्तर भारत में फैली हुई हैं। इन्हें प्रायः दो समूहों में विभक्त किया जाता है, जो 'कॆंटुम्' और 'शतम्' समूह कहलाते हैं।[2] प्रत्येक समूह में चार-चार उपकुल हैं। इन आठों उपकुलों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है:—

१—आर्य या भारत-ईरानी—इस उपकुल में तीन मुख्य शाखाएँ हैं। प्रथम में भारतीय आर्य-भाषाएँ हैं तथा दूसरे में ईरानी भाषाएँ। एक तीसरी शाखा दरद या पिशाची भाषाओं की भी मानी जाने लगी है, इनका विशेष उल्लेख आगे किया जायगा।

२—आरमेनियन—आर्य उपकुल के पश्चिम में आरमेनियन है। इसमें ईरानी

---

[1] इ० ब्रि० (१४वाँ संस्करण), देखिए, 'इंडो-यूरोपियन' शीर्षक लेख में भाषा-संबंधी विवेचन।

[2] भारत-यूरोपीय कुल की भाषाओं को दो समूहों में विभक्त करने का आधार कुछ कंठस्थानीय मूल-वर्णों (क, ख, ग, घ,) का इन समूहों की भाषाओं में भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण करना है। एक समूह में ये स्पर्श व्यंजन ही रहते हैं, किंतु दूसरे में ये ऊष्म (सिबिलेंट्स) हो जाते हैं। यह भेद इन भाषाओं में पाए जाने वाले "सौ" शब्द के दो भिन्न रूपों से भली प्रकार प्रकट होता है। लैटिन में, जो प्रथम समूह की भाषाओं में से एक है, 'सौ' के लिए 'कॆंटुम्' शब्द आता है; किंतु संस्कृत में, जो दूसरे समूह की है, 'शतम्' रूप मिलता है। पहला समूह प्रधानतया यूरोपीय है और 'कॆंटुम समूह' के नाम से पुकारा जाता है। दूसरे समूह में पूर्व-यूरोप, ईरान तथा भारत की आर्य-भाषाएँ सम्मिलित हैं। यह 'शतम् समूह' कहलाता है।

शब्द अधिक भाषा में पाए जाते हैं। आरमेनियन भाषा यूरोप और एशिया की भाषाओं के बीच में है।

३—बाल्टो-स्लैवोनिक—इस उपकुल की भाषाएँ काले समुद्र के उत्तर में प्रायः संपूर्ण रूस में फैली हुई हैं। आर्य-उपकुल की तरह इसकी भी शाखाएँ हैं। बाल्टिक शाखा में लिथूएनियन, लैटिश और प्राचीन प्रशियन बोलियाँ हैं। स्लैवोनिक शाखा में बलगेरिया की प्राचीन भाषा, रूस की भाषाएँ, सर्वियन, स्लोवेन, पोलैंड की भाषा, चेक अथवा बोहेमियन और सर्व, ये मुख्य भेद हैं।

४—अलबेनियन—'शतम् समूह' की अंतिम भाषा अलबेनियन है। आरमेनियन की तरह इस पर भी निकटवर्ती भाषाओं का प्रभाव अधिक है। इस भाषा में प्राचीन साहित्य नहीं पाया जाता।

५—ग्रीक—'केंटुम् समूह' की भाषाओं में यह उपकुल सब से प्राचीन है। प्रसिद्ध कवि होमर ने 'ईलियड' तथा 'ओडेसी' नामक महाकाव्य प्राचीन ग्रीक भाषा में ही लिखे थे। सुकरात तथा अरस्तू के मूल-ग्रंथ भी इसी में हैं। आजकल भी यूनान देश में इसी प्राचीन भाषा की बोलियों में से एक का नवीन रूप बोला जाता है।

६—इटैलिक—प्राचीन रोमन साम्राज्य की लैटिन भाषा के कारण यह उपकुल विशेष आदरणीय हो गया है। यूरोप की संपूर्ण वर्तमान भाषाओं पर लैटिन और ग्रीक भाषाओं का बहुत प्रभाव पड़ा है। आधुनिक यूरोपीय भाषाओं में भी विज्ञान के शब्दों का निर्माण इन्हीं प्राचीन भाषाओं के सहारे होता है। इटली, फ्रांस, स्पेन, रूमानिया तथा पुर्तगाल की वर्तमान भाषाएँ लैटिन की पुत्रियाँ हैं।

७—केल्टिक—इस उपकुल की भाषाओं में दो मुख्य भेद हैं। एक का वर्तमान रूप आयर्लैंड में मिलता तथा दूसरे का ग्रेट ब्रिटेन के स्काटलैंड, वेल्स तथा कार्नवाल प्रदेशों में पाया जाता है। इस उपकुल की पुरानी गाल भाषा अब जीवित नहीं है।

८—जर्मनिक या ट्यूटानिक—इसका प्राचीन रूप गाथिक और नार्स भाषाओं में मिलता है। प्राचीन नार्स भाषा से निकट ऐतिहासिक काल में स्वीडेन, नार्वे, डेनमार्क तथा आइसलैंड की भाषाएँ निकली हैं। जर्मन, डच, फ्लेमिश तथा अंग्रेजी भाषाएँ इसी कुल में हैं।

ग—आर्य अथवा भारत-ईरानी उपकुल

भारत-यूरोपीय कुल के इन आठ उपकुलों में आर्य अथवा भारत-ईरानी उपकुल का कुछ विशेष उल्लेख करना आवश्यक है। जैसा कहा जा चुका है, इसकी तीन मुख्य शाखाएँ हैं: १—ईरानी, २—दरद, तथा ३—भारतीय आर्य, अथवा आर्यावर्त्ती।

१—ईरानी[1]—ऐतिहासिक क्रम के अनुसार ईरान की भाषाओं के तीन भेद मिलते हैं—(अ) पुरानी ईरानी के सब से प्राचीन नमूने पारसियों के धर्मग्रंथ अवस्ता में मिलते हैं। अवस्ता के पुराने भाग ईसा से लगभग चौदह शताब्दी पूर्व के माने जाते हैं। अवस्ता की भाषा ऋग्वेद की भाषा से बहुत मिलती-जुलती है। इसमें आश्चर्य भी नहीं, क्योंकि ईरान के प्राचीन लोग अपने को आर्यवर्ग का मानते थे। इसका उल्लेख इनके ग्रंथों में बहुत स्थलों पर आया है। अवस्ता के बाद पुरानी ईरानी भाषा के नमूने कीलाक्षर लिपि में लिखे हुए शिलाखंडों और ईंटों पर पाये गए हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध हुखामनीय वंश महाराज दारा (५२२-४८६ ई० पू०) के शिलालेख हैं। इन लेखों में दारा अपने आर्य होने का उल्लेख गर्व के साथ करता है। (आ) पुरानी ईरानी के बाद माध्यमिक ईरानी काल आता है। इसका मुख्य रूप पहलवी है। ईसवी तीसरी से सातवीं शताब्दी तक ईरान में शासनवंशी राजाओं ने राज्य किया था। उनके संरक्षण में पहलवी साहित्य उन्नति की थी। (इ) नई ईरानी का सबसे प्राचीन रूप फिरदौसी के शाहनामे (१००६ ई०) मिलता है। फिरदौसी (९४०-१०२० ई०) ने सेमिटिक कुल की भाषा के शब्दों को अपनी भाषा में अधिक नहीं मिलने दिया था। परंतु आजकल साहित्यिक ईरानी में अरबी शब्दों की भरमार हो गई है। रूसी तुर्किस्तान की ताजीकी, अफ़गानिस्तान की पश्तो तथा बलूचिस्तान की बलूची भाषाएँ नई ईरानी की ही प्रशाखाएँ हैं।

२—दरद[2]—कुछ यूरोपीय विद्वानों का मत है कि मध्य-एशिया की ओर से आर्य लोग भारत में कदाचित् दो मुख्य मार्गों से आये थे। एक तो हिंदुकुश पर्वत के पश्चिम से होकर काबुल के मार्ग से, और दूसरे वक्षु (आक्सस) नदी के उद्गमस्थान से सीधे दक्षिण की ओर दुर्गम पर्वतों को पार करके। इस दूसरे मार्ग से आनेवाले समस्त आर्य उत्तर भारत के मैदानों में पहुँच गए होंगे, इसमें संदेह है। कम से कम कुछ आर्य हिमालय के पहाड़ी प्रदेश में अवश्य रह गए होंगे। इन लोगों की भाषा पर संस्कृत का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है, क्योंकि संस्कृत का विकास विशेष रूप से भारत में आने के बाद हुआ था। आजकल इन भाषाओं के बोलनेवाले काश्मीर तथा उसके उत्तर में हिमालय के दुर्गम प्रदेशों में पाये जाते हैं। ये भाषाएँ भारतीय असंस्कृत आर्यभाषाएँ कहला सकती हैं? इनका दूसरा नाम पिशाच या दरद भाषाएँ भी हैं। काश्मीरी भाषा इन्हीं में से एक है। इस पर संस्कृत का इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि कुछ दिनों पूर्व तक यह भारत की शेष आर्यभाषाओं

---

[1] इ० ब्रि० (१४वाँ संस्करण), 'ईरानियन लैंग्वेजेज़ ऐंड पर्शियन'। लि० स०, भूमिका, भा० १, अ० ९, 'ईरानियन ब्रांच'।

[2] लि० स०, भूमिका, भा० १, अ० १०।

मे गिनी जाती थी। काश्मीरी भाषा प्रायः शारदा लिपि मे लिखी जाती है। काश्मीरी मुसलमान लोग फारसी लिपि का व्यवहार करते हैं।

३—भारतीय-आर्य अथवा आर्यावर्त्ती—यह शाखा भी तीन कालों में विभक्त की जाती है—प्राचीन काल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल। (अ) प्राचीन काल की भाषा का अनुमान ऋग्वेद के प्राचीन अंशों से ही सकता है। इस काल की भाषा का और कोई चिह्न नहीं रहा है। (ब) मध्यकाल की भाषा के बहुत उदाहरण मिलते हैं। पाली, अशोक की धर्मलिपियों की भाषा, साहित्यिक प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाएँ इसी काल मे गिनी जाती है। (स) आधुनिक काल मे भारत की वर्तमान आर्य-भाषाएँ हैं। इनके भिन्न-भिन्न रूप आजकल समस्त उत्तर-भारत मे बोले जाते हैं। साहित्यिक दृष्टि से इनमे हिंदी, बंगला, मराठी, गुजराती, मुख्य है। इस शाखा की भाषाओ का विस्तृत विवेचन आगे किया गया है।

संसार की भाषाओं मे हिंदी का स्थान क्या है, यह अब स्पष्ट हो गया होगा। ऊपर दिये हुए पारिभाषिक नामों के सहारे संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि संसार के भाषा समूहों मे भारत-यूरोपीय-कुल के भारत-ईरानी उपकुल मे भारतीय-आर्यशाखा की आधुनिक भाषाओं मे से एक मुख्य भाषा हिंदी है।

आ—आर्यावर्त्ती अथवा भारतीय आर्यभाषाओं का इतिहास

क—आर्यों का मूल-स्थान तथा भारत-प्रवेश[1]

यह स्पष्ट है कि भारत की अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं के समान हिंदी भाषा का जन्म भी आर्यों की प्राचीन भाषा से हुआ है। भारतीय आर्यों की तत्कालीन भाषा धीरे-धीरे हिंदी भाषा के रूप मे कैसे परिवर्तित हो गई, यहाँ इसी पर विचार करना है। किंतु सब से पहले इन भारतीय आर्यों के मूल-स्थान के संबंध मे कुछ जान लेना अनुचित न होगा।[2]

---

[1] लिं० स० भूमिका, भा० १, अ० ८।

[2] प्राचीन भारतीय ग्रन्थों मे आर्यों के भारत आगमन के संबंध में कोई उल्लेख नहीं है। पुराने ढंग के भारतीय विद्वानों का मत था कि आर्य लोगों का मूल-स्थान तिब्बत में किसी जगह पर था। वहीं मनुष्य-सृष्टि हुई थी, और उसी स्थान से संसार में लोग फैले। भारत में भी आर्य लोग वहीं से आए थे।

आर्यों का मूल निवासस्थान कहाँ था, इस संबंध में बहुत मतभेद है। भ
के आधार पर यूरोपीय विद्वानों का अनुमान है कि वे मध्य एशिया अथवा दक्षिण यू
में कहीं रहते थे। यह अनुमान इस प्रकार लगाया गया है कि भारत-यूरोपीय
यूरोपीय, ईरानी तथा भारतीय प्रशाखाएँ जहाँ पर मिली हैं, उसी के आस-पास क
भाषाओं के बोलनेवालों का मूल-स्थान होना चाहिए, क्योंकि उसी जगह से ये लो

ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के आधार पर लोकमान्य पंडित बालगंगाधर तिलक ने उत्त
ध्रुव के निकटवर्ती प्रदेश में आर्यों का मूल स्थान होना प्रतिपादन किया था। इस कल्प
का खंडन करते हुए बंगाल के एक नवयुवक विद्वान् ने अपनी पुस्तक 'ऋग्वेदिक इंडिया
में यह सिद्ध करने का यत्न किया कि आर्यों का मूल स्थान भारत में सरस्वती के तट पर
अथवा उसी के उद्गम के निकट हिमालय के अदर के हिस्से में कहीं पर था।
मतानुसार प्राचीन ग्रंथों में ब्रह्मावर्त देश की पवित्रता का कारण कदाचित् यही।
यहीं से जाकर आर्य लोग ईरान में बसे। भारतीय आर्यों के पश्चिम की ओर बसने क
कुछ अनार्य जातियाँ, जिनकी भाषा पर आर्यभाषा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक थ
बाद को भगाई जाने पर यूरोप के मूलनिवासियों को विजय करके वहाँ जा बसी थीं।
यूरोपीय भाषाओं में इसीलिए आर्यभाषा के चिह्न बहुत कम पाये जाते हैं। वास्तव में
वे आर्यभाषाएँ नहीं हैं।

जो कुछ हो, आर्यों के मूलस्थान के विषय में निश्चयपूर्वक अभी तक कुछ नहीं कहा
सकता। संसार के विद्वानों का, जिनमें यूरोप के विद्वानों का आधिक्य है, आजकल यही
है कि आर्यों का आदिम-स्थान पूर्व-यूरोप में बाल्टिक समुद्र के निकट कहीं पर था।
स्थान से ईरान तथा भारत की ओर आने के मार्ग के संबंध में दो मत हैं। पुर
के अनुसार यह मार्ग कैस्पियन समुद्र के उत्तर से मध्य-एशिया में होकर आ
था। थोड़े दिन हुए, पश्चिम ईरान तथा टर्की में कुछ प्राचीन आर्य-देवताओं
(मित्र, वरुण, इन्द्र, नासत्य) एक लेख में मिले हैं। यह लेख लगभग १४०० ई०
का माना जाता है। इस कारण एक नवीन मत यह हो गया है कि भारत-
बोलनेवालों का एक समूह काले समुद्र के पश्चिम से होकर आया हो तो कोई
नहीं। इसी समूह में से कुछ लोग ईरान में बसते हुए आगे मध्य-एशिया तथा
ओर बढ़ सकते हैं। मध्य-एशिया की प्रशाखा के लोग हिंदूकुश को पार्टी
बाद को दर्दिस्तान तथा काश्मीर में कदाचित् आ बसे हों। ये ही वर्तमान
दरदभाषा के बोलनेवालों के पूर्वज रहे होंगे। ईरानी विद्वान् आर्यों का मूल
भारत मानते हैं।

मार्गों में विभक्त हुए होंगे। सब से पहले यूरोपीय शाखा अलग हो गई थी, क्योंकि उसकी भाषाओं और शेष आर्यों की भारत-ईरानी भाषाओं में बहुत भेद है। ये शेष आर्य कदाचित् बहुत समय तक ईरान में साथ रहते रहे। बाद को एक शाखा ईरान में रह गई और दूसरी भारत में चली आई। इन दोनों शाखाओं के प्राचीनतम ग्रंथ अवेस्ता और ऋग्वेद हैं, जिनकी भाषा एक-दूसरी से बहुत कुछ मिलती है। उच्चारण के कुछ साधारण नियमों के अनुसार परिवर्तन करने पर दोनों भाषाओं का रूप एक हो जाता है।

भारत में आने वाले आर्य एक ही समय में नहीं आये होंगे, किंतु संभावना ऐसी है कि ये कई बार में आए होंगे। वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं से पता चलता है कि आर्य लोग भारत में दो बार अवश्य आए थे।[1] ऋग्वेद तथा बाद के संस्कृत-साहित्य में भी इसके कुछ प्रमाण मिलते हैं।[2] यदि वे एक-दूसरे से बहुत समय के अनंतर आए होंगे, तो इनकी भाषा में भी कुछ भेद हो गया होगा। पहली बार में आने वाले आर्य कदाचित् काबुल की घाटी के मार्ग से आए थे, किंतु दूसरी बार में आने वाले आर्य किस मार्ग से आए थे, इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। संभावना ऐसी है कि ये लोग काबुल की घाटी के मार्ग से नहीं आए, बल्कि गिलगित और चित्राल होते हुए सीधे दक्षिण की ओर उतरे थे।

पंजाब में उतरने पर इन नवागत आर्यों को अपने पुराने भाइयों से सामना करना पड़ा होगा, जो इतने दिनों तक इनसे अलग रहने के कारण कुछ भिन्न-भाषाभाषी हो गए होंगे। ये नवागत आर्य कदाचित् पूर्व पंजाब में सरस्वती नदी के निकट बस गए। इनके चारों ओर पूर्वागत आर्य बसे हुए थे। धीरे-धीरे ये नवागत आर्य फैले होंगे। संस्कृत-

---

[1] भाषाशास्त्र के नियमों के अनुसार भाषाओं के सूक्ष्म भेदों पर विचार करने के अनंतर हार्नली साहब भी (ग्रा० ई० हि० पं०, भूमिका, पृ० १२) इसी मत पर पहुँचे थे। उनके मत से प्राचीन उत्तर भारत में दो भाषा-समुदाय थे—एक शौरसेनी भाषा-समुदाय तथा दूसरा मागधी भाषा-समुदाय। मागधी भाषा का प्रभाव भारत के पश्चिमोत्तर कोने तक था। शौरसेनी के दबाव के कारण पश्चिम में इसका प्रभाव धीरे-धीरे कम हो गया। ग्रियर्सन महोदय भी कुछ-कुछ इसी मत की पुष्टि करते हैं (लि० स० भूमिका, भा० १, पृ० ११६)।

[2] ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं से भरतों-त्रित्सुओं का राजा दिवोदास तत्कालीन जान पड़ता है। अन्य ऋचाओं में दिवोदास के पौत्र पंजाब के राजा सुदास का वर्णन समकालीन की भाँति है। राजा सुदास की विजयों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उन्होंने कुछ जन को एक अन्य आर्य अग्नि पर, जो पूर्व यमुना के किनारे रहती थी, विजय प्राप्त की

साहित्य में एक 'मध्यदेश'¹ शब्द आता है। इसका व्यवहार आरंभ में वे
पंचाल और उसके उत्तर के हिमालय प्रदेश के लिए हुआ है। बाद को इस
अभिप्रेत भूमिभाग की सीमा में विकास हुआ है। संस्कृत ग्रंथों ही के आधार पर हि
और विंध्य के बीच तथा सरस्वती नदी के लुप्त होने के स्थान से प्रयाग त
भूमिभाग 'मध्यदेश' कहलाने लगा था। इस भूमिभाग में बसने वाले लोग उत्तम
गये हैं और उनकी भाषा भी प्रामाणिक मानी गई है। कदाचित् यह नवागत आर्य
ही बस्ती थी, जो अपने को पूर्वागत आर्यों से श्रेष्ठ समझती थी। वर्तमान आर्यभ
हिंदी चारों ओर की अन्य आर्यभाषाओं से अपनी विशेषताओं के कारण पृथक् है।

इसी भूमिभाग की शौरसेनी प्राकृत अन्य प्राकृतों की अपेक्षा संस्कृत के अधिक निक
है। कुछ विद्वान् साहित्यिक संस्कृत का उत्पत्ति-स्थान भी शूरसेन (मथुरा) प्रदेश ह
मानते हैं।

ख—प्राचीन भारतीय आर्यभाषा-काल¹

(१५०० ई० पू०—५०० ई० पू०)

भारतीय आर्यों की तत्कालीन भाषा का थोड़ा-बहुत रूप अब केवल ऋग्वेद
को मिलता है। ऋग्वेद की ऋचाओं की रचना भिन्न-भिन्न देशकालों में हुई थी

। पुरु लोगों को 'मृध्रवाच' अर्थात् 'अशुद्ध भाषा बोलने वाले' कह कर संबोधन
उत्तर-भारत के आर्यों में इस भेद के होने के चिह्न बाद को भी बराबर मिलते
वेद में ही पश्चिम के ब्राह्मण वशिष्ठ और पूरब के क्षत्रिय विश्वामित्र की अनबन
कुछ उल्लेख मिलता है। विश्वामित्र ने रुष्ट होकर वशिष्ठ को 'यातुधान' अथ
कहा था। यह वशिष्ठ को बहुत बुरा लगा। महाभारत का कुरु और पंचालों
भी इस भेद की ओर संकेत करता है। लैसन साहब ने यह सिद्ध करने का यत्न किय
पंचाल लोग कुरुओं की अपेक्षा पहले से भारत में बसे हुए थे।
इस कल्पना की पुष्टि होती है। महाराज दशरथ मध्य-देश के पूर्व में क
राजा थे, किंतु उन्होंने विवाह मध्य-देश के पश्चिम केकय जनपद में किया।
लोगों का मूल-स्थान सतलज के निकट इक्षुमति नदी के तट पर था। ये
या कल्पनाएँ पश्चिमी विद्वानों की खोज के फल-स्वरूप हैं।
शब्द के विस्तृत विवेचन के लिए ना० प्र० प०, भा० ३, अं० १ में लेख
षा का विकास' शीर्षक लेख देखिये।
स०, भूमिका, भा० १, अ० ११-१२।

उनका संपादन कदाचित् एक ही हाथ से एक ही काल मे होने के कारण उसमे भाषा का भेद अब अधिक नहीं पाया जाता। ऋग्वेद का संपादन पश्चिम 'मध्यदेश' अर्थात् पूर्वी पंजाब और गंगा के उत्तरी भाग में हुआ था, अतः यह इस भूमिभाग के आर्यों की भाषा का बहुत कुछ पता देता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि ऋग्वेद की भाषा साहित्यिक है। आर्यों की अपनी बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा मे अंतर अवश्य रहा होगा। उस समय आर्यों की बोली का ठेठ रूप अब हमे कही नहीं मिल सकता। उसकी जो थोड़ी बहुत बानगी साहित्यिक भाषा में आ गई हो, उसी को खोज की जा सकती है। ऋग्वेद के अतिरिक्त उस समय की भाषा का अन्य कोई भी आधार नहीं है। ऋग्वेद का रचना-काल ईसा से एक सहस्र वर्ष से भी अधिक पहले का माना जाता है। इन आर्यों की ठेठ बोली प्राचीन भारतीय आर्यभाषा कहला सकती है। इस काल की बोलचाल की भाषा से मिश्रित साहित्यिक रूप ऋग्वेद में मिलता है। आर्यों की इस साहित्यिक भाषा में परिवर्तन होता रहा। इसके नमूने ब्राह्मण-ग्रंथो और सूत्र-ग्रंथो मे मिलते हैं। सूत्र-काल के साहित्यिक रूप को वैयाकरणों ने बाँधना आरंभ किया। पाणिनि ने (५०० ई० पू०) उसको ऐसा जकड़ा कि उसमे परिवर्तन होना बिल्कुल रुक गया। आर्यों की भाषा का यह साहित्यिक रूप संस्कृत नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसका प्रयोग उस समय से अब तक संपूर्ण भारत मे विद्वान् लोग धर्म और साहित्य में करते आए हैं। साहित्यिक भाषा के अतिरिक्त आर्यों की बोलचाल की भाषा में भी परिवर्तन होता रहा। ऋग्वेद की ऋचाओं से मिलती-जुलती आर्यों की मूल बोली भी धीरे-धीरे बदली होगी। जिस समय 'मध्यदेश' मे संस्कृत साहित्यिक भाषा का स्थान ले रही थी, उस समय को वहाँ के जन-समुदाय की बोली[1] के नमूने अब हमे प्राप्त नहीं हैं।

किंतु पूर्व मे तत्कालीन परिवर्तित रूप बुद्ध भगवान के धर्म-प्रचार करने के कारण सर्वमान्य हो गया। इस मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा-काल की बोली का कुछ नमूना हमें पाली मे मिलता है। वास्तव मे पाली में लोगों की बोली और साहित्यिक रूप का मिश्रण है। नवीनतम मत के अनुसार साहित्यिक पाली भाषा का मूलाधार पश्चिमी मध्यदेश की ही कोई समकालीन बोली थी। कुछ दिन पहले तक विद्वान् पाली का मूलाधार कोसल अथवा मगध की समकालीन बोली को समझते थे। उत्तर भारत के आर्यों की बोली मे

---

[1] 'साहित्यिक भाषा से भिन्न लोगों की बोलियाँ भी अवश्य थीं, इसके प्रमाण हमें तत्कालीन संस्कृत साहित्य में मिलते हैं। पतंजलि के समय में व्याकरण-शास्त्र जानने वाले केवल विद्वान् ब्राह्मण शुद्ध संस्कृत बोल सकते थे। अन्य ब्राह्मण अशुद्ध संस्कृत बोलते थे, तथा साधारण लोग 'प्राकृत भाषा' (स्वाभाविक बोली) बोलते थे।

भिन्न रूप—पूर्वी, पश्चिमी तथा पश्चिमोत्तरी—अवश्य थे। कोई दक्षिणी रूप् इस पर या नहीं, इस संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इस काल की साहित्यिक भाषा पाली कदाचित् शौरसेनी की किसी प्राचीन बोली के आधार पर बनी थी।

२—साहित्यिक प्राकृत भाषाएँ—(१ ई०—५०० ई०)—लोगों की बोली में बराबर परिवर्तन होता रहा और अशोक की धर्मलिपियों की भाषाएँ ही बाद को 'प्राकृत' के नाम से प्रसिद्ध हुई। मध्यकाल में संस्कृत के साथ-साथ साहित्य में इन प्राकृतो का भी व्यवहार होने लगा। इनमे काव्यग्रंथ तथा धर्म-पुस्तकें लिखी जाने लगी। सस्कृत नाटको मे भी इन्हें स्वतंत्रतापूर्वक बराबर की पदवी मिलने लगी। समकालीन अथवा कुछ समय के अनंतर होने वाले विद्वानों ने इन प्राकृत भाषाओं के व्याकरण रच डाले। साहित्य और व्याकरण के प्रभाव के कारण इनके मूल-रूप मे बहुत अन्तर हो गया। इन प्राकृतों के साहित्यिक रूपों ही के नमूने आजकल हमे प्राकृत ग्रंथों मे देखने को मिलते हैं। उस समय की बोलियों के शुद्ध रूप के संबंध मे हम लोगों को अधिक ज्ञान नहीं है, तो भी अशोक की धर्मलिपियों की भाषा की तरह उस समय भी पूर्वी और पश्चिमी दो भेद तो स्पष्ट ही थे। पश्चिमी भाषा का मुख्य रूप शौरसेनी प्राकृत था और पूर्वी का मागधी प्राकृत, अर्थात् मगध या दक्षिण ~~~ग। इन दोनों के बीच मे कुछ भाग की भाषा का रूप मिश्रित था, यह अर्ध-
हाराष्ट्री प्राकृत आजकल के बरार प्रांत और उसके निकटवर्ती
। एक अन्य मत के अनुसार यह शौरसेनी की ही काव्यगत शैली
४८
पश्चिमोत्तर प्रदेश मे कदाचित् एक भिन्न भाषा बोली जाती थी,
लोगों ...ाल में सिन्धु नदी के तट पर बोली जाने वाली भाषा से निकली होगी।
.र्थी की स्थिति का प्रमाण अपभ्रंशों से मिलता है।

३—अपभ्रंश भाषाएँ—(५०० ई०—१००० ई०)—साहित्य मे प्रयुक्त होने पर वैयाकरणों ने 'प्राकृत' भाषाओं को कठिन अस्वाभाविक नियमों से बाँध दिया, किंतु जिन बोलियों के आधार पर उनकी रचना हुई थी, वे बाँधी नही जा सकती थीं। लोगों की ये बोलियां विकास को प्राप्त हो गई। व्याकरण के नियमों के अनुकूल मँजी और बँधी हुई साहित्यिक प्राकृतों के सम्मुख वैयाकरणों ने लोगों की इन नवीन बोलियों का अपभ्रंश अर्थात् बिगड़ी हुई भाषा नाम दिया। भाषातत्ववेत्ताओं की दृष्टि मे इसका वास्तविक अर्थ, विकास को प्राप्त हुई भाषाएँ होगा।

जब साहित्यिक प्राकृतें मृत भाषाएँ हो गईं, उस समय इन अपभ्रंशों का भी भाग्य जगा और इनको भी साहित्य के क्षेत्र में स्थान मिलने लगा। साहित्यिक अपभ्रंशों का आधार प्राकृतों को मानते थे। वे लेखक तत्कालीन बोली के आधार पर आवश्यक परिवर्तन करके साहित्यिक प्राकृतो को ही अपभ्रंश बना लेते थे, शुद्ध अपभ्रंश अर्थात्

फिर भी ही असली बोली में नहीं लिखते थे। अतएव साहित्यिक प्राकृत
साहित्यिक अपभ्रंशों से भी लोगों की तत्कालीन असली बोली का ठीक प
सकता। तो भी यदि ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाय, तो उस समय की बोल
कुछ प्रकाश अवश्य पड़ सकता है।

प्रत्येक प्राकृत का एक अपभ्रंश रूप होगा, जैसे शौरसेनी प्राकृत का शौरसेनी
मागधी प्राकृत का मागधी अपभ्रंश, महाराष्ट्री प्राकृत का महाराष्ट्री अपभ्रंश
वैयाकरणों ने अपभ्रंशों को इस प्रकार विभक्त नहीं किया था। वे केवल तीन अ
के साहित्यिक रूप मानते थे। इनके नाम नागर, व्राचड और उपनागर थे। इनमें
अपभ्रंश मुख्य थी। वह गुजरात के उस भाग में बोली जाती थी, जहाँ आजकल न
ब्राह्मण बसते हैं। नागर ब्राह्मण विद्यानुराग के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। इन्हीं के नाम
कदाचित् नागरी अक्षरों का नाम पड़ा। नागर अपभ्रंश के व्याकरण के लेखक हेमच
(बारहवीं शताब्दी) गुजराती ही थे। हेमचन्द्र के मतानुसार नागर अपभ्रंश का आधा
शौरसेनी प्राकृत था। व्राचड अपभ्रंश सिंध में बोली जाती थी। उपनागर अपभ्रंश व्राच
तथा नागर के मेल से बनी थी, अतः यह पश्चिमी राजस्थान और दक्षिणी पंजाब की बोली
होगी। अपभ्रंशों के संबंध में हमारे ज्ञान के मुख्य आधार हेमचन्द्र हैं, किंतु इन्होंने केवल
नागर (शौरसेनी) अपभ्रंश का ही वर्णन किया है। मार्कण्डेय के व्याकरण से भ
अपभ्रंशों के संबंध में अधिक सहायता नहीं मिलती। इन अपभ्रंश भाषाओं का काल
शताब्दी से दसवीं शताब्दी ईसवी तक माना जा सकता है। अपभ्रंश भाषाएँ द्वि
काल की अंतिम अवस्था की द्योतक हैं।

घ—आधुनिक भारतीय आर्यभाषा-काल

(१००० ई० से वर्तमान समय तक)

इनमें भारत की वर्तमान आर्य-भाषाओं की गणना है। इनकी उत्पत्ति प्राकृत भ
ही हुई थी, बल्कि अपभ्रंशों से हुई थी। शौरसेनी अपभ्रंश से हिंदी, राजस्
नी और पहाड़ी भाषाओं का संबंध है। इनमें से गुजराती, राजस्थानी तथा पहाड़ी भाष
हैं विशेषतया शौरसेनी के नागर अपभ्रंश के रूप से है। बिहारी, बंगला, आस
ड़िया का उद्गम मागध अपभ्रंश से है। पूर्वी हिंदी का अर्धमागधी अपभ्रंश से त
का महाराष्ट्री अपभ्रंश से संबंध है। वर्तमान पश्चिमोत्तरी भाषाओं का अप
ना। भारत के इस विभाग के लिए प्राकृतों का कोई साहित्यिक रूप नहीं मिलता।
लिए हेमचन्द्र की व्राचड अपभ्रंश का सहारा अवश्य है। ...
रूप की कल्पना की जा सकती है। यह ...

होगी। पंजाबी का संबंध भी कैकय अपभ्रंश से ही माना जाता है, किन्तु बाद को इस पर शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव बहुत पड़ा है। पहाड़ी भाषाओं के लिए खस अपभ्रंश की कल्पना की गई है, किंतु बाद को यह राजस्थानी से बहुत प्रभावित हो गई थी।[1]

वर्तमान भारतीय आर्यभाषाओं का साहित्य में प्रयोग कम से कम तेरहवीं शताब्दी ईसवी के आदि से अवश्य प्रारंभ हो गया था तथा अपभ्रंशों का व्यवहार चौदहवीं शताब्दी तक साहित्य में होता रहा था। किसी भाषा के साहित्य में व्यवहृत होने के योग्य बनने मे कुछ समय लगता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि

---

[1] अपभ्रंशों या प्राकृत और आधुनिक आर्यभाषाओं का इस तरह का संबंध बहुत संतोषजनक नहीं मालूम पड़ता। उदाहरण के लिए बिहारी, बंगाली, उड़िया तथा आसामी भाषाओं का संबंध मागधी अपभ्रंश से माना जाता है। यदि इसका केवल इतना तात्पर्य हो कि मागधी अपभ्रंश के रूपों में थोड़े से ऐसे प्रयोग पाये जाते हैं जो आजकल इन समस्त पूर्वीय आर्यभाषाओं में भी मिलते हैं, तब तो ठीक है; किंतु यदि इसका यह तात्पर्य हो कि ५०० ई० से १००० ई० के बीच में बिहार, बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा में केवल एक बोली थी, जिसका साहित्यिक रूप मागधी अपभ्रंश है, तब यह बात संभव नहीं मालूम होती। एक बोली बोलनेवाली जनता भी यदि इतने विस्तृत भूमि-खंड में फैल कर अधिक दिन रहेगी तो उसकी बोली के अनेक रूपांतर हो जाना स्वाभाविक है। इसी प्रकार मागधी प्राकृत समस्त पूर्वी प्रदेशों की साहित्यिक भाषा तो भले ही रही हो, किंतु १ ईसवी से ५०० ईसवी के बीच में इस प्राकृत से संबंध रखने वाली एक ही बोली समस्त पूर्वी प्रदेशों में बोली जाती हो, यह संभव नहीं प्रतीत होता। मेरी धारणा तो यह है कि मागधी प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाएँ मगध-प्रदेश की बोली के आधार पर बनी हुई साहित्यिक भाषाएँ रही होंगी। मगध के राजनीतिक प्रभाव के कारण वहाँ की बोली के आधार पर बनी हुई ये साहित्यिक भाषाएँ समस्त पूर्वी प्रदेशों में मान्य हो गई होंगी। इन प्राकृत तथा अपभ्रंश कालों में बंगाल, आसाम, उड़ीसा, मिथिला तथा काशी प्रदेश की बोलियाँ भिन्न-भिन्न रही होंगी। साहित्य में प्रयोग न होने के कारण अपभ्रंश तथा प्राकृत काल के इन प्रदेशों की भाषा के नमूने हमें उपलब्ध नहीं हो सके। मेरे अनुमान से बोलियों का यह भेद ६०० ई० पू० के लगभग भी कदाचित मौजूद था। इस भेद का मूलाधार आर्यों के प्राचीन जनपदों से संबंध रखता है। मेरी धारणा है कि १००० ई० पू० के लगभग काशी, मगध, विदेह, अंग, बंग आदि जनपदों के आर्यों की बोलियाँ आज के इन प्रदेशों की बोलियों की अपेक्षा अधिक साम्य रखते हुए भी एक-दूसरे से कुछ भिन्न अवश्य रही होंगी। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक जनपद की प्राचीन भार-

मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाओं के अंतिम रूप अपभ्रंशों से तृतीय काल
भारतीय आर्य-भाषाओं का आविर्भाव दसवीं शताब्दी ईसवी के लगभग हुआ।
की राजनीतिक उथल पुथल से इसी समय एक स्मरणीय घटना हुई थी। १
के लगभग ही महमूद ग़ज़नवी ने भारत पर प्रथम आक्रमण किया था। इ

तीय आर्यभाषा में कुछ विशेषताएँ रही होंगी, जो विकास को प्राप्त होकर आज
भिन्न-भिन्न भाषाएँ तथा बोलियाँ हो गई हैं। अतः आधुनिक भाषाओं और बोलि
मूलभेद कदाचित् १००० ई० पू० तक पहुँच सकता है।

शौरसेनी आदि अन्य अपभ्रंशों तथा प्राकृतों के संबंध में भी मेरी यही कल्पन
शौरसेनी प्राकृत तथा अपभ्रंश से आधुनिक पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती तथा पश्चि
हिंदी निकली हो, यह समझ में नहीं आता। शौरसेनी प्राकृत तथा अपभ्रंश शूरसेन प्र
अर्थात् आजकल के ब्रजप्रदेश की उस समय की बोलियों के आधार पर बनी हुई साहित्यि
भाषाएँ रही होंगी। साथ ही उस काल में अन्य प्रदेशों में भी आजकल की भाषाओं तथ
बोलियों के पूर्व रूप प्रचलित रहे होंगे जिनका प्रयोग साहित्य में न होने के कारण उनके
अवशेष अब हमें नहीं मिल सकते। आजकल भी ठीक ऐसी ही परिस्थिति है।

आज बीसवीं सदी ईसवी में भागलपुर तक समस्त गंगा की घाटी में केवल
साहित्यिक भाषा हिंदी है, जिसका मूलाधार मेरठ-बिजनौर प्रदेश की खड़ी बोली है
साथ ही मारवाड़ी, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, बुंदेली आदि अनेक बोलियाँ अपने-अ
प्रदेशों में मौजूद हैं। साहित्य में प्रयोग न होने के कारण बीसवीं सदी की इन अनेक बोलि
के नमूने भविष्य में नहीं मिल सकेंगे। केवल खड़ी बोली हिंदी के नमूने जीवित रह सकेंगे
किंतु इस कारण पाँच-सौ वर्ष बाद यह कहना कहाँ तक उपयुक्त होगा कि पचीसवीं
शताब्दी में गंगा की घाटी में पाई जाने वाली समस्त बोलियाँ खड़ी बोली हिंदी से
निकली हैं। उस समय के उत्तर भारत की समस्त भाषाओं में खड़ी बोली हिंदी गंगा की
घाटी की बोलियों के निकटतम अवश्य होगी, किंतु यह तो दूसरी बात हुई।

प्रत्येक आधुनिक भाषा तथा बोलियों के प्राचीन तथा मध्यकालीन आर्यभाषा-
बद्ध उदाहरण मिलना संभव नहीं है, अतः इस विषय पर शास्त्रीय ढंग से नि
कहना असंभव है। तो भी अपने देश तथा अन्य देशों की आधुनिक परिस्थिति
र इस तरह का अनुमान लगाना बिलकुल स्वाभाविक होगा। कुछ प्रदेशों के स
ा बहुत क्रमबद्ध अध्ययन भी संभव है। हिंदुस्तान की आधुनिक बोलियों
के प्राचीन जनपदों से साम्य के संबंध में ना० प्र० प०, ३ अं० ४ में वि
चार प्रकट किए गए हैं।

भारतीय आर्यभाषाओं में हमारी हिंदी भाषा भी सम्मिलित है, अतः उसका जन्म-काल भी दसवीं शताब्दी ईसवी के लगभग मानना होगा।

इ—आधुनिक आर्यावर्त्ती अथवा भारतीय आर्यभाषाएं

क—वर्गीकरण

भाषातत्व के आधार पर ग्रियर्सन महोदय[1] आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को तीन उपशाखाओं में विभक्त करते हैं, जिनके अन्दर छः भाषासमुदाय मानते हैं। यह वर्गीकरण निम्नलिखित कोष्ठक में दिखलाया गया है :—

अ—बाहरी उपशाखा
- पश्चिमोत्तरी समुदाय
  - १—लहंदा
  - २—सिंधी
- दक्षिणी समुदाय
  - ३—मराठी
- पूर्वी समुदाय
  - ४—उड़िया
  - ५—बंगाली
  - ६—असमी
  - ७—बिहारी

ब—बीच की उपशाखा
- बीच का समुदाय
  - ८—पूर्वी हिंदी

स—भीतरी उपशाखा
- अंदर का समुदाय
  - ९—पश्चिमी हिंदी

---

[1] लि० स०, भूमिका, ११६

१०—पंजाबी
११—गुजराती
१२—भीली
१३—खानदेशी
१४—राजस्थानी

पहाड़ी समुदाय

१५—पूर्वी पहाड़ी या नैपाली
१६—बीच की पहाड़ी[1]
१७—पश्चिमी पहाड़ी

ग्रियर्सन महोदय के मतानुसार बाहरी उपशाखा की भिन्न-भिन्न भाषाओं में उच्च
तथा व्याकरण-संबंधी कुछ ऐसे साम्य पाए जाते हैं जो उन्हें भीतरी उपशाखा की भाष
से पृथक् कर देते हैं।[2] उदाहरणार्थ, भीतरी उपशाखा की भाषाओं के 'स' का उच्चार
बाहरी उपशाखा की बंगला आदि पूर्वी समुदाय की भाषाओं में 'श' हो जाता है तथ
पश्चिमोत्तरी समुदाय की कुछ भाषाओं में 'ह' हो जाता है। संज्ञा के रूपांतरों में भी यह
भेद पाया जाता है। भीतरी उपशाखा की भाषाएँ अभी तक वियोगावस्था में हैं, कि
बाहरी उपशाखा की भाषाएँ इस अवस्था से निकलकर प्राचीन आर्यभाषाओं
संयोगावस्था को प्राप्त हो चली हैं। उदाहरणार्थ, हिंदी में संबंधकारक 'का'
लगा कर बनाया जाता है। इन चिह्नों का संज्ञा से पृथक् अस्तित्व है। यह
बंगला में, जो बाहरी उपशाखा की भाषा है, संज्ञा में 'एर' लगा कर बनता है अ
चिह्न संज्ञा का एक भाग हो जाता है। क्रिया के रूपान्तरों में भी इस तरह के भेद पा
है, जैसे हिंदी में तीनों पुरुषों के सर्वनामों के साथ केवल एक 'मारा' कृदंत रूप का प्र
होता है, किंतु बंगला तथा बाहरी समुदाय की अन्य भाषाओं में अधिक रूपों का प्र
करना पड़ता है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को दो या तीन उपशाखाओं में विभक्त करने
मत से चैटर्जी महोदय सहमत नहीं हैं, और इस संबंध में उन्होंने पर्याप्त

१९२१ की जनसंख्या में बीच की पहाड़ी बोलने वालों की भाषा प्र
गई है, अतः इनकी संख्या केवल १८५१ दिखलाई गई है।
० स०, भूमिका प० ११।
०, वे०, लें०, §२९-३१, §७६-७९।

दिए हैं। चैटर्जी महोदय के वर्गीकरण को आधार मान कर आधु... था।
का स्वाभाविक वर्गीकरण निम्नलिखित रीति से किया जा सकता...
के समुदायों के विभाग से यह वर्गीकरण कुछ साम्य रखता है :—

	बोलने वालों की १९३१ की जनसंख्या
क—उदीच्य (उत्तरी)	क० ला०
१—सिंधी	०—४०
२—लहदा	०—८६
३—पंजाबी	१—३९
ख—प्रतीच्य (पश्चिमी)	
४—गुजराती	१—१
ग—मध्यदेशीय (बीच का)	
५—राजस्थानी	१—६१
६—पश्चिमी हिंदी } ७—पूर्वी हिंदी }	७—८४
८—बिहारी	२—७९
९—पहाड़ी	०—२८
घ—प्राच्य (पूर्वी)	
१०—उड़िया	१—१२
११—बंगाली	५—३४
१२—असमी	०—२०
ङ—दाक्षिणात्य (दक्षिणी)	
१३—मराठी	२—९

पहाड़ी भाषाओं का मूलाधार चैटर्जी महोदय पैशाची, दरद, या खस को मानते हैं। बाद को मध्यकाल में ये राजस्थान की प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं से बहुत अधिक प्रभावित हो गई थीं।

हिंदुस्तानी या जिप्सी बोलियाँ तथा सिंहाली भाषा भी आधुनिक आर्य भाषाओं के अन्तर्गत हैं।

---

[१] सं०, बे०, लें०, पृ० ५ मानचित्र।

ख—संक्षिप्त वर्णन

भाषा सर्वे' के आधार पर प्रधान आधुनिक आर्यभाषाओं का संक्षिप्त प
दिया जाता है।

१—सिंधी—सिंध प्रांत में सिंधु नदी के दोनों किनारों पर सिंधी भाषा बो
है। इस भाषा के बोलनेवाले प्रायः मुसल्मान हैं, इसलिए इसमें फ़ारसी शब्दों क
बड़ी स्वतन्त्रता से होता है। सिंधी भाषा फ़ारसी लिपि के एक विकृत रूप में लिख
है, यद्यपि नित्य के हिसाब-किताब में देवनागरी लिपि का एक बिगड़ा हुआ रूप
होता है। यह कभी-कभी गुरमुखी में भी लिखी जाती है। सिंधी भाषा की पाँच
बोलियाँ हैं जिनमें से मध्यभाग की 'विचोली' बोली साहित्य की भाषा का स्थान लिए
है। सिंध प्रदेश में ही पूर्व काल में व्राचड़ देश था, जहाँ की प्राकृत और अपभ्रंश इस देश
अनुसार व्राचड़ नाम से प्रसिद्ध थी। सिंध के दक्षिण में कच्छद्वीप में कच्छी बोली जाती है
यह सिंधी और गुजराती का मिश्रित रूप है। सिंधी भाषा में साहित्य बहुत कम है।

२—लहंदा—यह पश्चिमी पंजाब की भाषा है। यह प्रदेश अब पाकिस्तान में चला
गया है। लहंदा और पंजाबी भाषा की सीमाएँ ऐसी मिली हुई हैं कि दोनों में भेद करना
दुःसाध्य है। लहंदा पर दरद या पिशाच भाषाओं का प्रभाव बहुत अधिक है। इसी प्रदेश
में प्राचीन केकय देश पड़ता है, जहाँ पैशाची प्राकृत तथा केकय अपभ्रंश बोली
लहंदा के अन्य नाम पश्चिमी पंजाबी, जटकी, उच्ची, तथा हिंदकी आदि हैं। पंजाब
की बोली का अर्थ 'पश्चिम की बोली' है। 'लहंदा' शब्द का अर्थ सूर्यास्त की दिश
पश्चिम है। लहंदा में न तो विशेष साहित्य है और न यह कोई साहित्यिक भाषा
एक प्रकार से यह कई मिलती-जुलती बोलियों का समूह मात्र है। लहंदा का व्य
और शब्द-समूह दोनों पंजाबी से बहुत-कुछ भिन्न हैं। यद्यपि इसकी अपनी भिन्न
डा' है, किंतु आजकल यह प्रायः फ़ारसी लिपि में ही लिखी जाती है।

३—पंजाबी—पंजाबी भाषा का भूमिभाग हिंदी के ठीक पश्चिमोत्तर में
पाकिस्तानी पंजाब के पूर्वी भाग तथा पूर्वी पंजाब के पश्चिमी भाग में बोली जात
पंजाब के पूर्वी भाग में हिंदी का क्षेत्र है। पंजाबी पर दरद अथवा पिशाच भाषाओं
प्रभाव शेष है। पंजाबी भाषा लहंदा से ऐसी मिली हुई है कि दोनों को अलग कर
है, किन्तु पश्चिमी हिंदी से इसका भेद स्पष्ट है। पंजाबी की अपनी लिपि लंडा है
राजपूताने की 'महाजनी' और कश्मीर की 'शारदा' लिपि से मिलती-जुलती
लिपि बहुत अपूर्ण है और इसके पढ़ने में बहुत कठिनता होती है। सिक्खों के

---

० स०, भूमिका, भ० ११–१५।

गुरु अंगद (१५३८-५२ ईसवी) ने देवनागरी की सहायता से इस लिपि मे सुधार किया था। लंडा का यह नया रूप 'गुरुमुखी' कहलाया। आजकल पंजाबी भाषा की पुस्तकें इसी लिपि में छपती हैं। मुसलमानों के अधिक संख्या में होने के कारण पंजाब में उर्दू भाषा का प्रचार बहुत था। पंजाबी भाषा का शुद्ध रूप अमृतसर के निकट बोला जाता है। इस भाषा में साहित्य अधिक नहीं है। सिक्खो के ग्रंथ साहब की भाषा प्रायः मध्यकालीन हिंदी (व्रज) है, यद्यपि वह गुरुमुखी अक्षरों मे लिखा गया है। पंजाबी भाषा मे बोलियो का भेद अधिक नही है। उल्लेख योग्य केवल एक बोली 'डोग्री' है। यह जम्बू राज्य मे बोली जाती है। 'टक्करी' या 'टाकरी' नाम की इसकी लिपि भी भिन्न है।

४—गुजराती—गुजराती भाषा गुजरात, बड़ौदा और निकटवर्ती अन्य देशी राज्यों मे बोली जाती है। गुजराती मे बोलियो का स्पष्ट भेद अधिक नही है। पारसियों द्वारा अपनाई जाने के कारण गुजराती पश्चिमी भारत मे व्यवसाय की भाषा हो गई है। भीली और खानदेशी बोलियों का गुजराती से बहुत संपर्क है। गुजराती का साहित्य बहुत विस्तीर्ण तो नहीं है, किंतु तो भी उत्तम अवस्था मे है। गुजराती के आदि कवि नरसिंह मेहता (जन्म १४१३ ईसवी) का गुजरात मे अब भी बहुत आदर है। प्रसिद्ध प्राकृत वैयाकरण हेमचन्द्र भी गुजराती थे। यह बारहवीं शताब्दी ईसवी मे हुए थे। इन्होंने अपने व्याकरण में गुजराती की नागर अपभ्रंश का वर्णन किया है। प्राचीन काल से अब तक की भाषा के क्रम-पूर्ण उदाहरण केवल गुजराती मे ही मिलते हैं। अन्य स्थानों की आर्यभाषाओं में यह क्रम किसी न किसी काल में टूट गया है। गुजराती पहले देवनागरी लिपि मे लिखी जाती थी, किंतु अब गुजराती मे कैथी से मिलते-जुलते देवनागरी के बिगड़े हुए रूप का प्रचार हो गया है, जो गुजराती लिपि कहलाती है।

५—राजस्थानी—पंजाबी के ठीक दक्षिण में राजस्थानी अथवा राजस्थान की उपभाषाओं का वर्ग है। एक प्रकार से यह मध्यदेश की प्राचीन भाषा का ही दक्षिणी-पश्चिमी विकसित रूप है। इस विकास की अंतिम सीढ़ी गुजराती है, किंतु उसमे भेदों की मात्रा अधिक हो गई है। राजस्थानी वर्ग के अन्तर्गत मुख्य चार उपभाषाएँ हैं—मेवाती, जयपुरी, मारवाड़ी और मालवी।

राजस्थानी उपभाषाएँ बोलने वाले भूमिभाग मे हिंदी भाषा ही साहित्यिक भाषा है। यह स्थान अभी तक राजस्थान की उपभाषाओ मे से किसी को नहीं मिल सका है। राजस्थानी का प्राचीन साहित्य प्रधानतया डिंगल अथवा पुरानी साहित्यिक मारवाड़ी मे है। पुरानी मारवाड़ी और गुजराती मे बहुत कम भेद है। निज के व्यवहार में राजस्थानी उपभाषाएँ महाजनी लिपि में लिखी जाती हैं। मारवाड़ियों के साथ महाजनी लिपि समस्त उत्तर भारत में फैल गई है। छपाई मे देवनागरी लिपि का ही व्यवहार होता है।

६—पश्चिमी हिंदी—इस वर्ग की उपभाषाएँ मनुस्मृति के 'मध्य
भाषाएँ कही जा सकती हैं। मेरठ तथा बिजनौर के निकट बोली जाने
हिंदी के ही एक रूप खड़ी बोली से वर्तमान साहित्यिक हिंदी तथा उर्दू
है। इसकी एक दूसरी उपभाषा ब्रजभाषा पूर्वी हिंदी की बोली अवधी के सा
पूर्व तक साहित्य के क्षेत्र में वर्तमान खड़ी बोली हिंदी का स्थान लिए हुए
बोलियों के अतिरिक्त पश्चिमी हिंदी में बाँगरू, कनौजी तथा बुंदेली उपभाषाएँ
हैं, किंतु साहित्य की दृष्टि से ये विशेष ध्यान देने योग्य नहीं हैं। समस्त हि
प्रदेश का वर्तमान साहित्य खड़ी बोली हिंदी में ही लिखा जा रहा है। पढ़े-लिखे मु
में उर्दू का प्रचार है।

७—पूर्वी हिंदी—जैसा कि नाम से स्पष्ट है, पूर्वी हिंदी वर्ग का क्षेत्र पश्चिमी
के पूर्व में पड़ता है। इसकी उपभाषाएँ कुछ बातों में पश्चिमी हिंदी की उपभाषा
मिलती हैं और कुछ में बिहारी वर्ग की उपभाषाओं से। व्याकरण के अधिकांश
में इनका संबंध पश्चिमी हिंदी उपभाषाओं से है, किंतु कुछ विशेष लक्षण पूर्वीय समु
की भाषाओं के भी मिलते हैं। पूर्वी हिंदी वर्ग में तीन मुख्य उपभाषाएँ हैं—अवधी, बघेली
और छत्तीसगढ़ी। अवधी का दूसरा नाम कोसली भी है। कोसल अवध का प्राचीन
नाम था। तुलसीदास जी के समय से श्री रामचन्द्र जी के यशगान में प्रायः अवधी
प्रयोग होता रहा है। जैनधर्म के प्रवर्तक महावीर जी ने अपने धर्म का प्रचार क
यहाँ की ही प्राचीन भाषा अर्द्धमागधी का प्रयोग किया था। बहुत-सा जैन-सा
अर्द्धमागधी प्राकृत में है। अवधी में कुछ साहित्य मिलता है। पूर्वी हिंदी उपभाषाएँ
देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं और छपाई में सदा इसी का प्रयोग होता है। कि
कभी कभी कैथी लिपि भी काम में आती है। अपने प्राचीन रूप अर्द्धमागधी प्रा
के समान पूर्वी हिंदी की उपभाषाएँ अब भी बीच की हैं। इनके पश्चिम में शौरसेन
प्राकृत के नये रूप पश्चिमी हिंदी उपभाषाएँ हैं और पूर्व में मागधी प्राकृत की
नागज बिहारी वर्ग की उपभाषाएँ हैं।

८—बिहारी—यद्यपि राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से बिहार का
प्रदेश से ही रहा है, किंतु उत्पत्ति की दृष्टि से यहाँ की उपभाषाएँ बंगाली
हैं। बंगाली, उड़िया और असमी के साथ इनकी उत्पत्ति भी मागध अपभ्रंश
मागध अपभ्रंश के बोले जाने वाले भूमिभाग में ही आजकल बिहारी वर्ग की
एँ बोली जाती हैं। बिहारी वर्ग में तीन मुख्य उपभाषाएँ हैं—मैथिली मगही
भोजपुरी। इनमें मैथिली और मगही एक दूसरे के अधिक निकट हैं, किंतु
न दोनों से भिन्न है। बैरली महोदय भोजपुरी को मैथिली-मगही से इन

भिन्न मानते हैं कि ग्रियर्सन साहब की तरह वे इन तीनों को एक साथ रख कर बिहारी नाम देने को सहसा उद्यत नहीं हैं।[1] बिहारी उपभाषाएँ तीन लिपियों में लिखी जाती हैं। छपाई में देवनागरी अक्षर व्यवहार में आते हैं तथा लिखने मे साधारणतया कैथी लिपि का प्रयोग होता है। मैथिली ब्राह्मणों की एक अपनी लिपि अलग है, जो मैथिली कहलाती है और बंगला अक्षरों से बहुत मिलती हुई है। बिहारी उपभाषाएँ बोले जाने वाले प्रदेश मे हिंदी साहित्यिक भाषा है। बिहार प्रान्त में शिक्षा का माध्यम भी हिंदी ही है।

९—पहाड़ी भाषाएँ—हिमालय के दक्षिण पार्श्व में नैपाल से शिमला प्रदेश तक पहाड़ी भाषाएँ बोली जाती हैं। इसके तीन मुख्य रूप हैं—क- पश्चिमी पहाड़ी, ख- मध्य पहाड़ी, ग-पूर्वी पहाड़ी। वर्तमान पहाड़ी भाषाएँ राजस्थानी से बहुत मिलती हैं। विशेषतया माध्यमिक पहाड़ी का संबंध जयपुरी से और पश्चिमी पहाड़ी का संबंध मारवाड़ी से अधिक मालूम होता है। पश्चिमी तथा मध्य-पहाड़ी प्रदेश का प्रचीन नाम सपादलक्ष था। पूर्व काल मे यहाँ गूजर आकर बस गए थे। बाद को ये लोग पूर्व राजस्थान की ओर चले गए थे। मुसलमान काल में बहुत से राजपूत फिर सपादलक्ष मे आ बसे थे। जिस समय सपादलक्ष की खस जाति ने नैपाल को जीता था, उस समय इन खस विजेताओं के साथ यहाँ के राजपूत और गूजर भी शामिल थे। इस संघर्ष के कारण ही राजस्थानी और पहाड़ी भाषाओं में कुछ समानता पाई जाती है।

१०—उड़िया—प्राचीन उत्कल देश-अथवा वर्तमान उड़ीसा प्रांत मे यह भाषा बोली जाती है। इसको उत्कली अथवा ओढ़ी भी कहते है। उड़िया शब्द का शुद्ध रूप ओड़िया है। सब से प्रथम कुछ उड़िया शब्द तेरहवीं शताब्दी के एक शिलालेख मे आए है। प्रायः एक शताब्दी के बाद का एक अन्य शिलालेख मिलता है, जिसमे कुछ वाक्य उड़िया भाषा में लिखे पाए गए हैं। इन शिलालेखो से विदित होता है कि उस समय तक उड़िया भाषा बहुत कुछ विकसित हो चुकी थी। उड़िया लिपि बहुत कठिन है। इसका व्याकरण बंगाली से बहुत मिलता-जुलता है, इसलिए बंगाली के कुछ पंडित इसे बंगाली भाषा की एक बोली समझते थे, किंतु, यह भ्रम था। बंगाली के साथ ही उड़िया भी मागधी अपभ्रंश से निकली है। बंगाली और उड़िया आपस में बहिनें है, इनका संबंध माँ-बेटी का नहीं है। उड़िया लोग बहुत काल तक विजित रहे हैं। आठ शताब्दी तक उड़ीसा में तैलंगों का राज्य रहा। अभी कुछ ही काल पूर्व तक नागपुर के भोसले राजाओं ने उड़ीसा पर राज्य किया है। इन कारणों से उड़िया भाषा मे तैलगू और मराठी शब्द बहुतायत से पाए जाते हैं। मुसलमानों और अंग्रेजों के कारण फारसी और अंग्रेजी शब्द तो हैं ही। उड़िया-साहित्य विशेषतया कृष्ण-संबंधी है।

---

[1] चं०, बे०, लैं०, ५२

११—बंगाली—बंगाली भाषा गंगा के मुहाने और उसके उत्तर-पश्चिम के देशों में बोली जाती है। गाँव तथा नगर के बंगालियों की बोली में बहुत अंतर है। हिं की भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रचार कदाचित् बंगाली में सबसे अधिक है। उसमें पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाली में भेद है। पूर्वी बंगाली का केन्द्र ढाका है। यह रूप अब पाकिस्तान में चला गया है। हुगली के निकट बोली जाने वाली पश्चिमी बंगाली का ही एक रूप वर्तमान साहित्यिक भाषा हो गया है। बंगाली उच्चारण की विशेषता का 'ओ' तथा 'स' का 'श' कर देना प्रसिद्ध ही है। इस भाषा का साहित्य उत्तम कोट में है। बंगाली लिपि पुरानी देवनागरी का ही एक रूपान्तर है।

१२—असमी—जैसा इसके नाम से प्रकट है, यह असम प्रदेश में बोली जाती वहाँ के लोग इसे असमिया कहते हैं। उड़िया की तरह असमी भी बंगाली की बहिन बेटी नहीं। यद्यपि असमी व्याकरण बंगाली व्याकरण से बहुत भिन्न नहीं है, किन्तु इन दं की साहित्यिक प्रगति पर ध्यान देने से इनका भेद स्पष्ट हो जाता है। असमी भाष प्राचीन साहित्य की यह विशेषता है कि उसमें ऐतिहासिक ग्रंथों की कमी नहीं है। अ भारतीय आर्यभाषाओं में यह बहुत खटकता है। असमी भाषा प्रायः बंगाली लिपि में लि जाती है, यद्यपि इसमें कुछ सुधार अवश्य कर लिए गए हैं।

१३—मराठी—दक्षिण में महाराष्ट्री अपभ्रंश की पुत्री मराठी भाषा है। यह ब प्रांत में पूना के चारों ओर तथा बरार प्रांत और मध्यप्रांत के दक्षिण के नागपुर आदि व जिलों में बोली जाती है। इसके दक्षिण में द्राविड़ भाषाएँ हैं। इनकी तीन मुख्य बोलि हैं, जिनमें से पूना के निकट बोली जानेवाली देशी मराठी साहित्यिक भाषा है। मरा प्रायः देवनागरी लिपि में लिखी और छापी जाती है। नित्य के व्यवहार में 'मोडी' लि का व्यवहार होता है। इसका आविष्कार महाराज शिवाजी (१६२७-८० ई०) सुप्रसिद्ध मंत्री बालाजी अबाजी ने किया था। मराठी का साहित्य विस्तीर्ण, लोकप्रि तथा प्राचीन है।

ई—हिंदी प्रदेश के भाषा वर्ग तथा उपभाषाएँ

क—हिंदी प्रदेश के भाषावर्ग तथा साहित्यिक रूप

१—हिंदी का शब्दार्थ तथा प्रचलित अर्थ—संस्कृत की 'स' ध्वनि फ़ारसी में 'ह के रूप में पाई जाती है, अतः संस्कृत के 'सिंधु' और 'सिंधी' शब्दों के फ़ारसी रूप 'हिं और 'हिंदी' हो जाते हैं। प्रयोग तथा रूप की दृष्टि से 'हिंदवी' या 'हिंदी' शब्द फ़ार भाषा का ही है। संस्कृत, प्राकृत अथवा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के किसी ग्

ीन ग्रंथ में इसका व्यवहार नहीं किया गया है। फ़ारसी में 'हिंदी' का शब्दार्थ हिंद
संबंध रखने वाला है; किंतु इसका प्रयोग 'हिंद के रहनेवाले' अथवा 'हिंद की भाषा' के
में होता रहा है। 'हिंदी' शब्द के अतिरिक्त फ़ारसी से ही 'हिंदू' शब्द भी आया है।
दू' शब्द का व्यवहार फारसी में 'इस्लाम धर्म के न मानने वाले हिंदवासी' के अर्थ में प्राय:
ता है। इसी अर्थ के साथ यह शब्द अपने देश में प्रचलित हो गया है।

शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिंदी' शब्द का प्रयोग हिंद या भारत में बोली जाने वाली किसी
आर्य, द्राविण अथवा अन्य कुल की भाषा के लिए हो सकता है; किंतु आजकल वास्तव
इसका व्यवहार उत्तर-भारत के मध्य-देश के हिंदुओं की वर्तमान साहित्यिक भाषा के
में मुख्यतया, तथा साथ ही इसी भूमिभाग की उपभाषाओं और उनमें संबंध रखनेवाले
चीन साहित्यिक रूपों के अर्थ में साधारणतया होता है। इस भूमिभाग की सीमाएँ
श्चिम में जैसलमीर, उत्तर-पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी
र तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण-पूर्व में रायपुर तथा
क्षिण-पश्चिम में खंडवा तक पहुँचती हैं। इस भूमिभाग में हिंदुओं के आधुनिक साहित्य,
-पत्रिकाओं, शिष्ट बोलचाल तथा स्कूली शिक्षा की भाषा एकमात्र साहित्यिक खड़ी
ली हिंदी ही है। साधारणतया 'हिंदी' शब्द का प्रयोग जनता में इसी भाषा के अर्थ में
या जाता है, किंतु साथ ही इस भूमिभाग की वर्त्तमान उपभाषाओं—जैसे, मारवाड़ी,
ज, छत्तीसगढ़ी, मैथिली आदि—को तथा प्राचीन डिंगल, हिंदवी, ब्रज, अवधी तथा
थिली आदि साहित्यिक भाषाओं को भी हिंदी भाषा के ही अन्तर्गत माना जाता है।
मस्त भूमिभाग की जनसंख्या १२ करोड़ से अधिक है।[1]

२—हिंदी प्रदेश के भाषावर्ग—भाषा-शास्त्र की दृष्टि से ऊपर दिए हुए भूमिभाग में
ाँच भाषा वर्ग माने जाते हैं। राजस्थान की उपभाषाओं के समुदाय को 'राजस्थानी'
नाम से पृथक् वर्ग माना गया है। बिहार की मिथिला और पटना-गया की उपभाषाओं
था उत्तर प्रदेश की बनारस-गोरखपुर कमिश्नरी की उपभाषा के समूह को एक भिन्न
'बिहारी' वर्ग माना जाता है। उत्तर के पहाड़ी प्रदेशों की उपभाषाएँ 'पहाड़ीवर्ग'
के नाम से पृथक् मानी जाती हैं शेष हिंदी प्रदेश में दो उपरूप माने जाते हैं, पश्चिमी

[1] भारत संघ के विधान में भी इस समस्त प्रदेश में एक ही प्रधान साहित्यिक भाषा
हिंदी मानी गई है। इसी को संघ की राजभाषा भी माना गया है। संघ द्वारा स्वीकृत
भाषाओं की पूर्ण सूची निम्नलिखित है। १—असमी, २—बंगाली, ३—गुजराती,
४—हिंदी, ५—कन्नड़, ६—काश्मीरी, ७—मलयालम, ८—मराठी, ९—उड़िया,
१०—पंजाबी, ११—संस्कृत, १२—तामिल, १३—तेलगू और १४—उर्दू।

तथा पूर्वी ।" हिंदी प्रदेश की पश्चिमी और पूर्वी वर्गों की उपभाषाओं के बोलने वालों की संख्या लगभग ८ करोड़ है । ग्रियर्सन आदि कुछ विद्वानों ने 'हिंदी भाषा' शब्द का प्रयोग केवल इसी भूमिभाग की उपभाषाओं तथा उनकी आधारभूत साहित्यिक भाषा के अर्थ में किया है ।

३—उर्दू—आधुनिक खड़ी बोली साहित्यिक हिंदी के उस दूसरे साहित्यिक रूप का नाम उर्दू है, जिसका व्यवहार पाकिस्तान तथा उत्तरभारत के पढ़े-लिखे मुसलमानों तथा उनसे अधिक सम्पर्क में आने वाले कुछ हिंदुओं, जैसे पंजाबी, काश्मीरी तथा पुरानी पीढ़ी के कायस्थों आदि में पाया जाता है । व्याकरण के रूपों की दृष्टि से इन दोनों साहित्यिक भाषाओं में विशेष अंतर नहीं है, वास्तव में दोनों का मूलाधार एक ही है, किंतु साहित्यिक वातावरण, शब्द-समूह, तथा लिपि में दोनों में आकाश-पाताल का अंतर है । साहित्यिक खड़ी बोली इन सब बातों के लिए भारत की प्राचीन संस्कृत तथा उसके वर्तमान रूपों की ओर देखती है; उर्दू भारत के वातावरण में उत्पन्न और बढ़ने पर भी ईरान और अरब की सभ्यता और साहित्य से जीवनतत्त्व ग्रहण करती है ।

ऐतिहासिक दृष्टि से साहित्यिक खड़ी बोली हिंदी की अपेक्षा खड़ी बोली उर्दू का व्यवहार पहले होने लगा था । भारतवर्ष में आने पर बहुत दिनों तक मुसलमानों का केंद्र दिल्ली रहा, अतः फारसी, तुर्की और अरबी बोलने वाले मुसलमानों ने जनता से बातचीत और व्यवहार करने के लिए धीरे-धीरे दिल्ली के अड़ोस-पड़ोस की बोली सीखी । इस बोली में अपने विदेशी शब्द-समूह को स्वतंत्रतापूर्वक मिला लेना इनके लिए स्वाभाविक था । इस प्रकार की बोली का व्यवहार सबसे प्रथम 'उर्दू-ए-मुअल्ला' अर्थात् देहली के महलों के बाहर किले के शाही फौजी बाजार में होता था, अतः इसी से दिल्ली के पड़ोस की बोली के इस विदेशी शब्दों से मिश्रित रूप का नाम 'उर्दू' पड़ा । तुर्की भाषा में उर्दू शब्द का अर्थ बाजार है । वास्तव में आरंभ में उर्दू बाजारू भाषा थी । शाही दरबार से संबंध रखने वाले हिंदुओं का इसे अपनाना स्वाभाविक था, क्योंकि फारसी-अरबी शब्दों से मिश्रित किन्तु अपने देश की एक बोली में इन भिन्न भाषा-भाषी विदेशियों से बातचीत करने में इन्हें सुविधा रहती होगी । जिस तरह ईसाई धर्म ग्रहण कर लेने पर भारतीय अंग्रेजी बोलने वाले भारतीय, अंग्रेजी से अधिक प्रभावित होने लगते थे, उसी तरह मुसलमान धर्म ग्रहण कर लेने वाले हिन्दुओं में फारसी के बाद उर्दू का विशेष आदर होना स्वाभाविक था । धीरे-धीरे यह उत्तर-भारत की शिष्ट मुसलमान जनता की भाषा भाषा हो गई । इसके द्वारा आसानी काम चलने के कारण यह उत्तर-भारत के प्रधान शिष्ट-समुदाय की भाषा हो गई और बनने लगी । जिस तरह आजकल पढ़े-लिखे हिंदी भाषी के मुँह से 'मुझे चांस (Chance

नहीं मिला' निकलता है, उसी तरह उस समय 'मुझे मौका नहीं मिला' निकलता होगा। जनता इसी को 'मुझे अवसर या औसर नहीं मिला' कहती होगी, और अब भी कहती है। उर्दू का जन्म तथा प्रचार इसी प्रकार हुआ।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि उर्दू का मूलाधार दिल्ली के निकट की खड़ी बोली है। यह बोली आधुनिक साहित्यिक हिंदी की भी मूलाधार है। अतः उद्गम की दृष्टि से उर्दू और आधुनिक साहित्यिक हिंदी सगी बहनें हैं। विकसित होने पर इन दोनों में जो अंतर हुआ उसे रूपक में यों कह सकते हैं कि एक तो हिंदुआनी बनी रही और दूसरी ने मुसलमान धर्म ग्रहण कर लिया।

एक अंग्रेज विद्वान् ग्रेहम बेली महोदय ने उर्दू की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक नया विचार रखा है। उनकी समझ में उर्दू की उत्पत्ति दिल्ली में खड़ी बोली के आधार पर नहीं हुई, बल्कि इसके पहले ही पंजाबी के आधार पर यह लाहौर के आसपास बन चुकी थी और दिल्ली में आने पर मुसलमान शासक इसे अपने साथ ही लाये थे। खड़ी बोली के प्रभाव से इसमें बाद को कुछ परिवर्तन अवश्य हुए, किन्तु इसका मूलाधार पुरानी पंजाबी को मानना चाहिए, खड़ी बोली को नहीं। इस संबंध में बेली महोदय का सबसे बड़ा तर्क यह है कि दिल्ली को शासन-केंद्र बनाने के पूर्व १००० से १२०० ई० तक लगभग दो-सौ वर्ष मुसलमान आक्रमणकारी पंजाब में रहे। उस समय वहाँ की जनता से संपर्क में आने के लिए उन्होंने कोई न कोई भाषा अवश्य सीखी होगी और यह भाषा तत्कालीन पंजाबी ही हो सकती है। यह स्वाभाविक है कि भारत में आगे बढ़ने पर वे इसी भाषा का प्रयोग करते रहे हों। बिना पूर्ण खोज के उर्दू की उत्पत्ति के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस समय सर्वसम्मत मत यही है कि उर्दू तथा आधुनिक साहित्यिक हिंदी, दोनों की मूलाधार दिल्ली-मेरठ की खड़ी बोली है।

उर्दू का साहित्य में प्रयोग दक्षिण के सूफ़ी कवियों और मुसलमान दरबारों से आरंभ हुआ। उस समय दिल्ली-आगरा के दरबार में साहित्यिक भाषा का स्थान फ़ारसी को मिला हुआ था। साधारण जन-समुदाय की भाषा होने के कारण अपने घर पर उर्दू हेय समझी जाती थी। हैदराबाद रियासत की जनता की भाषाएँ भिन्न द्राविड़ वंश की थीं, अतः उनके बीच में यह मुसलमानी आर्यभाषा, शासकों की भाषा होने के कारण, विशेष गौरव की दृष्टि से देखी जाने लगी, इसीलिए उसका साहित्य में प्रयोग करना बुरा नहीं समझा गया। औरंगाबादी वली उर्दू के प्रथम प्रख्यात कवि माने जाते हैं। वली के क़दमों पर ही मुगल-काल के उत्तरार्द्ध में दिल्ली और उसके बाद लखनऊ के मुसलमानी दरबारों में भी उर्दू भाषा में कविता करने वाले कवियों का एक समुदाय बन गया, जिसने बाज़ारू बोली को साहित्यिक भाषा के सिंहासन पर बैठा दिया। फ़ारसी शब्दों के अधिक मिश्रण के कारण

कविता में प्रयुक्त उर्दू को 'रेख्ता' (शब्दार्थ 'मिश्रित') कहते हैं। स्त्रियों की भाषा 'रेख्ती' कहलाती है। दक्षिणी मुसलमानों की भाषा 'दक्खिनी' उर्दू या हिंदवी कहलाती है। इसमें फारसी शब्द कम इस्तेमाल होते हैं और उत्तर-भारत की उर्दू की अपेक्षा कम परिमार्जित है। ये सब उर्दू के रूप-रूपांतर हैं। हिंदी भाषा के गद्य के समान उर्दू भाषा का गद्य साहित्य में व्यवहार अंग्रेजी शासन-काल में विकसित हुआ। मुद्रणकला के साथ इसका प्रचार अधिक बढ़ा। उर्दू भाषा अरबी-फारसी अक्षरों में लिखी जाती है। पंजाब, दिल्ली, उत्तरप्रदेश तथा राजस्थान के कुछ राज्यों में कचहरी, तहसील और गाँव में उर्दू में ही सरकारी कागज़ लिखे जाते थे, अतः नौकरीपेशा हिंदुओं को भी इसकी जानकारी प्राप्त करना अनिवार्य था। अतः आगरा-दिल्ली की ओर हिंदुओं में इसका अधिक प्रचार होना स्वाभाविक था। पंजाबी भाषा में विशेष साहित्य न होने के कारण पंजाबी लोगों ने इसे साहित्यिक भाषा की तरह अपना रक्खा था। अब हिंदी-भाषी प्रदेश में हिंदुओं के बीच उर्दू का प्रभाव तेज़ी से कम हो रहा है।

४—हिंदुस्तानी—'हिंदुस्तानी' नाम यूरोपीय लोगों का दिया हुआ है। प्रारंभ में यह शब्द उर्दू का पर्यायवाची था किंतु इधर कुछ दिनों से उर्दू का बोलचाल वाला रूप हिंदुस्तानी कहलाता है। केवल बोलचाल में प्रयुक्त होने के कारण इसमें फ़ारसी शब्दों की भरमार नहीं रहती यद्यपि इसका झुकाव फारसी की तरफ़ अवश्य रहता है। उत्पत्ति की दृष्टि से आधुनिक साहित्यिक हिंदी तथा उर्दू के समान ही इसका आधार भी खड़ी बोली है। एक तरह से यह हिंदी-उर्दू की अपेक्षा खड़ी बोली के अधिक निकट है, क्योंकि यह फ़ारसी-संस्कृत के स्वाभाविक प्रभाव से बहुत मुक्त है। साधारण श्रेणी के लोगों के लिए लिखे गए साहित्य में हिंदुस्तानी का प्रयोग पाया जाता है। ये किस्से, ग़ज़लों और भजनों आदि की बाज़ारू किताबें फ़ारसी और देवनागरी दोनों लिपियों में छापी जाती हैं। हिंदुस्तानी के समान ठेठ हिंदी में कुछ साहित्यिक व्यक्तियों ने लिखने का प्रयास कि[illegible] है। इंशा की 'रानी केतकी की कहानी' तथा पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय का [illegible] हिंदी का ठाठ' तथा 'बोलचाल' ठेठ हिंदी को साहित्यिक बनाने के प्रयोग हैं, जि[illegible] [illegible] सज्जन सफल नहीं हो सके।

इस पुस्तक में खड़ी बोली शब्द का प्रयोग दिल्ली-मेरठ के आसपास बोली जानेवा[illegible] [illegible] की भाषा के अर्थ में किया गया है। भाषा-सर्वे में ग्रियर्सन महोदय ने इस बोली [illegible] वर्नाक्यूलर हिंदुस्तानी' नाम दिया है किंतु इसके लिये खड़ी बोली अथवा गिरहिंदी [illegible] अधिक उपयुक्त है। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, हिंदी, उर्दू तथा हिंदुस्तानी या [illegible] [illegible] इन समस्त रूपों का मूलाधार यह खड़ी बोली ही है। कभी-कभी ब्रजभाषा, अव[illegible] [illegible] प्राचीन साहित्यिक भाषाओं से भेद दिखलाने को आधुनिक साहित्यिक हिंदी [illegible]

भी खड़ी बोली के नाम से पुकारा जाता है।[1] ब्रजभाषा और इस 'साहित्यिक खड़ी बोली हिंदी' का झगड़ा बहुत पुराना हो चुका है। साहित्यिक अर्थ में प्रयुक्त खड़ी बोली शब्द तथा भाषाशास्त्र की दृष्टि से प्रयुक्त खड़ी बोली शब्द के अर्थ को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। ब्रजभाषा की अपेक्षा यह बोली वास्तव में खड़ी सी लगती है, कदाचित् इसी कारण इसका नाम खड़ी बोली पड़ा। हिंदी-उर्दू भाषाएँ साहित्यिक खड़ी बोली मात्र हैं। हिंदुस्तानी भी बोलचाल की कुछ परिमार्जित खड़ी बोली है।

ऊपर के विस्तृत विवेचन से हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी या ठेठ हिंदी तथा खड़ी बोली के शब्दों के मूल अर्थ तथा शास्त्रीय अर्थ का भेद स्पष्ट हो गया होगा। हिंदी भाषा से संबंध रखनेवाले ग्रंथों में इन शब्दों का शास्त्रीय अर्थ में ही प्रयोग होता है।

ख—हिंदी प्रदेश की उपभाषाएँ

ऊपर बतलाया जा चुका है कि प्राचीन 'मध्यदेश' की मुख्य उपभाषाओं के समुदाय को भाषाशास्त्र की दृष्टि से हिंदी नाम से पुकारा जाता है। इनमें से खड़ी बोली, बाँगरू, ब्रज, कन्नौजी तथा बुंदेली—इन पाँच को भाषा-सर्वे में 'पश्चिमी हिंदी' नाम दिया गया है, तथा अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी, इन शेष तीन को 'पूर्वी हिंदी' के नाम से पुकारा गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से पश्चिमी हिंदी उपभाषाओं का संबंध शौरसेनी प्राकृत तथा पूर्वी हिंदी का संबंध अर्द्धमागधी प्राकृत से जोड़ा जाता है। राजस्थानी वर्ग के अन्तर्गत चार प्रधान उपभाषाएँ हैं—मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती तथा मालवी। भोजपुरी, मैथिली तथा मगही उपभाषाओं को बिहारी वर्ग के अन्तर्गत रक्खा जाता है। पहाड़ी के अन्तर्गत तीन प्रधान रूप हैं—पश्चिमी, मध्य (गढ़वाली-कमायूनी) तथा पूर्वी या नेपाली। भाषा-सर्वे के आधार पर इन समस्त उपभाषाओं का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है।

---

[1] इस अर्थ में खड़ी बोली का सब से प्रथम प्रयोग लल्लूजी लाल ने 'प्रेम सागर' की भूमिका में किया है। लल्लूजी लाल के ये वाक्य खड़ीबोली शब्द के व्यवहार पर बहुत कुछ प्रकाश डालते हैं, अतः ज्यों के त्यों नीचे उद्धृत किये जाते हैं। आधुनिक साहित्यिक हिंदी के आदि रूप का भी यह उद्धरण अच्छा नमूना है। लल्लूजी लाल लिखते हैं—"एक समय व्यासदेव कृत श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध की कथा को चतुर्भुज मिश्र ने दोहे चौपाई में ब्रजभाषा किया। सो पाठशाला के लिये श्री महाराजाधिराज, पुण्यवान, महाज्ञान मारकुइस विलज्लि गवरनर जनरल प्रतापी के राज में श्रीयुत गुनगाहक गुनियन सुखदायक जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा से संवत् १८६० ई० में श्री लल्लूजी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वाले ने जिसका सार ले यामनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह नाम प्रेमसागर धरा।"

अ—पश्चिमी हिंदी वर्ग

१—खड़ी बोली—खड़ी बोली या सिरहिंदी पश्चिम रुहेलखंड, गंगा के उत्त दोआब तथा अंबाला जिले की उपभाषा है। सिरहिंदी आदि से इसका संबंध ऊपर बताय जा चुका है। मुसलमानी प्रभाव के निकटतम होने के कारण ग्रामीण खड़ी बोली में फारसी-अरबी के शब्दों का व्यवहार हिंदी प्रदेश की अन्य उपभाषाओं की अपेक्षा अधि है। किंतु ये प्रायः अर्द्धतत्सम अथवा तद्भव रूपों में प्रयुक्त होते हैं। इन्हीं को तत्सम रू मे प्रयुक्त करने से खड़ी बोली मे उर्दू की झलक आने लगती है। खड़ी बोली निम्नलिखि स्थानों मे गाँवों मे बोली जाती है—रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर सहारनपुर, देहरादून के मैदानी भाग, अंबाला तथा कलसिया और पटियाला रियासत के पूर्वी भाग। इस उपभाषा के बोलनेवालों की संख्या ५३ लाख के लगभग है। इस संबंध मे निम्नलिखित यूरोपीय देशों की जनसंख्या के अंक रोचक प्रतीत होंगे— ग्रीस ५४ लाख, बलगेरिया ४६ लाख तथा तीन भाषाएँ बोलनेवाला स्विटज़रलैण्ड ३६ लाख। ग्रियर्सन ने इसी उपभाषा को 'वर्नाक्यूलर हिंदुस्तानी' नाम से पुकारा है।

२—बांगरू—बांगरू उपभाषा जाटू या हरियानी नाम से भी प्रसिद्ध है। यह दिल्ली, कर्नाल, रोहतक और हिसार जिलों और पड़ोस के पटियाला, नाभा और झींद रियासतों के गाँवों मे बोली जाती है। वास्तव मे यह पंजाबी और राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली है। बांगरू बोलनेवालों की संख्या लगभग २२ लाख है। बांगरू उपभाषा की पश्चिमी सी पर सरस्वती नदी बहती है। हिंदी-भाषी प्रदेश के प्रसिद्ध युद्धक्षेत्र, पानीपत तथा कुर इसी बोली की सीमा के अन्तर्गत पड़ते हैं, अतः इसे हिंदी की सरहदी बोली मान अनुचित न होगा। नवीनतम मत के अनुसार यह खड़ी बोली का ही एक उपरूप है, अ इसको स्वतंत्र उपभाषा मानना चिंत्य है।

३—ब्रजभाषा—प्राचीन हिंदी साहित्य की दृष्टि से ब्रज की बोली की गिनती सा यिक भाषाओं में होने लगी, इसलिए आदरार्थ यह ब्रजभाषा कह कर पुकारी जाने लगी विशुद्ध रूप मे यह उपभाषा अब भी मथुरा, आगरा, अलीगढ़ तथा धौलपुर में बोली जा है। गुड़गाँव, भरतपुर, करौली तथा ग्वालियर के पश्चिमोत्तर भाग मे इसमें राजस्थानी औ बुंदेली की कुछ-कुछ झलक आने लगती है। बुलंदशहर, बदायूँ और नैनीताल तराई मे ख बोली का प्रभाव शुरू हो जाता है, तथा एटा, मैनपुरी और बरेली के जिलों में कुछ कनौ जीपन आने लगता है। वास्तव मे पीलीभीत तथा इटावा की बोली भी कनौजी की अपेक्ष ब्रजभाषा के अधिक निकट है। ब्रजभाषा बोलनेवालों की संख्या लगभग ७९ लाख है। तुलना के लिए नीचे लिखी जनसंख्या के अंक रोचक प्रतीत होंगे—टर्की ८० लाख, बेलजियम ७७ लाख, हंगरी ७८ लाख, आस्ट्रिया ६१ लाख तथा पुर्तगाल ६० लाख।

जब से गोकुल वल्लभ-संप्रदाय का केंद्र हुआ, तब से ब्रजभाषा मे कृष्ण-साहित्य लिखा जाने लगा। धीरे-धीरे यह बोली समस्त हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा हो गई। १९वीं शताब्दी में धीरे-धीरे साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली ने ब्रजभाषा का स्थान ग्रहण किया।

४—कनौजी—कनौजी बोली का क्षेत्र ब्रजभाषा और अवधी के बीच मे है। कनौजी को पुराने कनौज राज्य की उपभाषा समझना चाहिये। कनौजी का केंद्र फर्रुखाबाद है, किंतु उत्तर में यह हरदोई, शाहजहाँपुर तथा पीलीभीत तक और दक्षिण मे इटावा तथा कानपुर के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। कनौजी बोलने वालो की संख्या ४५ लाख है। ब्रजभाषा के पड़ोस मे होने के कारण साहित्य के क्षेत्र मे कनौजी कभी भी आगे नहीं आ सकी। इस भूमिभाग में प्रसिद्ध कविगण तो कई हुए, किंतु इन सब ने ब्रजभाषा मे ही अपनी रचनाएँ कीं। वास्तव मे कनौजी कोई स्वतन्त्र उपभाषा नहीं है, बल्कि ब्रजभाषा का ही एक उपरूप है।

५—बुंदेली—बुंदेली बुंदेलखंड की उपभाषा है। शुद्ध रूप मे यह झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओरछा, सागर, नृसिंहपुर, सेओनी तथा हुशंगाबाद मे बोली जाती है। इसके कई मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा छिंदवाड़ा के कुछ भागों मे पाये जाते हैं। बुंदेली बोलनेवालो की संख्या ६९ लाख के लगभग है। मध्यकाल में बुंदेलखंड साहित्य का प्रसिद्ध केंद्र रहा है, किन्तु यहाँ होनेवाले कवियो ने भी ब्रजभाषा मे ही कविता की है, यद्यपि इनकी भाषा पर अपनी बुंदेली बोली का प्रभाव अधिक पाया जाता है। बुंदेली उपभाषा और ब्रजभाषा मे बहुत साम्य है। सच तो यह है कि ब्रज, कनौजी तथा बुंदेली एक ही उपभाषा के तीन प्रादेशिक रूप मात्र हैं।

आ—पूर्वी हिंदी वर्ग

६—अवधी—हरदोई जिले को छोड़ कर शेष अवध की उपभाषा अवधी है। यह लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, खीरी, फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी में तो बोली ही जाती है, किंतु इन जिलों के अतिरिक्त दक्षिण में गंगापार इलाहाबाद, फतेहपुर, कानपुर और मिर्जापुर मे तथा जौनपुर के कुछ हिस्सों में भी बोली जाती है। बिहार के मुसलमान भी अवधी बोलते हैं। इस मिश्रित अवधी का विस्तार मुजफ्फरपुर तक है। अवधी बोलनेवालो की संख्या लगभग १ करोड़ ४२ लाख है। ब्रजभाषा के साथ अवधी मे कुछ साहित्य लिखा गया था, यद्यपि बाद को ब्रजभाषा की प्रतिद्वंद्विता में यह ठहर न सकी। 'पद्मावत', 'रामचरितमानस' तथा 'कृष्णायन' अवधी के सुप्रसिद्ध ग्रंथरत्न हैं।

७—बघेली—अवधी के दक्षिण में बघेली का क्षेत्र है। इसका केंद्र रीवां राज्य है, किंतु यह मध्यप्रांत के दमोह, जबलपुर, मांडला तथा बालाघाट के ज़िलों तक फैली हुई है। बघेली बोलनेवालों की संख्या लगभग ४६ लाख है। जिस तरह बुंदेलखंड के कवियों ने ब्रजभाषा को अपना रक्खा था उसी तरह रीवां के दरबार में बघेली कविगण साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी का आदर करते थे। नई खोज के अनुसार बघेली स्वतंत्र उपभाषा नहीं है, बल्कि अवधी का ही दक्षिणी रूप है।

८—छत्तीसगढ़ी—छत्तीसगढ़ी को लरिया या खल्टाही भी कहते हैं। यह मध्यप्रांत में रायपुर और बिलासपुर के ज़िलों तथा कांकेर, नंदगांव, खैरागढ़, रायगढ़, कोरिया, सरगुजा, उदयपुर तथा जशपुर, आदि रियासतों में भिन्न भिन्न रूपों में बोली जाती है। छत्तीसगढ़ी बोलने वालों की संख्या लगभग ३३ लाख है, जो डेनमार्क की जनसंख्या के बिल्कुल बराबर है। विभिन्न रूपों को मिलाकर बोलनेवालों की संख्या ३८ लाख के लगभग हो जाती है, जो स्विट्ज़रलैंड की जनसंख्या से टक्कर लेने लगती है। छत्तीसगढ़ी में पुराना साहित्य बिल्कुल नहीं है। कुछ नई बाजारू किताबें अवश्य छपी हैं।

६—बिहारी वर्ग

९—भोजपुरी—यह प्राचीन काशी जनपद की उपभाषा है। बिहार के शाहाबाद ज़िले में भोजपुर एक छोटा-सा क़स्बा और परगना है। इस उपभाषा का नाम इसी स्थान से पड़ा है, यद्यपि यह दूर-दूर तक बोली जाती है। भोजपुरी उपभाषा बनारस, मिर्ज़ापुर, जौनपुर, गाज़ीपुर, बलिया, गोरखपुर, बस्ती, आज़मगढ़, शाहाबाद, चंपारन, सारन तथ छोटा नागपुर तक फैली हुई है। बोलनेवालों की संख्या पूरे दो करोड़ के लगभग है। भोजपुरी में साहित्य कुछ भी नहीं है। संस्कृत का केंद्र होने के अतिरिक्त काशी हिंदी साहित्य का भी प्राचीन केंद्र रहा है, किन्तु भोजपुरी से घिरे रहने पर भी इस उपभाषा का प्रयोग साहित्य में कभी नहीं किया गया। काशी में रहते हुए भी कविगण प्राचीन काल में ब्रज तथा अवधी में और आधुनिक काल में साहित्यिक खड़ी बोली हिंदी में लिखते रहे हैं।

१०—मैथिली—यह उपभाषा बिहार प्रांत में प्रधानतया गंगा के उत्तरी भाग में चंपारन-सारन ज़िलों को छोड़कर शेष प्रदेश में बोली जाती है। मैथिली बोलनेवालों की संख्या लगभग १ करोड़ है। इसका केंद्र दरभंगा राज्य कहा जा सकता है।

इस उपभाषा का प्रयोग साहित्य-रचना के लिए भी हुआ है। संस्कृत के प्रसिद्ध लेखक विद्यापति ने मैथिली में भी कुछ रचना की थी। मिथिला तथा नेपाल के राजदरबारों में मैथिली पद मिश्रित संस्कृत नाटक भी लिखे गए थे। मैथिली की अपनी प्रादेशिक लिपि है जो बंगाली लिपि से मिलती-जुलती है।

११—मगही—मगही उपभाषा बिहार प्रांत में गंगा के दक्षिण में भागलपुर जिले को छोड़कर शेष प्रदेश के दक्षिणी भाग में बोली जाती है। पटना, गया जिले इसके केंद्र माने जा सकते हैं। मगही बोलनेवालों की संख्या ६५ लाख है। इस उपभाषा का साहित्यिक महत्व नहीं है। व्यावहारिक रूप में लिखने में कैथी लिपि का प्रयोग होता है। मगही शब्द सम्भवतः मागधी शब्द का अपभ्रंश रूप है।

ई—राजस्थानी वर्ग

१२—मारवाड़ी—मारवाड़ी-मेवाड़ी उपभाषाओं को पश्चिमी राजस्थानी कहा जा सकता है। यह बोली अरावली के पश्चिम और दक्षिण के भागों में प्रधानतया जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा उदयपुर राज्यों में बोली जाती है। मारवाड़ी बोलने वालों की संख्या लगभग ६० लाख है। व्यापार के कारण मारवाड़ी जैन महाजन उत्तर भारत के नगरों में फैले पड़े हैं। पुरानी मारवाड़ी अथवा डिंगल में लिखा प्रचुर साहित्य उपलब्ध है।

१३—जयपुरी—पूर्वी राजस्थानी के अंतर्गत दो प्रधान उपभाषाएँ मिलती हैं, जयपुरी तथा हाड़ौती। ये उपभाषाएँ जयपुर तथा कोटा-बूंदी राज्यों में बोली जाती हैं। जयपुरी, हाड़ौती में विशेष साहित्य रचना नहीं हुई। पूर्वी राजस्थान के दरबारों ने ब्रजभाषा साहित्य को ही सदा प्रश्रय दिया। पूर्वी राजस्थानी बोलनेवालों की संख्या लगभग ३० लाख है।

१४—मेवाती—मेवाती तथा अहीरवाटी उपभाषाएँ उत्तर राजस्थान में अलवर राज्य तथा पूर्वी पंजाब के दक्षिणी भाग के गुड़गाँव जिले के निकटवर्ती प्रदेश में बोली जाती है। मेवाती का साहित्यिक महत्व कभी नहीं रहा। इसके बोलनेवालों की संख्या १६ लाख के लगभग है। मेवाती पर ब्रजभाषा तथा अहीरवाटी पर बाँगरू या खड़ी बोली का प्रभाव स्पष्ट है।

१५—मालवी—मालवी अर्थात् मालवा की उपभाषा राजस्थानी वर्ग के अंतर्गत है। इसे दक्षिणी राजस्थानी कहा जा सकता है। इसका केंद्र मध्यप्रदेश का इंदौर का निकटवर्ती प्रदेश है। मालवी बोली का भी साहित्यिक महत्व नहीं है। इसके बोलने वालों की संख्या ४४ लाख के लगभग है।

उ—पहाड़ी वर्ग

१६—पहाड़ी उपभाषाएँ—पहाड़ी वर्ग के अंतर्गत अनेक उपभाषाएँ तथा बोलियाँ हैं जिन्हें तीन भागों में वर्गीकृत किया जाता है। क—पश्चिमी पहाड़ी, ख—मध्य पहाड़ी तथा ग—पूर्वी पहाड़ी। समस्त पहाड़ी उपभाषाओं के बोलनेवालों की संख्या २८ लाख के लगभग है।

पश्चिमी पहाड़ी बोलियों का समूह शिमला के निकटवर्ती प्रदेश में बोला जाता है। इन बोलियों का कोई सर्वमान्य मुख्य रूप नहीं है, न इनमें साहित्य ही पाया जाता है। इस प्रदेश में तीस से अधिक बोलियों का पता चला है जिनमें उत्तर प्रदेश के जौनसार-बावर प्रदेश की बोली जौनसारी, शिमला पहाड़ की बोली क्योंथली, कुलू प्रदेश की कुलुई और चंबा राज्य की चंबाली मुख्य हैं। चंबाली बोली की लिपि भिन्न है। शेष टाकरी या टक्करी लिपि में लिखी जाती हैं। पश्चिमी पहाड़ी प्रदेश में हिंदी ही साहित्यिक भाषा के रूप में चलती है।

मध्य पहाड़ी के दो मुख्य भेद हैं—१—कुमायूँनी, जो अलमोड़ा-नैनीताल प्रदेश की बोली है, और २—गढ़वाली, जो गढ़वाल राज्य तथा मसूरी के निकटवर्ती पहाड़ी प्रदेश में बोली जाती है। इन दोनों उपभाषाओं का साहित्यिक महत्व नहीं है। यहाँ के लोगों ने साहित्यिक व्यवहार के लिए पूर्ण रूप से साहित्यिक हिंदी को अपना लिया है।

पूर्वी पहाड़ी नेपाल की उपभाषा है। इसे नेपाली, पर्वतिया, गुरखाली तथा खसकुरा भी कहते हैं। पूर्वी पहाड़ी या नेपाली का विशुद्ध रूप काठमांडू की घाटी में बोला जाता है। इसमें कुछ साहित्य-रचना हुई है और नेपाल राज्य की संरक्षिता के कारण वर्तमान समय में भी इसको प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

गोरखा सिपाहियों के कारण यूरोपीय विद्वानों का ध्यान इसकी ओर विशेष गया। नेपाली भाषा का अध्ययन जर्मन तथा रूसी विद्वानों ने विशेष किया है। यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। नेपाल राज्य की अधिकांश प्रजा की भाषाएँ तिब्बती-ची कुल की हैं जिनमें नेवार जाति के लोगों की भाषा नेवारी मुख्य है। नेपाल में साहित्यि हिंदी का महत्त्व समझा जाता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उत्तर प्रदेश में पाँच मुख्य उपभाषाएँ बोली जा हैं—अर्थात् मेरठ-बिजनौर की खड़ी बोली, मथुरा-आगरा की ब्रजभाषा, लखनऊ-फैजाब की अवधी, बनारस-गोरखपुर की भोजपुरी तथा पहाड़ी प्रदेश की गढ़वाली-कुमायूँनी कनौजी बोली पूर्वी ब्रजभाषा मात्र है।

देहली कमिश्नरी की बागरू बोली खड़ी बोली का सरहदी रूप है। उत्तर प्रदेश के नासी कमिश्नरी तथा मध्यप्रदेश में बुंदेली, बघेली और छत्तीसगढ़ी का क्षेत्र है, जिनके केंद्र क्र झाँसी, रीवां तथा रायपुर हैं। राजस्थान की प्रधान उपभाषा मारवाड़ी है तथ यपुरी, मेवाती और मालवी राजस्थानी वर्ग की अन्य गौण उपभाषाएँ हैं। बिहार प्रांत मैथिली तथा मगही उपभाषाएँ बोली जाती हैं। हिंदी प्रदेश की उपर्युक्त उपभाषाओं खड़ी बोली साहित्यिक हिंदी वर्तमान समय में इस समस्त प्रदेश की प्रधान साहित्यिक ाषा है। खड़ी बोली साहित्यिक हिंदी ही भारत संघ की राजभाषा स्वीकृत हो गई है।

इस प्रदेश की *गौण साहित्यिक भाषाएँ निम्नलिखित रही हैं*—ब्रजभाषा, अवधी, मारवाड़ी या डिंगल, मैथिली तथा खड़ी बोली को उर्दू शैली।

उ—हिंदी शब्द समूह[1]

शब्द समूह की दृष्टि से प्रत्येक भाषा एक प्रकार से खिचड़ी होती है। किसी भी भाषा के संबंध मे यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपने आदि विशुद्ध रूप मे आजतक चली जाती है। भाषा के माध्यम की सहायता से दो व्यक्ति अथवा समुदाय अपने विचार एक-दूसरे पर प्रकट करते हैं, अतः भाषा का मिश्रित होना उसका स्वभाव ही समझना चाहिए। भाषा के संबंध में 'विशुद्ध' शब्द से केवल इतना ही तात्पर्य हो सकता है कि किसी विशेष काल अथवा देश में उसका यह विशेष रूप प्रचलित था या है। उन्हीं अवस्थाओं मे वह भाषा विशुद्ध कहला सकती है, दूसरे देश अथवा उसी देश में दूसरे काल मे उसी भाषा का रूप बदल जायगा और तब इस परिवर्तित रूप को ही 'विशुद्ध' की उपाधि मिल सकेगी। यदि भरतपुर के गाँव मे आजकल 'का खन उतरे हे ह्याँ' कहना विशुद्ध भाषा का प्रयोग करना है तो मेरठ जिले मे इसी पर लोगों को हँसी आ जाती है। मेरठ में 'कब उत्रे थे ह्याँ' ऐसा कहना ही शुद्ध भाषा का प्रयोग करना हो सकता है। भरतपुर के उसी गाँव मे पाँच सौ वर्ष बाद यही बात किसी दूसरे 'विशुद्ध' रूप मे कही जायगी और पाँच सौ वर्ष पहिले कदाचित् भिन्न 'विशुद्ध रूप' में कही जाती रही होगी। अतः अन्य समस्त भाषाओं के समान ही हिंदी शब्दसमूह मे भी अनेक जीवित तथा मृत भाषाओ का संग्रह मौजूद है।

साधारणतया हिंदी शब्दसमूह तीन श्रेणियो में विभक्त किया जा सकता है—

क—भारतीय आर्यभाषाओं का शब्दसमूह।

ख—भारतीय अनार्यभाषाओं से आए हुए शब्द।

ग—विदेशी भाषाओं के शब्द।

क—भारतीय आर्यभाषाओं का शब्द समूह

१—तद्भव—हिंदी शब्दसमूह में सब से अधिक संख्या उन शब्दों की है, जो प्राचीन आर्यभाषाओं से मध्यकालीन भाषाओं में होते हुए चले आ रहे हैं। वैय्याकरणों की परिभाषा में ऐसे शब्दों को 'तद्भव' कहते हैं, क्योंकि ये संस्कृत से उत्पन्न माने जाते थे। इनमें से अधिकांश का संबंध संस्कृत शब्दों से अवश्य जोड़ा जा सकता है, किंतु जिन शब्दों का संबंध संस्कृत से नहीं जुड़ता उनमे ऐसे शब्द भी हो सकते हैं जिनका उद्गम प्राचीन

---

[1] ग्रं० बें० सें०, ४, ११-१२३, लि० स०, भूमिका, पृ० १२७ ई०

भारतीय आर्यभाषा के ऐसे शब्दों से हुआ हो जिनका व्यवहार इसके साहित्यिक रूप संस्कृत में न होता हो। अतः तद्भव शब्द का संस्कृत शब्द से सीधे निकल आना अनिवार्य नहीं है। इस श्रेणी के शब्द प्रायः मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं में होकर हिंदी तक पहुँचे हैं, अतः इनमें से अधिकांश के रूपों में बहुत परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है। जनता की बोलियों में तद्भव शब्द बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। साहित्यिक हिंदी में इनकी संख्या कम होती जाती है, क्योंकि ये गँवारू समझे जाते हैं। वास्तव में ये असली हिंदी शब्द हैं और इनके प्रति विशेष ममता होनी चाहिये। कृष्ण की अपेक्षा 'कान्हा' व 'कन्हैया' हिंदी का अधिक सच्चा शब्द है।

२—तत्सम—साहित्यिक हिंदी में तत्सम अर्थात् प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के साहित्यिक रूप अर्थात् संस्कृत के विशुद्ध शब्दों की संख्या सदा से अधिक रही है। आधुनिक साहित्यिक भाषा में तो यह संख्या और भी अधिक बढ़ती जा रही है। इसका कारण कुछ तो नवीन भाषा की आवश्यकताएँ हैं, किंतु अधिकतर विद्वत्ता प्रकट करने की आकांक्षा इसके मूल में रहती है। अधिकांश तत्सम शब्द आधुनिक काल में हिंदी में आए हैं। कुछ तत्सम शब्द ऐसे भी हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से तद्भव शब्दों के बराबर ही प्राचीन हैं, किंतु ध्वनियों की दृष्टि से सरल होने के कारण इनमें परिवर्तन करने की कभी आवश्यकता नहीं पड़ी। जो संस्कृत शब्द आधुनिक काल में विकृत हुए हैं, वे 'अर्द्धतत्सम' कहलाते हैं, जैसे 'कान्हा' तद्भव रूप है क्योंकि संस्कृत 'कृष्ण' को लेकर यह आधुनिक समय में ही बिगाड़ कर बनाया गया है।

बंगला, मराठी, पंजाबी आदि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं से आए हुए शब्द हिंदी में बहुत कम हैं, क्योंकि हिंदी-भाषी लोगों ने संपर्क में आने पर भी इन भाषाओं को बोलने का कभी उद्योग नहीं किया। इन अन्य भाषाओं के शब्दसमूह पर हिंदी की छाप अधिक गहरी है।

ख—भारतीय अनार्यभाषाओं से आए हुए शब्द

हिंदी के तत्सम और तद्भव शब्दसमूह में बहुत से शब्द ऐसे हैं जो प्राचीन काल में नार्यभाषाओं से तत्कालीन आर्यभाषाओं में ले लिए गए थे। हिंदी के लिए वास्तव में आर्यभाषा के ही शब्द के समान है। प्राकृत वैयाकरण जिन प्राकृत शब्दों को संस्कृत शब्द-मूह में नहीं पाते थे उन्हें 'देशी' अर्थात् अनार्यभाषाओं से आये हुए शब्द मान लेते थे।
ने बहुत से बिगड़े हुए तद्भव शब्दों को भी देशी समझ रक्खा था। तामिल,
वि. या मुंडा, कोल आदि अन्य अनार्यभाषाओं से आधुनिक काल में आए
बहुत कम हैं।

द्राविड़ भाषाओं से आए हुए शब्दों का प्रयोग हिंदी में प्रायः बुरे अर्थों में होता है। द्राविड़ 'पिल्लै' शब्द का अर्थ पुत्र होता है, वही शब्द हिंदी मे 'पिल्ला' होकर कुत्ते के बच्चे के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। मूर्द्धन्य वर्ण से युक्त कुछ शब्द यदि सीधे द्राविड़ से नहीं आए हैं तो कम से कम उन पर द्राविड़ भाषाओ का प्रभाव तो बहुत ही पड़ा है। मूर्द्धन्य वर्ण द्राविड़ भाषाओं की विशेषता है। कोल भाषाओं का हिंदी पर प्रभाव उतना स्पष्ट नहीं है। हिंदी मे बीस-बीस करके गिनने की प्रणाली कदाचित् कोल भाषाओं से आई है। कोड़ी शब्द स्वयं कोल भाषाओं से आया मालूम पड़ता है। इस तरह के कुछ शब्द और भी हैं।[1]

ग—विदेशी भाषाओं के शब्द

सैकड़ों वर्षों से विदेशी शासन मे रहने के कारण हिंदी पर कुछ विदेशी भाषाओं का प्रभाव भारतीय भाषाओं की अपेक्षा भी अधिक पड़ा है। यह प्रभाव दो श्रेणियों मे विभक्त किया जा सकता है—(१) मुसलमानी प्रभाव, (२) यूरोपीय प्रभाव। किंतु दोनों प्रकार के प्रभावों में सिद्धात के रूप से बहुत कुछ समानता है। मुसलमानो तथा अंग्रेज़ो, दोनों के शासक होने के कारण एक ही ढंग का शब्दसमूह इनकी भाषाओं से हिंदी में आया है। विदेशी शब्दों को हम दो मुख्य श्रेणियो में रख सकते हैं—

(क) विदेशी संस्थाओं, जैसे कचहरी, फ़ौज, स्कूल, धर्म आदि से संबंध रखने वाले शब्द।

(ख) विदेशी प्रभाव के कारण आई हुई नई वस्तुओं के नाम, जैसे नए पहनावे, खाने, यंत्र तथा खेल आदि की वस्तुओ के नाम।

१—फारसी, अरबी, तुर्की तथा पश्तो शब्द—१००० ई० के लगभग फ़ारसी बोलनेवाले तुर्कों ने पंजाब पर क़ब्ज़ा कर लिया था, अतः इनके प्रभाव से तत्कालीन हिंदी प्रभावित होने लगी थी। रासो तक मे फ़ारसी शब्दों की संख्या कम नहीं है। १२०० ई० के बाद लगभग ६०० वर्ष तक हिंदी-भाषी जनता पर तुर्क, अफ़ग़ान, तथा मुग़लों का शासन रहा, अतः इस समय सैकड़ों विदेशी शब्द गाँव की बोली तक मे घुस आए। तुलसी और सूर जैसे वैष्णव महाकवियों की विशुद्ध हिंदी भी विदेशी शब्दों के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकी। हिंदी मे प्रचलित विदेशी शब्दों मे सबसे अधिक संख्या फ़ारसी की है, क्योंकि समस्त मुसलमान शासकों ने चाहे वे किसी भी नसल के क्यों न हों, फारसी को ही दरबारी तथा

---

[1] बंगाली में प्रयुक्त टवर्ग से युक्त देशी शब्दों के लिए देखिए, बं० बे० सं०, २६८-२७२।

साहित्यिक भाषा की तरह अपना रक्खा था। अरबी तथा तुर्की[1] आदि के जो शब्द हिंदी में मिलते हैं, वे फ़ारसी से होकर ही हिंदी में आए हैं।

२--यूरोपीय भाषाओं के शब्द--लगभग १५०० ई० से यूरोप के लोगों का भारत में आना-जाना प्रारंभ हो गया था, किंतु करीब तीन सौ वर्ष तक हिंदी-भाषी इनके संपर्क में अधिक नहीं आए, क्योंकि यूरोपीय लोग समुद्र के रास्ते से भारत में आए थे, अतः इनका कार्य-क्षेत्र प्रारंभ में समुद्र तटवर्ती प्रदेशों में ही विशेष रहा। इसी कारण प्राचीन हिंदी साहित्य में यूरोपीय भाषाओं के शब्द नहीं के बराबर हैं। १८०० ई० के लगभग हिंदी-भाषी प्रदेश मुगलों के हाथ से निकल कर अंग्रेज़ी शासन में चला गया। गत सौ-सवा-सौ वर्ष में हिंदी शब्दसमूह पर अंग्रेज़ी भाषा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।[2]

---

[1] हिंदुस्तान के ग़ज़नी, ग़ोर और ग़ुलाम आदि आरंभ के वंशों के मुसलमानी बादशाहों तथा भारतीय मुग़ल साम्राज्य के संस्थापक बाबर की मातृभाषा मध्य एशिया की तुर्की भाषा थी। टर्की इसी तुर्की की एक शाखा मात्र है। इस्लाम धर्म तथा ईरानी सभ्यता के प्रभाव के कारण इन तुर्की बोलनेवाले बादशाहों के समय में भी उत्तर-भारत में इस्लामी साहित्य की भाषा फ़ारसी और इस्लामी धर्म की भाषा अरबी रही, तो भी भारतीय फ़ारसी पर तथा उसके द्वारा आधुनिक आर्यभाषाओं पर तुर्की शब्दसमूह का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा। हिंदी में प्रचलित तुर्की शब्दों की एक सूची नीचे दी जा रही है:--

आक़ा (मालिक), उज़बक (मूर्ख), उर्दू, कलगी, कैंची, क़ाबू, कुली, कोर्मा, ख़ातून (स्त्री), ख़ां, ख़ानुम (स्त्री), ग़लीचा, चक़मक़ (पत्थर), चाक़ू, चिक, तमग़ा, तग़ार, ... क, तोप, दरोग़ा, बक़्चा, बावर्ची, बहादुर, बीबी, बेगम, बक़चा, मुचलका, लाश, सौग़ात, ... प्रत्यय-ची (जैसे मशालची, ख़ज़ांची, इत्यादि)।

पठान और रोहिला (रोह=पहाड़) शब्द पश्तो के हैं।

[2] हिंदी के विदेशी शब्दसमूह में फ़ारसी के बाद अंग्रेज़ी शब्दों की संख्या सबसे अधिक ... अब भी नए अंग्रेज़ी शब्द आ रहे हैं। अतः इनकी पूर्ण सूची बन सकना अभी संभव ... है। तो भी अंग्रेज़ी विदेशी शब्दों की एक विस्तृत सूची नीचे दी जा रही है। इन शब्दों में कुछ तो गाँवों तक में पहुँच गए हैं। इस सूची में बहुत शब्द ऐसे भी हैं, जो अंग्रेज़ी ...ओं या अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों से संपर्क में आने के कारण केवल शहर में रहनेवाले ... लोगों के मुँह से ही सुन पड़ते हैं। कुछ शब्द कई रूपों में व्यवहृत होते हैं, किंतु ... अधिक प्रचलित रूप ही दिया गया है।

अंजन, अक्तूबर, अफ़िम (?) वोट, अटेन्शन, असरफ़ेमरी, अपील, अप्रैल, अफ़सर, ..., अर्दली, अलबम, अस्पताल, असेंबली।

संपर्क में आने पर भी आवश्यक विदेशी शब्दों को अछूत-सा मान कर न अपनाना अस्वाभाविक है। यत्न करने पर भी यह कभी संभव नहीं हो सका है। अनावश्यक

आइलैंड, आपरेशन, आर्डर, आफिस।

इंसपेक्टर, इंच, इंजीनियर, इंटर, इंट्रेंस, इटली, इनकमटैक्स, इस्टेंचर, इस्प्रेस, इस्काउट, इस्काटलैंड, इस्कूल, इस्पिरिट, इस्पेन, इस्पेशल, इस्टूल, इस्टीमर, इस्क्रू, इस्प्रिंग, इस्टाम, इस्पीच, इस्पेलिंग, एजंट, एजेंसी, एरन, ए० फे०, ए० मे०, एडवर्ड, ऐक्ट, ऐक्टर, ऐक्टिंग, एलक्लाय, ओवरकोट, ओवरसियर, औट।

कलट्टर, कमिश्नर, कमीशन, कंपनी, कलंडर, कंपौंडर, कफ़, कटपीस, कर्नल, कमेटी, कैंटूनमिंट, कस्टरऐल, कंपू, कान्फ्रेंस, कापी, कालर, कांजी (?) हौज, काग, कारड, कार्निस, कांग्रेस, कामा, कालिज, कानिस्टबल, क्वाटर, किलब, किरकिट, किलास, किलर्क, किलिप, कुल्तार, कुइला, कूपन, कुनैन, केक, केतली, कैंच, (-औट), कोट, कोरम, कोरट, कोको-जम, (कोको-पुर्तगाली), कोको, कोचवान, कौंसिल।

गजट, गडंर, गाटर, गार्ड, गिरमिट, गिलास, गिलट, गिन्नी, गोपाल (वार्निश) गेट, गेटिस, गैस, गौन।

धासलेटी।

चाक, चाकलेट, चिमनी, चिक, चिट, चुरट (तामिल—शुरुट्टु,) चेर, चेंरमैन, चैन।

जंटलमैन, जंट, जंपर, जमनास्टिक, जज, जर्मनी, जर्नल, जनवरी, जर्नल-मर्चंट, जाकट, जाज, जुलाई, जून, जेल, जेलर।

टन, टब, ट्रंक, ट्राली, ट्राइस्किल, ट्रांबे, टिकट, टिकस, टिमाटर, टिंपरेचर, टिफिन, टॅाम, टीन, टुइल, टयूब, टेम, टेनिस, टेबिल, टेसन, टेलीफून, ट्रेन, टैर, टैमटेबिल, टोल, टौनहाल।

ठेठर।

डबल, डबलमार्च, डंबल, डाक्टर, ड्रामा, डायरी, डिकशनरी, डिप्टी, डिस्ट्रिक्टबोर्ड, डिगरी, डिरंवर, डिमारिज, डिकस, डिपलोमा, डिउटी, ड्रिल, डीपो, डेरी, डमनकाट, डौन।

तारकोल।

थर्ड, थर्मामीटर।

दर्जन, दलेल (ड्रिल), दराज, दिसम्बर।

नर्स, नकटाई, नवंबर, नंबर, नाविल, निकर, निब, निकलस, नोट, नोटिस, नोटबुक।

पसिंजर, पल्टन, परेड, पलस्तर, पतलून, पंचर, पंप, पाकट, पारक, पालिस, पार्टी, पापा, पाट, पार्सल, पास, प्राइमरी, पिलाट, पिलीडर, पिसन, पिंसिल, पियानो, पिलेट,

विदेशी शब्दों का प्रयोग करना दूसरी अति है। मध्यम मार्ग यही है कि अपनी भाषा के ध्वनि-समूह के आधार पर विदेशी शब्दों के रूप में परिवर्तन करके उन्हें आवश्यकतानुसार सदा मिलाते रहना चाहिए। इस प्रकार शुद्धि करने के उपरांत लिए गए विदेशी शब्द जीवित भाषाओं के शब्द-भंडार को बढ़ाने में सहायक ही होते हैं।

पिलेट-फार्म, पिट्ठोल, पिन, पिपरमेंट, पिस्तग, पुल्टिस, पुरफेसर, पुलिस, पुर्तगाल, पुडोन, पेटीकोट, प्रेग, प्रेसीडेंट, पैसा, पैर, पेंट, पेंटमैन, पोलो, पोसकाट, पौंड, पौडर।

फर्मा, फर्स्ट, फलालैन, फरवरी, फरलांग, फारम, फिरांस, फिरंन्ल, फिटन, फिराक, फीस, फुटबाल, फुलबूट, फुट, फेन, फेम, फैर, फैसन, फैसनेबिल, फोटो, फोटोगिराफी, फोनोग्राफ।

बैंक, बम, बटेलियन, बरांडी, बटन, बकस, बग्घी, बक्काट, बनयाइन, बाइल, बारिक, बालिस्टर, वास्कट, बिस्टी, बिलडिंग, बिगुल, बिरजिस, बिरीटस, बिराण्डी, बिलूबिलैक, बिच, बी० ए०, बुकसेलर, बुलडाग, बुरुस, बूट, बेंड, बैरंग, बैस्कोप, बैरिकस, बैंट, बैरा, बोट, बोरड, बोडिंग।

मसीन, मजिस्ट्रेट, मनीबेग, मनीआर्डर, मई, मन, मफलर, मलेरिया, ममोरियल, मनेजर, मटन, माचिस, मास्टर, मारकीन, मिल, मिनीसुपिल्टी, मिनट, मिस्मरेजम, मिल, मिसनरी, मिक्सचर, मीटिंग, मेजर, मेंबर, मैंट, मेम, मोटर।

रंगरूट, रबड़, रसीद, रपट, रन, रजीमिंट, रासन, रजिस्ट्री, रिजिस्टर, रिजिस्ट्रार, रिजल्ट, रिटाइर, रिवालवर, रिकार्ड, रिविट, रीडर, रूल, रेजीडेंसी, रेस, रेल, रैफल, फिल, रोड।

लैंफलाट, लैंप, लफटंट, लमलेट, लंबर, लवंडर, लंच, लाटरी, लाट, लाइब्रेरी, लालटेन, लान, लेन, लेटरबक्स, लेक्चर, लेबिल, लैंडो, लैन, लैनकिलियर, लैसंस, लैस, लैमनचूस, मुनेड, लोट (नोट), लोकल, (गाड़ी), लोअरप्रैमरी।

वारनिश, वास्कट, वाइल, वारंट, वायलिन, वालंटियर, वाइसराय, विक्टोरिया, ० पी०, वेटिंगरूम, वोट, वेसलीन।

सम्मन, सर्जन, सरज, सटरजेल, संतरी, सरकस, सब (-जज), सरविस, सार्टीफिकेट, इंस, सिगरट, सिलिंग, सिल्क, सिमिट, सितम्बर, सिरस्तर, सिगल, सिलीपर, सिलेट, (बटन), सिविलसर्जन, सुइटर, सुपरडंट, सूट, सूटकेस, सेशन, सेफ्टीपिन, सेकिंड, ल, सोप, सोडावाटर।

हरीकेन (लालटेन), हाईकोर्ट, हाईस्कूल, हारमुनियम, हाकी, हाल, हापसाइड, हिट, टोरिया, ह्विस्की, हिप्पू, हुड, हुक, हुर्रे, हेडमास्टर, हैट, होलडर, होस्टल, होमोपैथी।

कुछ पुर्तगाली,[1] डच तथा फ्रांसीसी[2] शब्द भी हिंदी ने ऐसे अपना लिए हैं कि वे सहसा विदेशी नहीं मालूम होते।

ऊ—हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं का विकास

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि १००० ई० के बाद मध्यकालीन भारतीय आर्य- भाषा के अंतिम रूप अपभ्रंश भाषाओं ने धीरे-धीरे बदल कर आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का रूप ग्रहण कर लिया और गंगा की घाटी में प्रयाग या काशी तक बोली जाने वाली शौरसेनी अर्द्धमागधी अपभ्रंशों ने हिंदी प्रदेश के समस्त प्रधान रूपों को जन्म दिया। गत एक सहस्र वर्ष में हिंदी भाषा किस तरह विकसित होती गई तथा उसके अध्ययन के लिए क्या सामग्री उपलब्ध है, इसी का यहाँ संक्षेप में वर्णन करना है।

हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं के विकास का इतिहास साधारणतया तीन मुख्य कालों में विभक्त किया जा सकता है :—

---

[1] हिंदी में कुछ पुर्तगाली शब्द आ गये हैं, किंतु इनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है। पुर्तगाली शब्दों का इतनी संख्या में भी हिंदी में पाया जाना आश्चर्यजनक है। हिंदी में प्रचलित पुर्तगाली शब्दों की सूची नीचे दी जा रही है:—

अनन्नास, अल्मारी, अचार, आलपीन, आया, इस्पात, इस्त्री, कमीज, कप्तान, कनिस्तर, कमरा, काज, काफी, काजू, काकातुआ, किस्तान, किरच, गमला, गारद, गिर्जा, गोभी, गोदाम, चाबी, तंबाकू, तौलिया, तौला, नीलाम, परात, परेक, पाउ (रोटी), पादरी, पिस्तौल, पीपा, फर्मा, फीता, फ्रांसीसी, बर्गा, बपतिस्मा, बाल्टी, बिसकुट, बुताम, बोतल, मस्तूल, मिस्त्री, मेज, मसू, लबादा, संतरा, साया, सागू।

बंगाली भाषा में आने पर पुर्तगाली शब्दों के ध्वनि-परिवर्तन-संबंधी विस्तृत विवेचन के लिए देखिए, बँ० बे० लैं०, अ० ७।

[2] पुर्तगाल के लोगों की अपेक्षा फ्रांसीसियों से हिंदुस्तानियों का कुछ अधिक संपर्क रहा था, किंतु फ्रांसीसी शब्द हिंदी में दो चार से अधिक नहीं हैं। यही अवस्था डच भाषा के शब्दों की भी है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं:—

फ्रांसीसी:—कारतूस, कूपन, अंग्रेज।

डच:—तुरुप, बम (गाड़ी का)।

जर्मन आदि अन्य यूरोपियन भाषाओं के शब्द हिंदी में कदाचित् बिल्कुल नहीं हैं। कम से कम अभी तक पहिचाने नहीं जा सके हैं। 'अल्पका' शब्द यदि अंग्रेजी में नहीं आया है तो स्पेनिश हो सकता है।

(क) प्राचीनकाल (१५०० ई० तक) जब अपभ्रंश तथा प्राकृतों का प्रभाव हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं पर मौजूद था तथा साथ ही हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं के निश्चित स्पष्ट रूप विकसित नहीं हो पाए थे।

(ख) मध्यकाल (१५००—१८०० ई०), जब हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं ने अपभ्रंशों का प्रभाव बिल्कुल छोड़ दिया था और हिंदी प्रदेश की उपभाषाएँ, विशेषकर खड़ी बोली, ब्रज और अवधी, अपने पैरों पर स्वतन्त्रतापूर्वक खड़ी हो गई थीं।

(ग) आधुनिक काल (१८०० ई० के बाद), जब से हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं के मध्यकाल के रूपों में परिवर्तन आरंभ हो गया है तथा साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि से खड़ी बोली ने हिंदी प्रदेश की अन्य उपभाषाओं को दबा लिया है।

इन तीनों कालों को क्रम से लेकर तत्कालीन परिस्थिति, भाषा-सामग्री तथा भाषा के रूप पर संक्षेप में नीचे विचार किया गया है।

क—प्राचीन काल (१५०० ई० तक)

हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं का इतिहास जिस समय प्रारंभ होता है उस समय हिंदी प्रदेश तीन राज्यों में विभक्त था और इन्हीं तीन केन्द्रों में हम आधुनिक भाषा संबंधी सामग्री पाने की आशा कर सकते हैं। पश्चिम में तोमरवंश की राजधानी दिल्ली थी। पृथ्वीराज के समय में अजमेर चौहान वंश का राज्य भी इसमें सम्मिलित हो गया था। दिल्ली राज्य की सीमाएँ पश्चिम में पंजाब के मुसलमानी राज्य से मिली हुई थीं। दक्षिण-पश्चिम में राजस्थान के राजपूत राज्यों से इसकी घनिष्ठता थी, किंतु पूरब की सीमा पर सदा घरेलू युद्ध होते रहते थे। नरपति नाल्ह तथा चंद कवि का संबंध क्रम से अजमेर और दिल्ली से था। चौहान राज्य के पूर्व में राठौर अथवा गहरवार वंश की राजधानी कन्नौज थी और इस राज्य की सीमाएँ अयोध्या तथा काशी तक चली गई थीं। कन्नौज के अंतिम सम्राट जयचंद का दरबार साहित्य-चर्चा का मुख्य केंद्र था, किन्तु यहाँ 'भाषा' की अपेक्षा संस्कृत तथा प्राकृत का कदाचित् विशेष आदर था। संस्कृत के अन्तिम महाकाव्य 'नैषधीय-चरितम्' के लेखक श्रीहर्ष जयचन्द के दरबार में ही राजकवि थे। कन्नौज के दरबार में भाषा-साहित्य की चर्चा भी रही होगी, किंतु प्राचीन कन्नौज नगर के पूर्णरूप से नष्ट हो जाने के कारण इस केंद्र की सामग्री अब बिल्कुल ही उपलब्ध नहीं है। इन दोनों राज्यों के दक्षिण में महोबा का प्रसिद्ध राज्य था। आल्ह खंड के लेखक महोबा के राजकवि जगनायक या जगनिक का नाम तो आज तक प्रसिद्ध है, किंतु इस महाकवि की मूलकृति का अब पता नहीं चलता।

११९१ ई० तक मध्यदेश के ये तीनों अंतिम हिंदू राज्य मौजूद थे, किंतु इसके बाद दस-बारह वर्ष के अन्दर ही ये तीनों राज्य नष्ट हो गए। ११९१ में मुहम्मद गोरी ने

पानीपत के निकट पृथ्वीराज को हरा कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। अगले वर्ष इटावा के निकट जयचंद की हार हुई। कन्नौज से लेकर काशी तक का प्रदेश विदेशियों के हाथों में चला गया। शीघ्र ही महोबा पर भी मुसलमानों ने कब्जा कर लिया। इस तरह समस्त हिंदी प्रदेश पर विदेशी शासकों का आधिपत्य हो गया। विकसित होती हुई नवीन उपभाषाओं के लिए यह बड़ा भारी धक्का था, जिसके प्रभाव से ये अबतक भी मुक्त नहीं हो सकी हैं। हिंदी प्रदेश की भाषा के इतिहास के संपूर्ण प्राचीन काल मे मध्यदेश पर तथा उसके बाहर शेष उत्तर भारत पर भी तुर्की सुल्तानों का साम्राज्य कायम रहा (१२०६—१५२६ ई०)। इन सम्राटों की मातृभाषा तुर्की थी तथा दरबार की भाषा फारसी थी। इन विदेशी शासकों की रुचि जनता की भाषा तथा संस्कृत के अध्ययन करने की ओर बिल्कुल ही न थी, अत. तीन-सौ वर्ष से अधिक इस साम्राज्य के कायम रहने पर भी दिल्ली के राजनीतिक केन्द्र से हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं की उन्नति मे बिलकुल ही सहायता नहीं मिल सकी। इस काल मे केवल अमीर खुसरो ने मनोरंजन के लिए भाषा से कुछ प्रेम दिखलाया था। इस काल के अंतिम दिनो मे पूर्वी मध्यदेश मे धार्मिक आंदोलन के कारण भाषा मे कुछ काम हुआ, किंतु इसका संबंध तत्कालीन राज्य से बिलकुल ही न था। राज्य की ओर से सहायता की अपेक्षा कदाचित् बाधा ही विशेष मिली। इस प्रकार के आंदोलनों में गोरखनाथ, रामानंद तथा उनके प्रमुख शिष्य कबीर के संप्रदाय उल्लेखनीय हैं।

हिंदी भाषा के इस प्राचीन काल की सामग्री नीचे लिखे भागों मे विभक्त की जा सकती है :—

१—शिलालेख, ताम्रपत्र, तथा प्राचीन पत्र आदि।

२—अपभ्रंश काव्य।

३—चारण-काव्य, जिसका आरंभ गंगा की घाटी मे हुआ था, किंतु राजनीतिक उथल-पुथल के कारण बाद को जो प्रायः राजस्थान मे लिखे गए तथा धार्मिक ग्रंथ व अन्य काव्य-ग्रंथ।

४—हिंदवी अथवा पुरानी खड़ी बोली मे लिखा साहित्य।

विदेशी शासन होने के कारण इस काल मे प्रादेशिक उपभाषाओं में लिखे शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों आदि के अधिक संख्या मे पाए जाने की संभावना बहुत कम है। इस संबंध मे विशेष खोज भी नहीं की गई है, नहीं तो कुछ सामग्री अवश्य ही उपलब्ध होती।[1] हिंदी प्रदेश की भाषा के सबसे प्राचीन नमूने पृथ्वीराज तथा समरसिंह के दरबारों से संबंध

---

[1]मध्यप्रांत के हिंदी शिलालेखों के संबंधमें देखिए, श्री हीरालाल का 'हिंदी के शिलालेख और ताम्रलेख' शीर्षक लेख (ना० प्र० प०, भा० ६, सं० ४)।

रखनेवाले पत्रों के रूप में समझे जाते थे, जिनको नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया था, किंतु ये अप्रमाणिक सिद्ध हुए।

पीतांबरदत्त बर्थवाल[1] तथा श्री राहुल सांकृत्यायन[2] ने नाथपंथ तथा वज्रयानी सिद्धसाहित्य की ओर हिंदी पाठकों का ध्यान पहले पहल आकर्षित किया, तथा बहुत-सी नवीन सामग्री भी ये विद्वान प्रकाश में लाए। इस सामग्री की प्राचीनता तथा प्रामाणिकता की अभी पूर्ण परीक्षा नहीं हो पाई है। इन कवियों का समय ७०० ई० से १३०० ई० के बीच में माना जाता है किंतु इनकी रचनाओं का वर्तमान रूप भी उसी समय का है, यह विचारणीय है। प्रारंभिक सिद्धों की कृतियों की भाषा स्पष्टतया अपभ्रंश (मागधी) है।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', भाग २, अंक ४ में 'पुरानी हिंदी' शीर्षक लेख में जो नमूने दिए हैं वे प्रायः गंगा की घाटी के बाहर के प्रदेशों में बने ग्रंथों के हैं, अतः इनमें हिंदी के प्राचीन रूपों का कम पाया जाना स्वाभाविक है। अधिकांश उदाहरणों की भाषा में अपभ्रंश का प्रभाव इतना अधिक है कि इन ग्रंथों को इस काल के अपभ्रंश साहित्य[3] के अंतर्गत रखना अधिक उचित मालूम होता है। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में ऐसा किया भी है। तो भी इन नमूनों से अपनी भाषा की पुरानी परिस्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है।

इस काल की भाषा के नमूनों का तीसरा समूह चारण, धार्मिक तथा लौकिक काव्य-

---

[1] बर्थवाल : हिंदी कविता में योग-प्रवाह, (ना० प्र० प०, भाग ११, अं० ४, १९३०), गोरखबानी (१९४२)।

[2] राहुल सांकृत्यायन : पुरातत्व-निबंधावली (१९३७); हिंदी काव्य-धारा (१९४५)।

[3] इस प्रकार के प्रामाणिक ग्रंथों में हेमचंद्र-रचित 'कुमारपालचरित' तथा 'सिद्ध-हैमव्याकरण' सबसे प्राचीन हैं। हेमचंद्र की मृत्यु ११७२ ई० में हुई थी, अतः इन ग्रंथों का रचना-काल इसके पूर्व ठहरेगा। सोमप्रभाचार्य का 'कुमारपालप्रतिबोध' ११८४ ई० में लिखा गया था। इसमें कुछ सोमप्रभाचार्य के स्वरचित उदाहरण तथा कुछ प्राचीन उदाहरण मिलते हैं। जैन आचार्य मेरुतुंग ने 'प्रबंधचिंतामणि' नाम का संस्कृत ग्रंथ १३०४ ई० में बनाया था। इस काल में कुछ प्राचीन पद्य उद्धृत मिलते हैं, जो अपभ्रंश और हिंदी की बीच की अवस्था के द्योतक हैं। 'शार्ङ्गधर पद्धति' शार्ङ्गधर कवि द्वारा संग्रहीत सुभाषित-ग्रंथ है जिसमें शाबर-मंत्र और चित्रकाव्य में कुछ भाषा के शब्द आये हैं। शार्ङ्गधर रणथंभोर के महाराज हम्मीरदेव (मृत्यु १३०० ई०) के मुख्य सभासद राघवदेव का पोता था, अतः यह चौदहवीं सदी ईसवी के मध्य में हुआ होगा।

ग्रंथों में मिलता है।[1] भाषाशास्त्र की दृष्टि से इन ग्रंथों की भाषा के नमूने अत्यन्त संदिग्ध हैं। इनमें से किसी भी ग्रंथ की इस काल की लिखी प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध

---

[1]इस प्रकार के मुख्य-मुख्य लेखकों तथा उनके प्रकाशित ग्रंथों की सूची निम्न-लिखित है।

१—नरपति नाल्ह: 'बीसलदेव रासो' (११५५ ई०)—जिन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर यह ग्रंथ छापा गया है वे १६१२ और १६०२ ई० को लिखी हैं। मूलग्रंथ के अजमेर में लिखे जाने के कारण इसकी भाषा का राजस्थानी होना स्वाभाविक है। कहीं-कहीं कुछ खड़ी बोली के रूप भी पाये जाते हैं।

२—चंद: 'पृथ्वीराज रासो'—चंद का कविता-काल ११६८ से ११९२ ई० तक माना जाता है। वर्तमान 'पृथ्वीराज रासो' में कितना अंश चंद का रचा है, इस विषय में विद्वानों को बहुत संदेह है। वर्तमान रासो में ब्रजभाषा के साथ अपभ्रंश, खड़ी बोली तथा राजस्थानी का मिश्रण दिखलाई पड़ता है।

३—खुसरो: फुटकर काव्य—'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका', भाग २, अंक ३ में 'खुसरो की हिंदी कविता' शीर्षक से ब्रजरत्नदास ने खुसरो की जीवनी तथा हिंदी काव्य-संग्रह दिया है। खुसरो का समय १२५५—१३२५ ई० है। इनके सब प्रसिद्ध ग्रंथ फारसी में हैं। इनकी हिंदी कविता के नमूने के आधार पर एकमात्र जनश्रुति है। आधुनिक काल में लेखबद्ध किए जाने के कारण खुसरो की हिंदी आधुनिक खड़ी बोली हो गई है। 'खालिक-बारी' नाम के अरबी-फारसी हिंदी कोष में कुछ अंश हिंदी में हैं, किंतु यह ग्रंथ भी अपूर्ण है।

४—गोरखपंथ के संस्थापक गोरखनाथ के समय के संबंध में बहुत मतभेद है। इनका समय १०वीं शताब्दी ई० से १४वीं शताब्दी ई० के बीच में माना जाता है। इनके नाम से प्रसिद्ध कई ग्रंथ 'गोरखबानी' नाम के संग्रह में प्रकाशित हुए हैं। विस्तृत आलोचनात्मक अध्ययन के लिए देखिए, हजारीप्रसाद द्विवेदीकृत 'नाथ-संप्रदाय' का इतिहास।

५—विद्यापति (जन्म १३६२ ई०) का भाषापदसमूह अभी कुछ ही समय पूर्व संग्रह किया गया है। इन पदों में मिथिला में संग्रहीत पदों की भाषा मैथिली है तथा बंगाल में संग्रहीत पदसमूह की भाषा बंगला है। इनके किसी भी वर्तमान संग्रह की भाषा पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ की नहीं मानी जा सकती। विद्यापति के 'कीर्तिलता' नाम के ग्रंथ की भाषा अपभ्रंश है। इनके अन्य ग्रंथ प्रायः संस्कृत में हैं।

६—कबीरदास (१४२३ ई०) तथा उनके गुरुभाई संतों की भाषा के संबंध में भी निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। साधारणतया संतों की बाणी कुछ समय तक मौखिक रूप में चलती रही, अतः उनकी भाषा में नवीनता का प्रवेश होता रहना स्वाभाविक

नहीं है। बहुत दिनों तक मौखिक रूप में रहने के बाद लिखे जाने पर भाषा में परिवर्तन का हो जाना स्वाभाविक है, अतः हिंदी भाषा के इतिहास की दृष्टि से इन ग्रंथों के नए बहुत मान्य नहीं हो सकते। इस काल की भाषा के अध्ययन के लिए या तो पुराने लेखों की सहायता लेना उपयुक्त होगा या ऐसी हस्तलिखित प्रतियों से जो १५०० ई० से पहिले की लिखी हों।

दक्षिण भारत में लिखित हिंदी अथवा दक्नी उर्दू साहित्य का प्रारंभ १३२६ ई० में मोहम्मद तुग़लक के दक्षिण आक्रमण के बाद हुआ। हिंदी के प्रारंभिक कवि मुसलमान सूफ़ी फ़क़ीर थे, जिन्होंने अपने धार्मिक विचारों के प्रचार की दृष्टि से ये रचनाएँ लिखी थीं। यह साहित्य अभी देवनागरी लिपि में प्रकाशित नहीं हुआ है यद्यपि इसकी भाषा पुरानी खड़ी बोली है। इन लेखकों में सबसे प्रसिद्ध ख्वाजा बंदानवाज (१३२१—१४२२ ई०) थे। हिंदी में प्रारंभिक साहित्यिक रचनाएँ बीजापुर तथा गोलकुंडा के शासकों के द्वारा तथा उनकी संरक्षिता में १७वीं शताब्दी में लिखी गईं।

ख—मध्यकाल (१५००—१८००)

१५०० ई० के बाद देश की परिस्थिति में एक बार फिर भारी परिवर्तन हुए। १५२६ ई० के लगभग शासन की बागडोर तुर्की सम्राटों के हाथ में निकल कर मुग़ल शासकों के हाथ में चली गई। बीच में कुछ दिनों तक सूरवंश के राजाओं ने भी राज्य किया। इस परिवर्तनकाल में राजपूत राजाओं ने गंगा की घाटी पर अधिकार जमाना चाहा, किंतु वे इसमें सफल न हो सके। मुग़ल तथा सूरवंश के सम्राटों की सहानुभूति जनता की सभ्यता को समझने की ओर तुर्कों की अपेक्षा कुछ अधिक थी। देश में शांति रहने तथा राज्य की ओर से कम उपेक्षा होने के कारण इस काल में साहित्य-चर्चा भी विशेष हुई। वास्तव में यह काल हिंदी साहित्य का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है।

अवधी और ब्रजभाषा के दो मुख्य साहित्यिक रूपों का विकास सोलहवीं सदी में प्रारंभ हुआ। इन दोनों में ब्रजभाषा तो समस्त हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा हो गई, किंतु अवधी में लिखे गए 'रामचरितमानस' का हिंदी जनता में सबसे अधिक प्रचार होने पर भी साहित्य के क्षेत्र में अवधी भाषा का प्रचार नहीं हो सका। मध्यकाल में अवधी में

है। सभा की ओर से कबीर के ग्रंथों का जो संग्रह छपा है उसकी प्रतिलिपि यद्यपि १५०४ ई० की लिखी हस्तलिखित प्रति के आधार पर तैयार की गई है, किंतु उसमें पंजाबीपन इतना अधिक है कि उसके काशी में रहने वाले कबीरदास की मूल वाणी होने में बहुत संदेह मालूम होता है।

लिखे गए ग्रंथों मे दो मुख्य हैं—जायसी-कृत 'पद्मावत' (१५४० ई०) जो शेरशाह सूर के शासन-काल मे लिखा गया था और तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' (१५७५ ई०) जो अकबर के शासनकाल में लिखा गया था। इन दोनों ग्रंथों की बहुत-सी प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियाँ मिलती हैं।

वल्लभाचार्य के प्रोत्साहन से सोलहवी सदी के पूर्वार्द्ध मे ब्रजभाषा मे साहित्य-रचना प्रारंभ हुई। हिंदी साहित्य की इस शाखा का केंद्र पश्चिम मध्यप्रदेश मे था, अत' ब्रज-भाषा साहित्य को धर्म के साथ-साथ विदेशी तथा देशी राज्यों की संरक्षिता भी मिल सकी। सूरदास के ग्रंथ कदाचित् १५५० ई० तक रचे जा चुके थे। तुलसीदास ने भी 'विनयपत्रिका' तथा 'गीतावली' आदि कुछ काव्यों मे ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। अष्टछाप समुदाय के दूसरे महाकवि नंददास के ग्रंथ भी साहित्यिक ब्रजभाषा में हैं। सत्रहवी तथा अठारहवी शताब्दी मे प्राय: समस्त हिंदी प्रदेश का साहित्य ब्रजभाषा मे लिखा गया है। ब्रजभाषा का रूप दिन-दिन साहित्यिक, परिष्कृत तथा सुसंस्कृत होता चला गया है। बिहारी और सूरदास की ब्रजभाषा मे बहुत भेद है। बुंदेलखंड तथा राजस्थान के देशी राज्यों से संपर्क में आने के कारण इस काल के बहुत से कवियों की भाषा मे जहाँ-तहाँ बुंदेली तथा राजस्थानी बोलियों का प्रभाव आ गया है। उदाहरण के लिए, केशवदास (१६०० ई०) की ब्रजभाषा में बुंदेली प्रयोग बहुत मिलते हैं।

प्राचीन तथा मध्यकाल के ग्रंथों मे जहाँ-तहाँ खड़ी बोली के रूप भी बिखरे पड़े हैं। रासो, कबीर, भूषण आदि मे बराबर खड़ी बोली के प्रयोग वर्तमान है। इससे तो यह स्पष्ट ही है कि खड़ी बोली का अस्तित्व प्रारंभ से ही था, यद्यपि इस बोली का प्रयोग हिंदू कवि और लेखक साहित्य में विशेष नहीं करते थे। यह मुसलमानी बोली समझी जाती थी, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। दक्षिण मे हिंदवी अथवा पुरानी खड़ी बोली का साहित्य मे प्रयोग चौदहवी शताब्दी से प्रारंभ हो गया था, किंतु उत्तर-भारत मे मुसलमान शासकों की संरक्षिता मे इसका साहित्य मे प्रयोग अठारहवीं सदी के प्रारंभ से विशेष हुआ। इसमे पहले मुसलमान कवि भी यदि भाषा मे कविता करते थे तो अवधी या ब्रजभाषा का व्यवहार करते थे। जायसी, रहीम आदि इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। खड़ी बोली उर्दू के प्रथम प्रसिद्ध कवि हैदराबाद दक्खिन के वली माने जाते हैं। इनका कविता-काल अठारहवी सदी के पूर्वार्द्ध मे पड़ता है। अठारहवीं और उन्नीसवी सदी मे बहुत से मुसलमान कवियों ने काव्य-रचना करके खड़ी बोली उर्दू को परिमार्जित साहित्यिक रूप दिया। इन कवियों में मीर, सौदा, इंशा, ग़ालिब, ज़ौक़ और दाग़ उल्लेखनीय हैं।

गत डेढ़ दो सौ वर्षों से साहित्यिक खड़ी बोली—आधुनिक हिंदी और उर्दू—मेरठ-बिजनौर की जनता की खड़ी बोली से स्वतन्त्र होकर अपने-अपने ढंग से विकास प्राप्त कर रही है। स्वाभाविक बोली के प्रभाव से पृथक् हो जाने के कारण इसके व्याकरण का ढाँचा तथा शब्दसमूह निराला होता जाता है, तो भी अभी तक आधुनिक हिंदी-उर्दू के व्याकरण का स्वरूप मेरठ-बिजनौर की खड़ी बोली से बहुत अधिक भिन्न नहीं पाया है। भेद की अपेक्षा साम्य की मात्रा अधिक है।

साहित्य के क्षेत्र मे खड़ी बोली हिंदी के व्यापक प्रभाव के रहते हुए भी हिंदी प्रदेश की अन्य उपभाषाएँ अपने-अपने प्रदेशों मे आज भी पूर्ण-रूप से जीवितावस्था मे हैं। मध्यदेश के गाँवों की समस्त जनता अब भी खड़ी बोली के अतिरिक्त ब्रज, अवधी, बुंदेली, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी आदि उपभाषाओं के आधुनिक रूपों का व्यवहार कर रही है। गाँव के अपढ़ लोग बोलचाल की आधुनिक साहित्यिक हिंदी को समझ बराबर लेते हैं, किंतु ठीक-ठीक बोल नहीं पाते। गाँव की उपभाषाओं में भी धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। जायसी की अवधी मे पर्याप्त भेद हो गया है। इसी तरह सूरदास की ब्रजभाषा से आजकल की ब्रज की बोली कुछ भिन्न हो गई है। इन परिवर्तनों को प्रारंभ होते हुए डेढ़-सवा सौ वर्ष अवश्य बीत चुके हैं, इसीलिए लगभग १८०० ई० से हिंदी भाषा के इतिहास के तीसरे काल का प्रारंभ माना जा सकता है। यद्यपि अभी भेदों की मात्रा अधिक नहीं हो पाई है, किन्तु संभावना यही है कि ये भेद बढ़ते ही जावेंगे और सौ-दो-सौ वर्ष के अन्दर ही ऐसी परिस्थिति आ सकती है जब तुलसी, सूर आदि की भाषा को स्वाभाविक ढंग से समझ लेना अवध और ब्रज के लोगों के लिए भी कठिन हो जावेगा। इस प्रगति का प्रारंभ हो गया है।

ए—देवनागरी लिपि और अंक

यद्यपि हिंदी प्रदेश में उर्दू, रोमन, कैथी, मुड़िया, मैथिली, आदि अनेक लिपियों का थोड़ा बहुत व्यवहार है, किंतु देवनागरी लिपि का स्थान इनमे सर्वोपरि है। लिखने के अतिरिक्त छपाई मे तो प्रायः एकमात्र इसी का व्यवहार होता है। यदि देवनागरी लिपि की प्रतिद्वंद्विता किसी से है तो उर्दू लिपि से है। भारतवर्ष के अधिकांश पढ़े-लिखे मुसलमानों तथा पंजाब, आगरा-दिल्ली की तरफ हिंदुओं मे उर्दू लिपि का व्यवहार पाया जाता है, किंतु देवनागरी लिपि का प्रचार समस्त हिंदी प्रदेश में तथा उसके बाहर महाराष्ट्र मे है। ऐतिहासिक दृष्टि से देवनागरी का मूल संबंध भारत की प्राचीनतम राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी से है। ब्राह्मी और देवनागरी का संबंध समझाने के लिए

बनने लगे और स्वरों की मात्राओं के प्राचीन चिह्न लुप्त होकर नए रूपों में परिणत ह
गए।''[1]

गुप्तलिपि के विकसित रूप का कल्पित नाम 'कुटिल लिपि' रक्खा गया है। इसका
प्रचार छठी से नवीं शताब्दी ई० तक उत्तर-भारत में रहा। 'कुटिलाक्षर' नाम का प्रयोग
प्राचीन है। अक्षरों तथा स्वरों की कुटिल आकृतियों के कारण ही यह लिपि कुटिल
कहलाई जाने लगी। इस काल के शिलालेख तथा दानपत्र आदि इसी लिपि में लिखे पाए
जाते हैं। कुटिल लिपि से ही नागरी तथा काश्मीर की प्राचीन लिपि शारदा विकसित हुई।
शारदा से वर्तमान काश्मीरी, टाकरी तथा गुरुमुखी लिपियाँ निकली हैं। प्राचीन नागरी
की पूर्वी शाखा से दसवीं शताब्दी ईसवी के लगभग प्राचीन बंगला लिपि निकली, जिसके
आधुनिक परिवर्तित रूप बंगला, मैथिली, उड़िया तथा नैपाली लिपियों के रूप में प्रचलित
। प्राचीन नागरी से ही गुजराती, कैथी तथा महाजनी आदि उत्तर-भारत की अन्य
लिपियाँ भी संबद्ध हैं।

नागरी[2] लिपि का प्रयोग उत्तर-भारत में दसवीं शताब्दी के प्रारंभ से मिलता है। किंतु
क्षिण-भारत में कुछ लेख आठवीं शताब्दी तक के पाए जाते हैं। दक्षिण की नागरी लिपि
'दि नागरी' नाम से प्रसिद्ध है और अब तक दक्षिण में संस्कृत पुस्तकों के लिखने में उसका
चार है। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यभारत, विंध्यप्रदेश तथा मध्यप्रदेश में इस
ल के लिखे प्रायः समस्त शिलालेख ताम्रपत्र आदि में नागरी लिपि ही पाई जाती है।
ई० स० की १०वीं शताब्दी की उत्तरी भारतवर्ष की नागरी लिपि में कुटिल लिपि की
ई अ, आ, घ, प, म, य, ष, और स के सिर दो अंशों में विभक्त मिलते हैं, परंतु ११वीं
ाब्दी से ये दोनों अंश मिलकर सिर की एक लकीर बन जाती है और प्रत्येक अक्षर का
र उतना लंबा रहता है जितनी कि अक्षर की चौड़ाई होती है। ११वीं शताब्दी की नागरी
पि वर्तमान नागरी से मिलती-जुलती है और १२वीं शताब्दी से वर्तमान नागरी बन गई

[1] ओझा, भा० प्रा० लि०, पृ० ६०

[2] 'नागरी' शब्द की उत्पत्ति के संबंध में बहुत मतभेद हैं। कुछ विद्वान् इसका संबं
गर' ब्राह्मणों से लगाते हैं अर्थात् नागर ब्राह्मणों में प्रचलित लिपि नागरी कहलाई
'नगर' शब्द से संबंध जोड़कर इसका अर्थ नागरी अर्थात् नगरों में प्रचलित लि
ते हैं। एक मत यह भी है कि तांत्रिक यंत्रों में कुछ चिह्न बनते थे जो 'देवनगर' कहलाते
इन अक्षरों से मिलते-जुलते होने के कारण यही नाम इस लिपि के साथ संबद्ध हो गया
एक समय में 'नागर लिपि' नाम प्रचलित था (ओझा, 'प्राचीन लिपिमाला', पृ० १८)
[illegible] नाम पड़ने के कारण वास्तव में अनिश्चित हैं।

है।....ई० स० की १२वीं शताब्दी से लगातार अब तक नागरी लिपि बहुधा एक ही रूप में चली आती है।"[1] इस तरह आधुनिक देवनागरी लिपि दसवीं शताब्दी ईसवी की प्राचीन नागरी लिपि का ही विकसित रूप है।

जिस प्रकार वर्तमान देवनागरी लिपि ब्राह्मी लिपि का परिवर्तित रूप है, उसी प्रकार वर्तमान नागरी अंक प्राचीन ब्राह्मी अंकों के परिवर्तन से बने हैं। "लिपियों की तरह प्राचीन और अर्वाचीन अंको मे भी अंतर है। यह अंतर केवल उनकी आकृति मे ही नही, किंतु अंकों को लिखने की रीति मे भी है। वर्तमान समय मे जैसे १ से ९ तक अंक और शून्य, इन १० चिह्नों से अंकविद्या का संपूर्ण व्यवहार चलता है वैसे ही प्राचीन काल मे नही था। उस समय शून्य का व्यवहार ही न था और दहाइयों, सैंकड़ा, हज़ार आदि के लिए भी अलग चिह्न थे।"[2] अंकों के संबंध मे इन दो शैलियो को 'प्राचीन शैली' और 'नवीन शैली' कहते हैं।

भारतवर्ष मे अंकों की यह प्राचीन शैली कब से प्रचलित हुई इसका ठीक पता नहीं चलता। अशोक के लेखों मे पहले-पहल कुछ अंकों के चिह्न मिलते हैं। प्राचीन शैली के अंकों की उत्पत्ति के संबंध मे भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अनेक कल्पनाएँ की हैं। इस संबंध में ओझा ने बूह्लर का नीचे लिखा मत उद्धृत किया है जो ध्यान देने योग्य है—"प्रिन्सेप का यह पुराना कथन कि अंक उनके सूचक शब्दों के प्रथम अक्षर हैं, छोड़ देना चाहिए। परन्तु अब तक इस प्रश्न का संतोषप्रद समाधान नहीं हुआ। पंडित भगवान लाल ने आर्यभट्ट और मंत्रशास्त्र की अक्षरों द्वारा अंक सूचित करने की रीति को भी जांचा परन्तु उसमे सफलता न हुई अर्थात् अक्षरों के क्रम की कोई कुंजी न मिली और न मैं इस रहस्य की कोई कुंजी प्राप्त करने का दावा करता हूँ। मैं केवल यही बतलाऊँगा कि कोई इन अंकों में अनुनासिक, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का होना प्रकट करता है कि उन (अंकों) को ब्राह्मणो ने निर्माण किया था, न कि वाणिओं (महाजनों) ने और न बौद्धो ने जो प्राकृत को काम में लाते थे।"[3] कुछ विद्वानों के इस मत को कि भारतीय मूल अंक विदेशी अंकों से प्रभावित हैं, ओझा आदि विद्वानों का समूह नहीं मानता। ओझा के अनुसार "प्राचीन शैली के भारतीय अंक भारतीय आर्यों के स्वतंत्र निर्माण किए हुए हैं।"[4]

---

[1] ओझा, भा० प्रा० लि०, पृ० ६९-७०
[2] वही, पृ० १०३
[3] ओझा, भा० प्रा० लि०, पृ० ११०
[4] वही, पृ० ११४

नवीन शैली के अंक-क्रम का प्रचार पाँचवीं शताब्दी के लगभग से सर्वसाधारण था, यद्यपि शिलालेख आदि में प्राचीन शैली का ही प्रायः उपयोग किया जाता था। नवीन शैली की उत्पत्ति के संबंध में ओझा का मत है कि "शून्य की योजना कर नव अंकों से गणित शास्त्र को सरल करने वाले नवीन शैली के अंकों का प्रचार पहले-पहल किस विद्वान ने किया इसका कुछ भी पता नहीं चलता। केवल यही पाया जाता है कि नवीन शैली के अंकों की सृष्टि भारतवर्ष में हुई, फिर यहाँ से अरबों ने यह क्रम सीखा और अरबों से उसका प्रवेश यूरोप में हुआ।"[1]

भाषा और लिपि दो भिन्न वस्तुएँ होते हुए भी व्यवहार में ये अभिन्न रहती हैं। इस कारण संक्षेप में हिन्दी भाषा देवनागरी लिपि और हिंदी अंकों के विकास का दिग्दर्शन यहाँ कर देना उचित समझा गया। लिपि तथा अंक के चिह्न के इतिहास के संबंध में विस्तृत सामग्री ओझा लिखित 'प्राचीन लिपिमाला' में संकलित है।

इतिहास

अध्याय १

हिंदी ध्वनिसमूह

अ. हिंदी वर्णमाला का इतिहास

क. वैदिक तथा संस्कृत ध्वनिसमूह

१. हिंदी ध्वनिसमूह पर विचार करने के पूर्व हिंदी की पूर्ववर्त्ती आर्यभाषाओं के ध्वनिसमूह की अवस्था पर एक दृष्टि डाल लेना अनुचित न होगा। हिंदी ध्वनिसमूह के मूलाधार वास्तव में ये प्राचीन ध्वनिसमूह ही हैं।

भारतीय आर्य-भाषाओं के ध्वनिसमूह का प्राचीनतम रूप वैदिक ध्वनियों के रूप में मिलता है। वैदिक भाषा में ५२ मूल ध्वनियाँ हैं।[1] इनमें १३ स्वर तथा ३९ व्यंजन हैं। देवनागरी लिपि में ये ध्वनियाँ नीचे लिखे ढंग से प्रकट की जा सकती हैं :—

(१) नौ मूलस्वर[2] : अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ
(२) चार संयुक्त स्वर : ए (अइ) ओ (अउ) ऐ (आइ) औ (आउ)

---

[1] मैकडानेल वैदिक ग्रैमर, § ४

[2] आधुनिक शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार स्वर वे ध्वनियां कहलाती हैं जिनके उच्चारण में मुखद्वार कम-ज्यादा तो किया जाता है किंतु न तो कभी बिलकुल बंद किया जाता है और न इतना अधिक बंद कि निःश्वास रगड़ खा कर निकले। ऐसा न होने से ध्वनि व्यंजन कहलाती है।

भारतीय आर्यभाषा-काल के पूर्व ए ओ संधिस्वर (अ+इ, अ+उ) थे। संस्कृत काल में इनका उच्चारण दीर्घमूल स्वरों के समान हो गया था, यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से ये संधिस्वर ही माने जाते थे।

वैदिक काल में आते-आते ही आइ आउ का पूर्व स्वर ह्रस्व हो गया था। इन संयुक्त स्वरों का यह रूप, अइ अउ, संस्कृत में अब तक मौजूद है। देवनागरी लिपि में ये साधारणतया ऐ औ लिखे जाते हैं।

वैदिक काल में चवर्गीय ध्वनियां आजकल की तरह स्पर्श-संघर्षी न होकर केवलमात्र स्पर्श थीं।

टवर्गीय ध्वनियों का स्थान आजकल की अपेक्षा ऊपर था।

प्रातिशाख्यों के अनुसार तवर्ग का स्थान दंत न होकर वर्त्स इ उ शुद्ध अर्द्धस्वर थे।

ळ ळ्ह ध्वनियां कदाचित् उस बोली में वर्तमान थीं जि आधार पर ऋग्वेद की साहित्यिक भाषा बनी थी। दो स्वरों के में आने वाले ड् ढ् से इनकी उत्पत्ति मानी जा सकती है।

अनुस्वार वास्तव में स्वर के बाद आने वाली शुद्ध नासि ध्वनि थी किंतु प्रातिशाख्यों से पता चलता है कि अनुस्वार अनुनासिक स्वर में परिवर्तित होने लगा था। अनुस्वार र्, ल्, व, श्, ष्, स, ह् के पहले आता था। स्पर्श व्यंजनों के प यह वर्गीय अनुनासिक व्यंजन में परिवर्तित हो जाता था।

क् के पहले आने वाले विसर्ग का स्थानांतर जिह्वामूलीय कहलाता था। [illegible] में विसर्ग की ध्वनि कुछ-कुछ ह् के सम

सुनाई पड़ती है। इसे जिह्वामूलीय कहते थे। इसी प्रकार प् के पहले आने वाले विसर्ग—का रूपांतर—उपध्मानीय (ᳵ) कहलाता था। पुनः पुनः में प्रथम विसर्ग में कुछ-कुछ ऐसी आवाज निकाली जा सकती है, जैसी धीरे से चिराग बुझाते समय होठों से निकलती है। इसे उपध्मानीय कहते हैं।

शेष वैदिक ध्वनियों के उच्चारण इनके आधुनिक हिंदी उच्चारणों से विशेष भिन्न नहीं थे।

३. आधुनिक ध्वनिशास्त्र के दृष्टिकोण से ५२ वैदिक ध्वनियों का वर्गीकरण[1] निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है:—

स्वर[2]

	अग्र		पश्च
संवृत	इ ई		उ ऊ
अर्द्धसंवृत	ए		ओ
विवृत			अ आ
संयुक्त स्वर		अइ अउ	
विशेष स्वर		ऋ ॠ ऌ	
शुद्ध अनुस्वार		ं	

[1] वै० वे० लैं०, § १२८

[2] स्वरों के वर्गीकरण के सिद्धांत के लिए देखिए § १०

व्यंजन

	द्वयोष्ठ्य	वर्त्स्य	मूर्द्धन्य	तालव्य	कंठ्य	[illegible]
स्पर्श अल्पप्राण	प् ब्	त् द्	ट् ड्	च् ज्	क् ग्	
स्पर्श महाप्राण	फ् भ्	थ् ध्	ठ् ढ्	छ् झ्	ख् घ्	
अनुनासिक		न्	ण्	ञ्	ङ	
पार्श्विक[1] अल्पप्राण		ल्	ळ्			
पार्श्विक महाप्राण			ळ्ह			
उत्क्षिप्त[2]		र				
संघर्षी[3]	×(उप०)	स्	ष्	श्	(जिह्वा०)	
अर्द्धस्वर	उँ (व्)			इँ (य्)		

४. ळ, ळ्ह, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय को छोड़कर समस्त वैदिक ध्वनियों का प्रयोग संस्कृत में होता रहा। कुछ ध्वनि के उच्चारण में परिवर्तन हो गए थे। ऋ, ॠ, ऌ, का मूलस्वरों

---

[1] पार्श्विक, उन ध्वनियों को कहते हैं जिनके उच्चारण में मुखविवर को सामने तो जीभ बंद कर दे किंतु दोनों पार्श्वों से निःश्वास निकलती रहे।

[2] उत्क्षिप्त, उन ध्वनियों को कहते हैं जिनमें जीभ तालु के किसी भाग को वेग से म कर हट आवे।

[3] संघर्षी, उन ध्वनियों को कहते हैं जिनके उच्चारण में मुखविवर इतना अधि सकरा कर दिया जाता है कि निःश्वास रगड़ खाकर निकलती है। संघर्षी ध्वनियां ऊष्म कहलाती थीं।

सदृश उच्चारण का अस्तित्व संदिग्ध है। ए ओ का उच्चारण संस्कृत में मूलस्वरों के सदृश था। आइ आउ निश्चित रूप से अइ अउ हो गए थे। पाणिनि के समय में ही उँ दंत्योष्ठ्य व् तथा द्व्योष्ठ्य व् में परिवर्तित हो चुका था। तथा इँ ने बाद को य तथा य़् का रूप धारण कर लिया था। अनुस्वार पिछले स्वर से मिल कर अनुनासिक स्वर की तरह उच्चरित होने लगा था।

ख. पाली तथा प्राकृत ध्वनिसमूह

५. पाली में दस स्वर—अ आ इ ई उ ऊ ए ए ओ ओ—पाए जाते हैं। ऋ ॠ ऌ ऐ औ का प्रयोग पाली भाषा में नहीं होता। ऋ ध्वनि अ इ उ आदि किसी अन्य स्वर में परिवर्तित हो जाती हैं। ॠ ऌ का प्रयोग संस्कृत में ही नहीं के बराबर हो गया था। ऐ औ के स्थान में ए ओ क्रम से हो जाते हैं। पाली में दो नए स्वर ए ओ—ह्रस्व ए ओ—पहले-पहल मिलते हैं।

व्यंजनों में पाली में श् ष् नहीं पाए जाते। श् ष् के स्थान पर भी स् का ही व्यवहार मिलता है।

पाली में विसर्ग का प्रयोग भी नहीं पाया जाता। पद के अंत में आने वाला विसर्ग पूर्ववर्ती अ से मिल कर ओ में परिवर्तित हो जाता है, अन्यत्र उसका लोप हो जाता है।

शेष ध्वनियाँ पाली में संस्कृत के ही समान हैं।

६. प्राकृत भाषाओं में और पाली के ध्वनिसमूह में विशेष भेद नहीं है। मागधी को छोड़ कर अन्य प्राकृतों में य् और श् का व्यवहार प्रचलित नहीं है। मागधी में स् के स्थान पर भी श् ही मिलता है। ष् और विसर्ग का प्रयोग प्राकृतों में नहीं लौट सका। अशोक के लेखों में पश्चिमोत्तरी प्राकृत में ष अवश्य मिलता है।

ग. हिंदी ध्वनिसमूह

७. आधुनिक साहित्यिक हिंदी में अधिकांश ध्वनियां तो परंपरागत भारतीय आर्यभाषा के ध्वनिसमूह से आई हैं, कुछ ध्वनियां

आधुनिक काल में विकसित हुई हैं तथा कुछ ध्वनियां फ़ारसी, अरबी और अंग्रेज़ी के संपर्क से भी आ गई हैं। इस दृष्टि से साहित्यिक हिंदी में प्रचलित मूल ध्वनियां नीचे दी जाती हैं :—

(१) प्राचीन ध्वनियां :

अ आ इ ई उ ऊ ए ओ
क् ख् ग् घ् ङ्
च् छ् ज् झ्
ट् ठ् ड् ढ् ण्
त् थ् द् ध् न्
प् फ् ब् भ् म
य् र् ल् व्
श् स् ह्

(२) नई विकसित ध्वनियां :

अए (ऐ) अओ (औ); ड़ ढ़ ; न्ह म्ह

(३) फ़ारसी-अरबी के तत्सम शब्दों में प्रयुक्त ध्वनियां :

क़ ख़ ग़ ज़ फ़

(४) अंग्रेज़ी तत्सम शब्दों में प्रयुक्त ध्वनियां :

ऑ

फ़ारसी-अरबी तथा अंग्रेज़ी तत्सम शब्दों में प्रयुक्त विशेष ध्वनियां नगरों में शिक्षितवर्ग ही बोलता है।

८. ऋ ष् ञ् वर्ण संस्कृत तत्सम शब्दों में लिखे तो जाते हैं किंतु हिंदीभाषाभाषी इनके मूलरूप का उच्चारण नहीं करते। सं० ऋ तत्सम शब्दों में भी उच्चारण में रि हो गई है, जैसे ऋषि, कृपा, प्रकृति आदि शब्दों का वास्तविक उच्चारण हिंदी में रिषि, क्रिपा तथा प्रक्रिति है। ष् का उच्चारण हिंदी में श् के समान होता है। उच्चारण की दृष्टि से पोषक, कष्ट, कृषक आदि पोशक, कश्ट, क्रिशक हो गए हैं। ञ संस्कृत शब्दों में भी स्वतंत्र रूप से नहीं आता है। शब्द के मध्य में आने वाले ञ् का उच्चारण साहित्यिक हिंदी में न् के समान होता है, जैसे चञ्चल, मञ्जन,

वास्तव में चन्चल, मन्जन, कान्चन, बोले जाते हैं। इसीलिए इन तीन ध्वनियों का उल्लेख ऊपर की सूची में नहीं किया गया है। ण् का उच्चारण भी हिंदी में न् के समान होता है जैसे पण्डित, ठण्डा, ताण्डव उच्चारण में पन्डित, ठन्डा, तान्डव हो जाते हैं। तत्सम शब्दों में प्रयुक्त सस्वर ण् का प्रयोग हिंदी मे होता है, जैसे गणना, गणेश, कण इत्यादि में किंतु इसका शुद्ध उच्चारण पश्चिमी हिंदी क्षेत्र में ही मिलता है, पूर्वीय में वास्तव मे यह ड़ँ के समान बोला जाता है।

हिंदी की बोलियों में कुछ विशेष ध्वनियां पाई जाती हैं जिनका व्यवहार आधुनिक साहित्यिक हिंदी में नहीं होता। ये ध्वनियां निम्नलिखित हैं :—

अं ए ओ ऍ ऑ ऍ ऑ; इ़ उ़ ए़; व्; र्ह् ल्ह्

९. आधुनिक साहित्यिक हिंदी तथा बोलियों में व्यवहृत समस्त ध्वनियां आधुनिक शास्त्रीय वर्गीकरण के अनुसार नीचे दी जा रही हैं। केवल बोलियों में व्यवहृत ध्वनियां कोष्ठक में दी गई हैं :—

(१) मूलस्वर : अ आ ऑ [ऑ] [ऑ] [ओ] ओ उ [उ़]
ऊ ई इ [इ़] ए [ऍ] [ए़] [ऍ] [ऍ]
[अं]

मूलस्वरों के अनुनासिक तथा संयुक्त रूप भी पाए जाते हैं। इनका विवेचन आगे विस्तार से किया गया है।

(२) स्पर्श : क़ क् ख् ग् घ्
ट् ठ् ड् ढ
त् थ् द् ध्
प् फ् ब् भ्

(३) स्पर्शसंघर्षी : च् छ् ज् झ्

(४) अनुनासिक : ङ् [ञ्] ण् न् न्ह् म् म्ह

(५) पार्श्विक : ल् [ल्ह्]

(६) लुंठित[1] : र् [र्‍ ह्‍]
(७) उत्क्षिप्त : ड़् ढ़्
(८) संघर्षी : ह् ख़् ग़् श् स् ज़् फ़् व्
(९) अर्द्धस्वर : य् व्

ऊपर दिए हुए क्रम के अनुसार प्रत्येक हिंदी ध्वनि[2] का विस्तृ
वर्णन उदाहरण सहित आगे दिया गया है।

आ. हिंदी ध्वनियों का वर्णन

क. मूलस्वर

१०. जीभ के अगले या पिछले भाग के ऊपर उठने की दृ
से स्वरों के दो मुख्य भेद माने जाते हैं जिन्हें अगले या अग्रस्वर

---

[1] लुंठित, उन ध्वनियों को कहते हैं जिनके उच्चारण में जीभ बेलन की तरह
खाकर तालु को छुए। चटर्जी (बें० लें०, §१४०) तथा कासरी (हि० को०, पृ०
आधुनिक ड़् को उत्क्षिप्त मानते हैं किंतु सक्सेना ने (ए अ, § १) इसे लुंठित माना

[2] यहाँ पर भाषा-ध्वनि (Speech sound) तथा ध्वनि-श्रेणी (Phonem
का भेद समझ लेना आवश्यक है। प्रत्येक भाषा-ध्वनि का उच्चारण एक ही व्यक्ति भि
भिन्न स्थलों कुछ पर थोड़े से परिवर्तन के साथ करता है, साथ ही भिन्न-भिन्न व्यक्ति
ध्वनि का उच्चारण कुछ पृथक् ढंग से करते हैं। उदाहरण के लिए अ का उच्चारण भि
भिन्न स्थलों तथा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा बहुत प्रकार का हो सकता है। यह अ
है कि अ के ऐसे भिन्न भिन्न रूपों में बहुत ही कम अंतर होता है। साधारण तथा
अंतर को नहीं पकड़ता। शास्त्रीय दृष्टि से अ के ये सब भिन्न रूप पृथक्-पृथक् भा
ध्वनियाँ हैं और सूक्ष्मदृष्टि से एक-दूसरे से उसी रूप में भिन्न हैं जिस रूप में अ और
भिन्न है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से अ की इन सब मिलती-जुलती ध्वनियों का एक
श्रेणी में रख लिया जाता है, अतः अ के ये सब मिलते-जुलते रूप अ ध्वनि श्रेणी के अं
माने जाते हैं और व्यवहार में इन सब के लिए एक ही लिपि-चिह्न प्रयुक्त होता है।

हिंदी ध्वनियों का जो वर्णन इस पुस्तक में दिया गया है वह वास्तव में ध्वनि श्रेणि
का है। प्रत्येक ध्वनि-श्रेणी के अंतर्गत भाषा ध्वनियों के सूक्ष्म भेदों के अनुसार अनेक
रूप आते हैं। इनका वर्णन ध्वनि-शास्त्र की दृष्टि से हिंदी ध्वनिसमूह के विस्तृत विवेच

पिछले या पश्चस्वर कहते हैं। कुछ स्वर ऐसे भी हैं जिनके उच्चारण में जीभ का मध्य भाग ऊपर उठता है। ऐसे स्वर बिचले या मध्य-स्वर कहलाते हैं। प्रत्येक स्वर के उच्चारण में जीभ का अगला, बिचला या पिछला भाग भिन्न-भिन्न मात्रा में ऊपर उठता है। इस कारण मुख-द्वार के अधिक या कम खुलने की दृष्टि से स्वरों के चार भेद किए जाते हैं—(१) विवृत या खुले हुए, (२) अर्द्ध-विवृत या अधखुले, (३) अर्द्धसंवृत या अधसकरे और (४) संवृत या सकरे। इन दोनों प्रकार के भेदों को दृष्टि में रखते हुए आठ प्रधान स्वर माने गए हैं जो भिन्न-भिन्न भाषाओं के स्वरों के अध्ययन के लिए बाटों का काम देते हैं। इन आठ प्रधान स्वरों के स्थान नीचे दिए हुए चित्र में दिखलाए गए हैं —
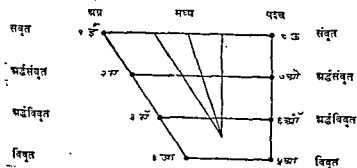
११. इन आठ प्रधान स्वरों के स्थान को ध्यान में रखते हुए हिंदी के मूल स्वरों के स्थानों को नीचे के चित्र[1] की सहायता से समझा जा सकता है। केवल बोलियों में पाए जाने वाले स्वर कोष्ठक में दिए गए हैं :—

के अंतर्गत ही आ सकता है। हिंदी ध्वनियों का इस तरह का विवेचन प्रस्तुत-पुस्तक के मुख्य विषय से संबंध नहीं रखता।

[1]क़ादरी, हि. फो०, पृ० ४८; सक., ए. अ., § ९; सुनीतिकुमार चैटर्जी, 'ए स्केच आव् बेंगाली फ़ोनेटिक्स' (१९२१)।
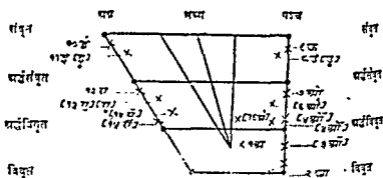
१२. अ : यह अर्द्धविवृत मध्यस्वर है अर्थात् इसके उच्चा
में जीभ का मध्य भाग कुछ ऊपर उठता है और होठ कुछ खुले र
हैं। अ का व्यवहार बहुत शब्दों में पाया जाता है। अब, कम
सरल, शब्दों में अ क म स र में अ का उच्चारण होता है।

शब्दांश के मध्य या अंत में आने से अ की दो मुख्य भा
ध्वनियां पाई जाती हैं। शब्दांश के अंत में आने वाला अ कुछ व
होता है और कुछ अधिक खुला तथा पीछे की ओर हटा होता है
ये दो प्रकार के अ खुला अ तथा बंद अ कहला सकते हैं। ऊपर
उदाहरणों में अ, म, र के अ बंद अ हैं तथा क और स के अ खुले अ है

हिंदी में शब्द या शब्दांश के अंत में आने वाले अ का उच्चार
नहीं होता है किंतु इस नियम के अपवाद भी मिलते हैं।[1] ऊपर
उदाहरणों में ब ल ल में उच्चारण की दृष्टि से अ नहीं है। वास्त
में इन शब्दों में ये तीनों व्यंजन अकार रहित हैं, अतः उच्चारण क
दृष्टि से इन शब्दों का शुद्ध लिखित रूप अब् कमल् सरल् होगा।

१३. आ : उच्चारण में एक या अर्द्धमात्रा काल अधिक होने
के अतिरिक्त आ और अ में स्थानभेद भी है। आ विवृत पश्च

[1] गु. हि. व्या., § २८

स्वर है और प्रधान स्वर ऑ से बहुत मिलता-जुलता है। इसके उच्चारण में जीभ के नीचे रहने पर भी उसका पिछला भाग कुछ अंदर की तरफ़ ऊपर उठ जाता है। होठ बिलकुल गोल नहीं किए जाते, अ की अपेक्षा कुछ खुल अधिक अवश्य जाते हैं। यह स्वर ह्रस्व रूप में व्यवहृत नहीं होता।

उदा० *आदमी, काला, बादाम।*

१४. *ऑ* : अंग्रेजी के कुछ तत्सम शब्दों के लिखने में *ऑ* चिह्न का व्यवहार हिंदी में होने लगा है। अंग्रेजी *ऑ* का स्थान *आ* से काफ़ी ऊँचा है। प्रधान स्वर *ऑ* से *ऑ* का स्थान कुछ ही नीचा रह जाता है। अंग्रेजी में *ऑ* के अतिरिक्त उसका ह्रस्व रूप *ॲ* भी व्यवहृत होता है। हिंदी में दोनों के लिए दीर्घ रूप का ही व्यवहार लिखने और बोलने में साधारणतया किया जाता है।

उदा० *कॉङ्ग्रेस, कॉन्फ़ेन्स, लॉर्ड।*

१५. *ऒ* : यह अर्द्धविवृत ह्रस्व पश्चस्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग अर्द्धविवृत पश्च प्रधान स्वर के स्थान की अपेक्षा कुछ ऊपर की तरफ़ तथा अंदर की ओर दबा हुआ रहता है और होठ खुले गोल रहते हैं। इसका व्यवहार ब्रजभाषा में पाया जाता है।

उदा० *अवलोकहाे सोचविमोचन को* (कवितावली बाल०, १); *बरु मारिए मोहि बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं* जू। (कवितावली, अयोध्या०, ६)।

१६. *ऑ* : यह अर्द्धविवृत दीर्घ पश्चस्वर है और इसके उच्चारण में होठ कुछ अधिक खुले गोल रहते हैं। प्रधान स्वर *ऑ* से इसका स्थान कुछ ऊँचा है। इसका व्यवहार भी ब्रजभाषा में मिलता है। देवनागरी लिपि में इस ध्वनि के लिए पृथक् चिह्न न होने के कारण ओ के स्थान पर ओ या औ लिख दिया जाता है किंतु वास्तव में यह ध्वनि इन दोनों से भिन्न है। ब्रजवासियों के

मुख से यह ध्वनि स्पष्ट रूप में सुनाई पड़ती है। ब्रजभाषा के *कऑं* *ऐसों*, *गायों*, *खायों* आदि शब्दों में वास्तव में ऑं ध्वनि है।

तेज़ी से बोलने में हिंदी संयुक्त स्वर औ (अऑ) का उच्चारण मूल स्वर ऑं के समान हो जाता है। उदाहरण के लिए *कौन*, *मौन*, *सौ* आदि शब्दों के शीघ्र बोलने में औ ध्वनि ऑ के सदृश सुनाई पड़ने लगती है।

१७. ओ : यह अर्द्धसंवृत ह्रस्व पश्चस्वर है। इसके उच्चारण में होठ काफ़ी अधिक गोल किए जाते हैं। प्रधान स्वर की अपेक्षा इसका उच्चारण-स्थान अधिक नीचा तथा मध्य की ओर झुका है। इसका व्यवहार हिंदी की कुछ बोलियों में होता है। प्राचीन ब्रजभाषा काव्य में इस ध्वनि का व्यवहार स्वतंत्रता-पूर्वक पाया जाता है।

उदा० *पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं* (कवितावली, बाल०, ४) *ओहि केरि बिटिया* (अवधी बोली)।

१८. ओ : यह अर्द्धसंवृत दीर्घ पश्चस्वर है। इसके उच्चारण में होठ स्पष्ट रूप से गोल हो जाते हैं। प्रधान स्वर से इसका उच्चारण-स्थान कुछ ही नीचा है। हिंदी में यह मूलस्वर है, संयुक्त स्वर नहीं। संस्कृत की मूल ध्वनि के प्रभाव के कारण इसे संयुक्त स्वर मानने का भ्रम हिंदी में अब तक चला जा रहा है।

उदा० *ओस*, *बोतल*, *घाटो*।

१९. उ : यह संवृत ह्रस्व पश्चस्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग काफ़ी ऊपर उठता है किंतु ऊ के स्थान की अपेक्षा नीचे तथा मध्य की ओर झुका रहता है। साथ ही होठ बंद से किए जाते हैं।

उदा० *उस*, *मधुर*, *शत्रु*।

२०. उ० : हिंदी की कुछ बोलियों में फुसफुसाहट वाला उ भी पाया जाता है।

फुसफुसाहट वाले स्वर[1] तथा पूर्ण स्वर का स्थान एक ही होता है किंतु दोनों में अंतर है। पूर्ण स्वर के उच्चारण में दोनों स्वरतंत्रियाँ पूर्ण-रूप से तनी हुई बंद हो जाती हैं जिससे फेफड़ों से निकलती हुई हवा रगड़ खाकर निकलती है और घोष ध्वनियों का कारण होती है। फुसफुसाहट वाले स्वरों के उच्चारण में स्वर-तंत्रियों के दो तिहाई होठ बिल्कुल बंद रहते हैं किंतु तने नहीं रहते तथा एक तिहाई होठ खुले रहते हैं जिनसे थोड़ी मात्रा में हवा धीरे-धीरे निकल सकती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि साधारण साँस लेने में स्वरतंत्रियों का मुँह बिल्कुल खुला रहता है तथा खाँसने के पहले या हम्ज़ा के उच्चारण में यह द्वार बिल्कुल बन्द होकर सहसा खुलता रहता है। कानाफूसी में जो बात-चीत होती है वह फुसफुसाहट वाली ध्वनियों की सहायता से होती ही है।

ब्रज तथा अवधी[2] में शब्दों के अंत में फुसफुसाहट वाला अर्थात् अघोष उ॰ आता है।

उदा० *ब्र० जातउ॰, ब्र० आवतउ॰; अव० ऊँटउ॰, अव० भोरउ॰*

२१. ऊ : यह संवृत दीर्घ पश्चस्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग इतने ऊपर उठ जाता है कि कोमल तालु के बहुत निकट पहुँच जाता है। ऊ का उच्चारण-स्थान प्रधान स्वर ऊ से कुछ ही नीचा है। उ की अपेक्षा ऊ के उच्चारण में होठ अधिक ज़ोर के साथ बंद गोल हो जाते हैं।

उदा० *ऊपर, मसूर, बालू।*

२२. ई : यह संवृत दीर्घ अग्र स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का अगला भाग इतना ऊपर उठ जाता है कि कठोर तालु के

[1] वा. फो. इं., § ५५.

[2] सक., ए. अ., § ११७

बहुत निकट पहुँच जाता है। प्रधान स्वर ई की अपेक्षा हिंदी ई क
उच्चारण-स्थान कुछ नीचा है। ई के उच्चारण में होठ फैले हु
रहते हैं।

उदा० *ईस, अमीर, आती।*

२३. इ : यह संवृत ह्रस्व अग्र स्वर है। इसका उच्चारण
स्थान ई की अपेक्षा कुछ अधिक नीचा तथा अंदर की ओर है। इस
उच्चारण में फैले हुए होठ ढीले रहते हैं।

उदा० *इस, मिलाप, आदि।*

२४. इ॰ : घोष इ का यह फुसफुसाहट वाला रूप है। उच्चारण
स्थान की दृष्टि से इन दोनों में कोई भेद नहीं है किन्तु इ॰ के उच्चारण
में स्वरतंत्रियाँ घोष ध्वनि नहीं उत्पन्न करतीं बल्कि फुसफुसाहट
वाली ध्वनि उत्पन्न करती हैं। यह स्वर ब्रज तथा अवधी [illegible]
बोलियों में कुछ शब्दों के अंत में पाया जाता है।

उदा० *आवतइ॰, अव० गीलइ॰।*

२५. ए : यह अर्द्धसंवृत दीर्घ अग्र स्वर है। इसका उच्चा
स्थान प्रधान स्वर ए से कुछ नीचा है। ए के उच्चारण में हो
की अपेक्षा कुछ अधिक खुलते हैं।

उदा० *एक, अनेक चले।*

२६. ए : यह अर्द्धसंवृत ह्रस्व अग्रस्वर है। इसके उच्चार
जीभ का अग्रभाग ए की अपेक्षा कुछ अधिक नीचा तथा बीच की [illegible]
झुका हुआ रहता है। इस का व्यवहार साहित्यिक हिंदी में तो [illegible]
है किंतु हिंदी की बोलियों में इस का व्यवहार बराबर मिलता [illegible]

उदा० *अवधेस के द्वार सकारे गई* (कवितावली, बाल० १
अव० *ओहि केर बेंटवा।*

२७ ए॰ : घोष ए का यह फुसफुसाहट वाला रूप है। इस

---

[1] सक. ए. ग, § ११६

उच्चारण-स्थान ए के समान ही है, भेद केवल घोष ध्वनि और फुसफुसाहट वाली ध्वनि का है। यह ध्वनि अवधी शब्दों में मिलती है जैसे, कहेसए। व्रजभाषा में कदाचित् यह ध्वनि नहीं है। साहित्यक हिंदी में भी इसका प्रयोग नहीं पाया जाता।

२८. ऍ : यह अर्द्धविवृत दीर्घ अग्र स्वर है। इसका उच्चारण-स्थान प्रधान स्वर ऍ से कुछ ऊँचा है। यह स्वर व्रज की बोली की विशेषताओं में से एक है। व्रज में संयुक्त स्वर ऐ (अ इ) के स्थान पर यह मूल स्वर ही बोला जाता है।

उदा० ऍसो, कसो।

कादरी[1] हिंदुस्तानी संयुक्त स्वर ऐ को संयुक्त स्वर नहीं मानते हैं। उदाहरणार्थ उन्होंने ऐब, क़ैद, जै में यही मूल स्वर माना है। चैटर्जी[2] ने बंगला ऐ को भी मूल स्वर ही माना है। वास्तव में हिंदी ऐ साधारणतया संयुक्त स्वर है किंतु जल्दी बोलने में कभी-कभी मूल ह्रस्व स्वर ऍ के समान इस का उच्चारण हो जाता है। बेली[3] ने पंजावी भाषा में ऐ को मूल ह्रस्व स्वर माना है जैसे पं० पैर, पैले (हि० पहले) शैर (हि० शहर)।

२९. ऍ : यह अर्द्धविवृत ह्रस्व अग्र स्वर है। इस के उच्चारण में जीभ का अग्रभाग ऍ की अपेक्षा कुछ नीचा तथा अंदर की ओर झुका रहता है। इसका व्यवहार व्रजभाषा काव्य में बराबर मिलता है जैसे, सुत गोद कें भूपति लै निकसे (कविता०, बाल०, १)। जैसे ऊपर बताया गया है, हिंदी संयुक्त स्वर ऐ शीघ्रता से बोलने में मूल ह्रस्वस्वर ऍ हो जाता है।

---

[1] सक., ए. भ., § ११८

[2] कादरी हि. फो, § पृ० ५१

[3] चै. बे. लै., § १४०

[4] बेली, पंजाबी फ़ोनेटिक रीडर, पृ० XIV

३०. ॳ: यह अर्द्धविवृत मध्य ह्रस्वार्द्ध स्वर है और हिंदी अ से मिलता-जुलता है। इसके उच्चारण में जीभ के मध्य का भाग अ की अपेक्षा कुछ अधिक ऊपर उठ जाता है। अंग्रेज़ी में इसे 'उदासीन स्वर' (neutral vowel) कहते हैं और ə से चिह्नित करते हैं। यह ध्वनि अवधी[1] बोली में पायी जाती है, जैसे सोरॾी, रामॾ। पंजाबी भाषा में[2] यह ध्वनि बहुत शब्दों में सुनाई पड़ती है जैसे पं० रॾैस, वॾचारा (हि० विचारा), नौकॾर (हि० नौकर)।

ख. अनुनासिक स्वर

३१. साहित्यिक हिंदी के प्रत्येक स्वर का अनुनासिक रूप भी पाया जाता है। फुसफुसाहट वाले स्वरों और उदासीन स्वर को छोड़ कर हिंदी बोलियों में आने वाले अन्य विशेष स्वरों के प्रायः अनुनासिक रूप होते हैं। मूलस्वरों के समान सम अनुनासिक स्वरों का व्यवहार शब्दों में प्रत्येक स्थान पर न मिलता है।

वास्तव में अनुनासिक स्वर को निरनुनासिक स्वर से बिल्कु भिन्न मानना चाहिए क्योंकि इस भेद के कारण शब्दभेद या अर्थभे या दोनों ही भेद हो सकते हैं। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण स्थान वही रहता है किंतु साथ ही कोमल तालु और कौवा नीचे झुक आता है जिससे मुख द्वारा निकलने के अतिरिक्त हवा का कुछ भाग नासिका-विवर में गूँज कर निकलता है। इसी से स्वर में अनुनासिकता आ जाती है।[3]

---

[1]सक., ए. अ., § ९६

[2]बेली, पंजाबी फ़ोनेटिक रीडर, पृ० XIV

[3]देवनागरी लिपि में अनुनासिक स्वर को प्रकट करने के लिए स्वर के ऊपर कहीं और कहीं अर्द्धचंद्र लगाया जाता है। इस पुस्तक में उदाहरणों में अनुनासिक स्वर ... बिंदी का ही प्रयोग किया गया है।

ग. संयुक्तस्वर

३३. हिंदी में केवल दो संयुक्त स्वरों को लिखने के लि
देवनागरी लिपि में पृथक् चिह्न हैं। ये ऐ *(अए)* और औ *(अओ)*
हैं। इन्हीं चिह्नों का प्रयोग ब्रजभाषा मूलस्वर ऍ और ऑ के लि
तथा संस्कृत, हिंदी की कुछ बोलियों और कुछ साहित्यिक हिं
के रूपों में पाए जाने वाले *अइ और अउ* संयुक्त स्वरों के लिए भी
किया जाता है। इस पुस्तक में ऐ औ का प्रयोग क्रम से केवल अ
अओ संयुक्त स्वरों के लिए किया गया है।

सिद्धान्त की दृष्टि से संयुक्तस्वर[1] के उच्चारण में मुख अवयव
एक स्वर के उच्चारण-स्थान से दूसरे स्वर के उच्चारण-स्थान की
ओर सीधे मार्ग से तेजी से बदलते हैं जिससे साँस के एक ही झटके
में, अवयवों में परिवर्तन होती हुई अवस्था में, ध्वनि का उच्चारण
होता है। अतः संयुक्त स्वर को दो भिन्न स्वरों का संयुक्त रू
मानना ठीक नहीं है। संयुक्त स्वर एक अक्षर हो जाता है।
निकट आने वाले दो भिन्न स्वर वास्तव में दो अक्षर हैं। यदि
उच्चारण किया जाय तो ऐ *(अए)* और *अ—ए* में प्रथम संयु
स्वर है और दूसरा दो स्वरों का समूह मात्र है।

सच्चे संयुक्त स्वर तथा निकट में आने वाले दो या अधि
स्वतंत्र मूल स्वरों में सिद्धान्त की दृष्टि से भेद चाहे किया जा स
किंतु व्यावहारिक दृष्टि से दोनों में भेद करना कठिन है। नि
आने वाले स्वर प्रचलित उच्चारण में संयुक्त स्वर हो जाते हैं
इसीलिए यहां संयुक्त स्वर और स्वरसमूह में भेद नहीं किया ग
है—दोनों ही के लिए संयुक्त स्वर शब्द का प्रयोग किया गया है
प्रचलित लिपि चिह्न ऐ औ के अतिरिक्त अन्य संयुक्त स्वरों
लिए मूल स्वरों का व्यवहार किया गया है।

---

[1] वा., फो. इं., § १६९

यदि दो ह्रस्व स्वरों के समूह को सच्चा संयुक्त स्वर माना जाय तो साहित्यिक हिंदी में ऐ (अए) और (अओ) ही संयुक्त स्वर माने जा सकेंगे।

३४. वास्तव में हिंदी तथा हिंदी की बोलियों में प्रयुक्त दो स्वरों के संयुक्त रूपों की संख्या बहुत अधिक है। नीचे हिंदी तथा हिंदी की बोलियों में व्यवहृत संयुक्त स्वर[1] उदाहरण सहित दिए जा रहे हैं।

साहित्यिक हिंदी में प्रयुक्त दो स्वरों का संयोग

औ (अओ) : औरत, बौनी, सौ।
अई : कई, गई, नई।
ऐ (अए) : ऐसा, कैसा, बैर।
अए : गए, नए, पए (चूल्हे में रोटी सेंकने की जगह)
आओ : आओ, खाओ, लाओ।
आऊ : घराऊ, खाऊ, नाऊ।
आई : आई, काई, नाई।
आए : राए, गाएँ, जाएँ।
ओई : खोई, लोई, कोई।
ओए : बोए, खोए, रोए।
ओआ : सोआ, रोआ, चोआ।
उआ : धुआ, चुआ, जुआ

---

[1]यहाँ पर यह स्मरण दिला देना अनुचित न होगा कि संयुक्त स्वरों के एक अंश में इ, ई, ए, या ए होने पर तालव्य अर्द्धस्वर य्, तथा उ, ऊ, ओ या ओ होने पर कंठ्योष्ठ्य अर्द्धस्वर व् लिखने की प्रथा रही है, जैसे आयी, आये, लिया, वियोग, बुवा, आवो, खोवा, बेवड़ा आदि। उच्चारण की दृष्टि से य् या व का आना संदिग्ध है, इसीलिए इस तरह के समस्त स्वरसमूहों को संयुक्त स्वर माना गया है।

उई : सुई, चुई, रुई।
उए : चुए, कुए, सुए।
इआ : लिआ, दिया, दुनिया।
इओ : विओग, निओग।
इए : दिए, लिए, पिए।
एआ : सेआ, लेआ, टेआ।
एइ : खेई, लेई, सेई।

ऊपर के संयुक्त स्वरों के अतिरिक्त कुछ दो स्वरों के संयुक्त रूप विशेष रूप से हिंदी बोलियों में ही पाए जाते हैं। ये उदाहरण सहित[1] नीचे दिए जाते हैं।

अओ : ब्र० गओ (हि० गया), ब्र० लओ (हि० लि
अउ : अव० तउ (हि० तव), अव० गउ (हि०
अऊ : ब्र० तऊ (हि० तो भी), ब्र० गऊ (हि० गा
अइ : ब्र० अइसी (हि० ऐसी), ब्र० जइसी (हि० जैं
आउ : ब्र० आउ (हि० आओ), ब्र० मुटाउ (हि० मुटा
आओ : ब्र० नाओ (हि० नाव)।
आइ : ब्र० आइ (हि० आ), ब्र० जाइ (हि० जावे
ओउ : अव० धोउना।
ओइ : अव० होइहै (हि० होगा), ब्र० ओइ (हि० वह ही,
ओअ : अव० धोअनु।
ओआ : अव० होआ।

---

[1] [illegible] उदाहरण [illegible] § १२० से लिए गए हैं।

आउ : अव० होउ (हि० होवे), ब्र० धोउन।

ओओ : ब्र० धोओ (हि० धोया)।

ओइ : अव० होइ (हि० होवे)।

उअ : ब्र० सुअन (हि० तोतों) ब्र० चुअन (हि० चूने)।

उइ : अव० दुइ (हि० दो)।

उई : अव० रूई

इअ : ब्र० सिअत (हि० सीता)।

इउ : अव० घिउ (हि० घी), ब्र० दिउली (हि० चने के दाने)।

इई : अव० पिई (हि० पी)।

एओ : ब्र० नेओला, ब्र० कंओड़ा, ब्र० बेओपार (हि० व्यापार)।

एउ : अव० देउ (हि० दो—देना)।

एओ : ब्र० देओ (हि० दो—देना), ब्र० लेओ।

एइ : अव० देइ (हि० दे), ब्र० लेइ (हि० ले)।

एए : अव० लेए चलउ।

३५. हिंदी तथा हिंदी की बोलियों में कुछ तीन-संयुक्त-स्वर भी मिलते हैं। ये उदाहरण सहित नीचे दिए जा रहे हैं।

साहित्यिक हिंदी में प्रयुक्त तीन संयुक्त स्वर

अइआ : तइआरी, भइया मइआ।

अउआ : कउआ, ब्र० बुलउआ (हि० बुलावा)।

आइए : आइए, गाइए, लाइए।

इनके अतिरिक्त कुछ तीन-संयुक्त-स्वर विशेष रूप से बोलियों में पाए जाते हैं। ये उदाहरण सहित नीचे दिए जाते हैं:—

अउएँ : ब्र० *गउएँ।*

अइओ : ब्र० *अइओ* (हि० आना), ब्र *जइओ* (हि० जाना)

आइउ : अव० *आइउ* (हि० तुम आई)।

आएउ : अव० *साएउ*।

आइओ : ब्र० *आइओ* (हि० आना), ब्र० *जाइओ* (हि० जाना)

ओइआ : अव० *लोइआ* (हि० लोई—कम्मल)।

ओएउ : अव० *धोएउ* (हि० धोया)।

उइआ : ब्र० *घुइआ।*

इअउ : अव० *जिअउ* (हि० जियो)।

इआई : ब्र० *सिआई* (हि० सिलाई) ब्र० *पिआई*।
(हि० पिलाई)।

इआऊ : ब्र० *पिआऊ।*

इएउ : अव० *पिएउ* (हि० पिया)।

एएउ : अव० *खेएउ* (हि० खेया)।

एइआ : अव० *नेइआ*

प. स्पर्श व्यंजन

२६. क़ : आधुनिक साहित्यिक हिंदी में इस ध्वनि [का] व्यवहार केवल फ़ारसी-अरबी के तत्सम शब्दों में किया जाता [है।] वास्तव में यह विदेशी ध्वनि है। प्राचीन साहित्य में तथा हिंदुस्[तानी] जनता में क़ के स्थान पर क् या ख हो जाता है। क़ का उच्चा[रण] जिह्वामूल को कौवे के निकट कोमल तालु के पिछले भाग से छू[कर] किया जाता है। यह अल्पप्राण, अघोष, जिह्वामूलीय, [स्पर्श] व्यंजन है और इस का स्थान जीभ तथा तालु दोनों की दृष्टि [से] सबसे पीछे है।

उदा० क़ाबिल, मुक़ाम, ताक़।

३७. क् : क् का उच्चारण जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से छुआ कर किया जाता है। यह अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। प्रा० भा० आ० काल में कवर्ग का उच्चारण कोमल तालु के स्थान की दृष्टि से आजकल की अपेक्षा कदाचित् कुछ अधिक पीछे से होता था, अतः क् उस समय क़् के कुछ अधिक निकट रहा होगा। इसीलिए कवर्ग का स्थान 'कंठ्य' माना जाता था। आजकल का स्थान कुछ आगे हट आया है।

उदा० कमला, चकिया, एक।

३८. ख् : ख् और क् के उच्चारण-स्थान में कोई भेद नहीं है किंतु यह महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। ब्रजभाषा, अवधी आदि बोलियों में फ़ारसी-अरबी संघर्षी ख़ के स्थान पर बराबर स्पर्श ख् हो जाता है।

उदा० खटोला, दुखड़ा, मुख।

३९ ग् : ग् का उच्चारण भी जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से छुआ कर होता है किंतु यह अल्पप्राण, सघोष, स्पर्श व्यंजन है। हिंदी की बोलियों में फ़ारसी-अरबी ग़ के स्थान पर ग् हो जाता है किंतु साहित्यिक हिंदी में यह भेद कायम रक्खा जाता है।

उदा० गमला, जगह, भाग।

४०. घ् : घ् का स्थान पिछले कवर्गीय व्यंजनों के समान ही है किंतु यह महाप्राण, सघोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० घर, बघारना, बाघ।

४१. ट् : समस्त टवर्गीय ध्वनियों का उच्चारण जीभ की नोक को उलट कर उसके नीचे के हिस्से से कठोर तालु के मध्य भाग के निकट छुआ कर किया जाता है। प्राचीन परिभाषा के अनुसार ट् आदि मूर्द्धन्य व्यंजन कहलाते हैं। ट् अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श

व्यंजन है । उच्चारण की कठिनाई के कारण ही बच्चे टव
व्यंजनों का उच्चारण बहुत देर में कर पाते हैं ।

मूर्द्धन्य व्यंजन ध्वनियाँ भारत-यूरोपीय काल की नहीं है व
आर्यों के भारत में आने पर अनार्यों के संपर्क से इनका व्यव
प्रा० भा० आ० में होने लगा था। मूर्द्धन्य ध्वनि वाले शब्दों
संख्या वेदों में अपेक्षित रूप से कम अवश्य है । हिंदी में ट
व्यवहार काफ़ी होता है ।

उदा० *टीला, काटना, सरपट।*

अंग्रेजी की ट्, ड् ध्वनियाँ मूर्द्धन्य नहीं हैं बल्कि वर्त्स
अर्थात् ऊपर के मसूड़े पर बिना उलटे हुए जीभ की नोक छुआ
इनका उच्चारण किया जाता है। हिंदी में वर्त्स्य ट् ड् (
न होने के कारण हिंदी बोलने वाले इन ध्वनियों को या तो मू
(ट् ड्) या दंत्य (त् द्) कर देते हैं ।

४२. ठ् : स्थान की दृष्टि से ट् और ठ् में भेद नहीं है कि
महाप्राण, अघोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है ।

उदा० *ठठेरा, कठोर, काठ।*

४३. ड् : ड् का उच्चारण भी जीभ की नोक को उलट
कठोर तालु के मध्य भाग के निकट छुआ कर होता है किंतु
अल्पप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है ।

उदा० *डमरू, मंडेरी, खड।*

४४. ढ् : ढ् महाप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है। इस
प्रयोग हिंदी में शब्दों के आरंभ में ही पाया जाता है।

उदा० *ढकना, ढपली, ढंग।*

४५. त् : त् का उच्चारण जीभ की नोक से दाँतों की ऊ
की पंक्ति को छूकर किया जाता है । यह अल्पप्राण, अघोष, स्प
व्यंजन है ।

उदा० *ताल, पत्तल, घात।*

४६. थ् : त् और थ् के उच्चारण-स्थान में कोई भेद नहीं है ...तु थ् महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *थोड़ा, सुथरा, साथ।*

४७. द् : द् का उच्चारण भी जीभ की नोक से दाँतों की ऊपर ...ी पंक्ति को छूकर किया जाता है किंतु द् अल्पप्राण, सघोष, स्पर्श ...ंजन है।

उदा० *दानव, बदन, चाँद।*

४८. ध् : ध् का उच्चारण भी अन्य तवर्गीय ध्वनियों के समान ...ी होता है किंतु यह महाप्राण, सघोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *धान, बधाई, साध।*

४९. प् : प् का उच्चारण दोनों होठों को छुआ कर होता है। ...ोष्ठ्य ध्वनियों के उच्चारण में जीभ से सहायता बिल्कुल नहीं ...ी जाती। प् अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। अंत्य ओष्ठ्य ...वनियों में स्फोट नहीं होता।

उदा० *पान, काँपना, भाप।*

५०. फ् : प् और फ् का उच्चारण-स्थान एक है किंतु यह महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *फूल, बफारा।*

५१. ब् : ब् का उच्चारण भी दोनों होठों को छुआ कर होता ...है, किंतु यह अल्पप्राण, सघोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *बुनना, साबुन, सब।*

५२. भ् : भ् महाप्राण, सघोष, ओष्ठ्य, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *भलाई, सभा।*

ङ. स्पर्शसंघर्षी[1]

५३. च् : च् का उच्चारण जीभ के अगले हिस्से को ऊपरी

---

[1] ध्वनि-संबंधी प्रयोग करने के बाद कुछ विद्वान् (दे. चै., बे. फो., § १६; ग्रासरी, हि फो., पृ० ८२; सक., ए. ब., १०) इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि भारतीय आधुनिक

मसूड़ों के निकट कठोर तालु से कुछ रगड़ के साथ छूकर किया जाता है। अतः यह स्पर्शसंघर्षी ध्वनि मानी जाती है। तालु के स्थान की दृष्टि से चवर्गीय व्यंजनों का स्थान टवर्गीय व्यंजनों की अपेक्षा आगे की ओर होने लगा है। प्राचीन काल में संभवतः पीछे की ओर होता था। तभी तो चवर्ग को टवर्ग के पहले रक्खा जाता था।[१] च् अल्पप्राण, अघोष, स्पर्शसंघर्षी व्यंजन है।

उदा० चन्दन, कचौड़ी, सच।

५४. छ् : च् और छ् स्थान एक ही है किंतु छ् महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० छीलना, कछुआ, कच्छ।

५५. ज् : ज् का उच्चारण भी जीभ के अगले हिस्से को ऊपरी मसूड़ों के निकट कठोर तालु से कुछ रगड़ के साथ छूकर किया जाता है। किंतु ज् अल्पप्राण, सघोष, स्पर्शसंघर्षी व्यंजन है।

उदा० जगह, गरजना, साज।

५६. झ् : झ् का स्थान भी अन्य चवर्गीय ध्वनियों के समान ही है किंतु यह महाप्राण, सघोष, स्पर्शसंघर्षी व्यंजन है।

उदा० झकोरा, उलझना, बोझ।

---

[१] चवर्गीय ध्वनियाँ शुद्ध स्पर्श न होकर स्पर्शसंघर्षी व्यंजन हैं। मेरी समझ में इस संबंध में एक दो से अधिक हिंदी बोलने वालों पर प्रयोग करके देखने की आवश्यकता है, तभी ठीक निर्णय हो सकेगा। अबतक की खोज के आधार पर यहाँ चवर्गीय ध्वनियों को स्पर्श-संघर्षी मान लिया गया है। बेली ने पंजाबी च् ज् को स्पर्शसंघर्षी न मान कर स्पर्श व्यंजन माना है (बेली, पंजाबी फ़ोनेटिक रीडर, पृ० XI)। संभव है कि भारतीय चवर्गीय ध्वनियों को स्पर्शसंघर्षी समझने में कुछ प्रभाव अंग्रेज़ी च् ज् ध्वनियों का भी हो। अंग्रेज़ी च ज् अवश्य स्पर्शसंघर्षी हैं।

च. अनुनासिक

५७. ङ् : ङ् का उच्चारण जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से छुआ कर होता है किंतु उसके उच्चारण में कोमल तालु कौवा सहित नीचे को झुक आता है। जिससे कुछ हवा हलक़ के अन्दर नाकों के छिद्रों में होकर निकलते हुए नासिका-विवर में गूँज पैदा कर देती है। कोमल तालु के नीचे झुक आने के कारण समस्त अनुनासिक व्यंजनों के उच्चारण में जीभ निरनुनासिक व्यंजनों की अपेक्षा तालु के कुछ अधिक पिछले भाग को छूती है। निरनुनासिक स्पर्श-व्यंजनों के उच्चारण में कौवा सहित कोमल तालु कुछ पीछे को हटा रहता है जिससे हलक़ के अन्दर नासिका के छिद्र बंद रहते हैं। ङ् सघोष, अल्पप्राण, कंठ्य, अनुनासिक ध्वनि है।

स्वर सहित ङ् हिंदी में नहीं पाया जाता। शब्दों के आदि या अंत में भी इसका व्यवहार नहीं होता। शब्दों के बीच में कवर्ग के पहले ही ङ् सुनाई पड़ता है। देवनागरी लिपि में ङ् तथा समस्त अन्य पंचम अनुनासिक व्यंजनों के लिए अब प्रायः अनुस्वार लिखा जाता है।

उदा० *अंक, कंपा, बंगू।*

५८. ञ् : ञ् सघोष, अल्पप्राण, तालव्य, अनुनासिक ध्वनि है। ञ ध्वनि साहित्यिक हिंदी के शब्दों में नहीं पाई जाती। साहित्यिक हिंदी में चवर्गीय ध्वनियों के पहले आने वाले अनुनासिक व्यंजन का उच्चारण न के समान होता है। सं० *चञ्चल, कञ्ज* आदि का उच्चारण हिंदी में चन्चल, कन्ज की तरह होता है। अवधी[1] में यह ध्वनि बतलायी जाती है किंतु जो उदाहरण दिए गए हैं *(तमंचा, पंजा, संझा)*, उनमें इस ध्वनि का होना संदिग्ध है। ब्रज की बोली में *नाञ्* (हि० नहीं) *साञ् साञ्* (विशेष प्रकार की आवाज़) आदि

[1]सक., ए. अ., § ६०

शब्दों में ञ् की सी ध्वनि सुनाई पड़ती है। यह ञ् भी अनुनासि
य् अर्थात् य से बहुत मिलता-जुलता है।

५९. *ण् : ण्* अल्पप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, अनुनासिक व्यं
है। अनुनासिक होने के कारण इसका उच्चारण निरनुनासि
मूर्द्धन्य व्यंजनों की अपेक्षा कठोर तालु पर कुछ अधिक पीछे
ओर उल्टी जीभ की नोक छुआ कर होता है। स्वर सहित
ध्वनि हिंदी में केवल तत्सम संस्कृत शब्दों में मिलती है और उन
भी शब्दों के आदि में नहीं पाई जाती।

उदा० *गुण, परिणाम, चरण।*

हिंदी में व्यवहृत संस्कृत शब्दों में मूर्द्धन्य स्पर्श-व्यंजनों के
पूर्व हलंत ण् का उच्चारण न् के समान हो गया है। जैसे सं० *पण्डित,*
कण्टक आदि शब्दों का उच्चारण हिंदी में *पन्डित, कन्टक* की तरह
होता है।[1] अर्द्धस्वरों के पहले ण् ध्वनि रहती है, जैसे *कण्व, पुण्य*
आदि। हिंदी की बोलियों में ण् ध्वनि का व्यवहार बिल्कुल भी नहीं
होता है। ण् के स्थान पर बराबर न् हो जाता है जैसे *परन, गनेस, गुन।*
वास्तव में हिंदी ण का उच्चारण ड़ँ से बहुत मिलता-जुलता होता है

६०. *न् : न्* अल्पप्राण, सघोष, वर्त्स्य, अनुनासिक व्यंजन है।
इसके उच्चारण में जीभ की नोक दंत्य स्पर्श व्यंजनों के समान दाँतों
की पंक्ति को न छूकर ऊपर के मसूड़ों को छूती है। अतः प्राचीन प्रथा
के अनुसार न् को दंत्य मानना ठीक नहीं है। यह वास्तव में वर्त्स्य है।

उदा० *निमक, पन्दर, कान।*

६१. *न्ह् : न्ह्* महाप्राण, सघोष, वर्त्स्य, अनुनासिक व्यंजन है।
हिन्दी में इसे मूल ध्वनि नहीं माना जाता रहा है किंतु आधुनिक विद्वान्

[1] कादरी. हि फो, पृ० ८९; मस., ए. भ., § १२

इसे संयुक्त व्यंजन न मानकर घ्, ध्, भ् आदि की तरह मूल महाप्राण व्यंजन मानते हैं।

उदा० *उन्होंने, कन्हैया, जिन्होंने।*

६२. म् : म् का उच्चारण भी ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजनों के समान दोनों होठों को छुआ कर होता है किंतु इसके उच्चारण में अन्य अनुनासिक व्यंजनों के समान कुछ हवा हलक़ के नाक के छिद्रों में होकर नासिका-विवर में गूंज उत्पन्न करती है। म् अल्पप्राण, सघोष, ओष्ठ्य, अनुनासिक व्यंजन है।

उदा० *माता, कामना, आम।*

६३. म्ह् : म्ह् महाप्राण, सघोष, ओष्ठ्य, अनुनासिक व्यंजन है। न्ह् के समान इसे भी आधुनिक विद्वान्[1] संयुक्त व्यंजन न मान कर मूल महाप्राण व्यंजन मानते हैं।

उदा० *तुम्हारा, कुम्हार, अव० मह्मा* (हि० ब्रह्मा)।

छ. पार्श्विक

६४. ल् : ल् के उच्चारण में जीभ की नोक ऊपर के मसूड़ों को अच्छी तरह छूती है किंतु साथ ही जीभ के दाहिने-बायें जगह छूट जाती है जिसके कारण हवा पार्श्वों से निकलती रहती है। इसलिए ल् ध्वनि देर तक कही जा सकती है। ल् पार्श्विक, अल्पप्राण, सघोष, वर्त्स्य ध्वनि है। ल् ध्वनि का उच्चारण र् के स्थान से ही होता है किंतु इसका उच्चारण र् की अपेक्षा सरल है इसलिए आरंभ में बच्चे र् की जगह ल् बोलते हैं।

उदा० *लाभ, सलना, माल।*

६५. ल्ह् : यह ल् का महाप्राण रूप है। बोलियों में इसका

[1] बाहरी, हि. फो., पृष्ठ ८०; सक, ए. अ., § ६१

प्रयोग बराबर मिलता है। न्ह्, म्ह् की तरह इसे भी अन्य महाप्राण व्यंजनों के समान माना गया है।'

उदा० ब्र० सल्हा (हि० सलाह), अव० पल्हारब्, ब्र० फल्हि (हि० फल) ।

ज. लुंठित

६६. र् : र् के उच्चारण में जीभ की नोक दो-तीन बार व या ऊपर के मसूड़े को शीघ्रता से छूती है । र् लुंठित, अल्पप्रा वर्त्स्य, सघोष ध्वनि है । बच्चों को इस तरह जीभ में क कठिनाई पड़ती है, इसीलिए बच्चे बहुत दिनों तक र का उच्चार नहीं कर पाते ।

उदा० *राम, चरण, पार* ।

६७. र्ह् : यह र् का महाप्राण रूप है । बोलियों में इसक प्रयोग बराबर होता है । यह ध्वनि शब्द के मध्य में ही मिलती है ल्ह् आदि के समान र्ह् भी मूल ध्वनि' मानी जाती है ।

उदा० ब्र० *कर्हानो* (हि० कराहना), अव० *अर्ही* (हि० अरहर) ।

झ. उत्क्षिप्त

६८. ड़् : ड़् का उच्चारण जीभ की नोक को उलट कर नीचे के हिस्से से कठोर तालु को झटके के साथ कुछ दूर तक छूकर किया जाता है । ड़् न तो ड् की तरह स्पर्श ध्वनि है और न र् की तरह लुंठित ध्वनि है । ड़् अल्पप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, उत्क्षिप्त ध्वनि है।

हिंदी में यह नवीन ध्वनियों में से एक है। ड़् शब्दों के मध्य या अंत में प्रायः दो स्वरों के बीच में ही आता है।

उदा० *पेड़, बड़ा, गड़बड़।*

६९. ढ़् : ड़् और ढ़् का उच्चारण-स्थान एक ही है किंतु ढ़् महाप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, उत्क्षिप्त ध्वनि है। ढ़् वास्तव में ड़् का रूपांतर है ढ़् का नहीं। यह ध्वनि भी हिंदी में नवीन है और शब्दों के मध्य या अंत में प्रायः दो स्वरों के बीच में पाई जाती है।

उदा० *बढ़िया, बूढ़ा, बढ़।*

अ. संघर्षी

७०. ह् : विसर्ग या अघोष ह्-ह्-के उच्चारण में जीभ और तालु अथवा होठों की सहायता बिल्कुल नहीं ली जाती। हवा को अंदर से ज़ोर से फेंक कर मुखद्वार के खुले रहते हुए स्वरयंत्र के मुख पर रगड़ उत्पन्न करके इस ध्वनि का उच्चारण किया जाता है। विसर्ग या ह् और अ के उच्चारण में मुख के समस्त अवयव समान रहते हैं, भेद केवल इतना होता है कि अ के उच्चारण में हवा ज़ोर से नहीं फेंकी जाती और विसर्ग के उच्चारण में हवा ज़ोर से फेंकी जाती है। साथ ही विसर्ग अ के समान घोष ध्वनि नहीं है। विसर्ग वास्तव में अघोष ह्-ह् मात्र है अतः इसे स्वरयंत्रमुखी, अघोष, संघर्षी ध्वनि कह सकते हैं।

हिंदी में विसर्ग का प्रयोग थोड़े से संस्कृत तत्सम शब्दों में होता है। हिंदी के शब्दों में छः शब्द तथा छिः आदि विस्मयादिबोधक शब्दों में भी इसका व्यवहार मिलता है। दुःख शब्द में विसर्ग (प्रा० भा० आ० का जिह्वामूलीय) लिखा तो जाता है, लेकिन इसका उच्चारण क् के समान होता है। ख् (क्+ह्) द् (द्+ह्) आदि अघोष महाप्राण व्यंजनों में भी विसर्ग या ह् ही पाया जाता है।

उदा० *पुनः, प्रायः, छः।*

७१. ह् : ह् और विसर्ग या ह् का उच्चारण-स्थान एक ही है भेद केवल इतना ही है कि विसर्ग अघोष ध्वनि है और ह् सघोष ध्वनि है। शब्द के अंत में आने वाला ह्[1] घोष रहता है, *यह, वह, म*हा शब्द के आदि में आने वाले ह् के घोष होने में मतभेद है।[1] (ग+ह्) द् (द्+ह्) आदि घोष महाप्राण व्यंजनों में घोष ह् पाया जाता है। ह् स्वरयंत्रमुखी, सघोष, संघर्षी ध्वनि है।

उदा० *हाथी, कहता, साहूकार।*

७२. ख़् : ख़् का उच्चारण जिह्वामूल को कौवे के नि कोमल तालु से लगा कर किया जाता है किंतु इसके उच्चारण हलक़ का दरवाजा बिल्कुल बंद नहीं किया जाता, अतः हवा रग खा कर निकलती रहती है। क़् के समान स्पर्श ध्वनि न होकर जिह्वामूलीय, अघोष, संघर्षी ध्वनि है, अतः ख़् आदि स्पर्श व्यंजन के साथ इसे रखना ठीक नहीं है। ख़् ध्वनि हिंदी में फ़ारसी-अरबी तत्सम शब्दों में ही व्यवहृत होती है। यह भारतीय आर्यभाषा की ध्वनि नहीं है। कौवे के निकट से बोली जाने वाली प्राचीन ध्वनियाँ हिंदी में नहीं थीं, अतः हिंदी बोलियों में ख़् के स्थान पर प्रायः ख् का उच्चारण किया जाता है।

उदा० *ख़राब, बुख़ार, मलख़।*

७३. ग़् : ख़् और ग़् के उच्चारण-स्थान एक ही हैं। ग़् भी जिह्वामूलीय, संघर्षी ध्वनि है किन्तु यह अघोष न होकर सघोष है। ग़् भी भारतीय आर्यभाषा की ध्वनि नहीं है और फ़ारसी-अरबी तत्सम शब्दों में ही पाई जाती है। उच्चारण की दृष्टि से ग़् को ग्

---

[1] मक., ए. ब, § ८६

[2] मक., ए. ब, § ८५; फ़ारसी, हि. फ़ो, पृ० १०

का रूपांतर समझना भूल है यद्यपि हिंदी बोलियों में ग़ के स्थान पर प्रायः ग का ही प्रयोग किया जाता है।

उदा० *ग़रीब, चोग़ा, दाग़।*

७४. श्: श् का उच्चारण जीभ की नोक को कठोर तालु को रगड़ के साथ छूकर किया जाता है। श् अघोष, संघर्षी, तालव्य ध्वनि है। यह ध्वनि प्राचीन है और फ़ारसी-अरबी तथा अंग्रेज़ी आदि से आए हुए विदेशी शब्दों में भी मिलती है। हिंदी बोलियों में श् के स्थान पर प्रायः स् का उच्चारण होता है।

उदा० *शब्द, पशु, वश, शायद, पश्मीना, शेयर* (Share)।

७५. स्: स् का उच्चारण जीभ की नोक से वर्त्स स्थान को रगड़ के साथ छूकर किया जाता है। स् वर्त्स्य, संघर्षी, अघोष ध्वनि है।

उदा० *सेना, कसना पास।*

७६. ज़्: ज़् और स् का उच्चारण-स्थान एक ही है अर्थात् ज़् भी वर्त्स्य, संघर्षी ध्वनि है किंतु यह स् की तरह अघोष न होकर सघोष है। अतः वास्तव में ज़् स्पर्श ज् का रूपांतर न होकर स् का रूपांतर है। ज़् भी विदेशी ध्वनि है और फ़ारसी-अरबी तत्सम शब्दों में ही व्यवहृत होती है। हिंदी बोलियों में ज़् के स्थान पर ज् हो जाता है।

उदा० *ज़ालिम, गुज़र, बाज़।*

७७. फ़्: फ़् का उच्चारण नीचे के होठ को ऊपर के दांतों की पंक्ति से लगा कर किया जाता है, साथ ही होठों और दांतों के बीच से रगड़ के साथ हवा निकलती रहती है। फ़् दंत्योष्ठ्य, संघर्षी, अघोष ध्वनि है। ध्वनि-शास्त्र की दृष्टि से फ़् को स्पर्श फ् का रूपांतर मानना उचित नहीं है। फ़् भी हिंदी में विदेशी ध्वनि है और फ़ारसी-अरबी के तत्सम शब्दों में ही व्यवहृत होती है। हिंदी बोलियों में इसका स्थान फ् ले लेता है क्योंकि यह हिंदी की प्राचीन ध्वनियों में फ़् के निकटतम है।

उदा० *फ़ारसी, साफ़, बर्फ़।*

७८. व़ : व़ का उच्चारण भी नीचे के होंठ को ऊपर के दाँ से लगा कर किया जाता है, साथ ही होंठ और दाँतों के बीच से रग खाकर कुछ हवा निकलती रहती है। व़ दंत्योष्ठ्य, संघर्षी, सघो ध्वनि है।[1] व़ की अपेक्षा व् ध्वनि सरल है। हिंदी की बोलियों में व़ के स्थान पर प्रायः व का ही उच्चारण होता है। व़ प्राचीन ध्वनि है। हिंदी में व्यवहृत विदेशी शब्दों में भी यह ध्वनि पाई जाती है।

उदा० *वन, चावल, यादव, वलवला।*

ट. अर्द्धस्वर

७९. य् : य् का उच्चारण जीभ के अगले भाग को कठ तालु की ओर ले जाकर किया जाता है किंतु जीभ न चवर्ग ध्वनियों के समान तालु को अच्छी तरह छूती ही है और न आदि तालव्य स्वरों के समान दूर ही रहती है। अतः य् को अंतः या अर्द्धस्वर अर्थात् व्यंजन और स्वर के बीच की ध्वनि माना जा है। जीभ को इस तरह तालु के निकट रखना कठिन है, इसीलि हिंदी बोलियों में प्रायः य् के स्थान पर शब्द के आरंभ में प्रा ज् हो जाता है। य तालव्य, सघोष, अर्द्धस्वर है। य् का उच्चार एड से मिलता-जुलता होता है।

उदा० *यम, नियम, आय।*

८०. व् : व् जब शब्द के मध्य में स्वर हीन व्यंजन के बा आता है तो इसका उच्चारण दंत्योष्ठ्य न होकर द्वयोष्ठ्य हो जात

---

[1] क़ादरी ने (हि. फ़ो., पृ० ९४) महाप्राण व़ अर्थात व़्ह् का उल्लेख भी किया है। व़् के बाद यदि स्वर+ह् हो तो तेज़ बोलने में स्वर के लुप्त हो जाने से व़् का उच्चारण व़्ह् के समान हो जाता है, जैसे वहाँ>व़्हां, +वहीं>व़्हीं। हिंदी में अभी महाप्राण व़् का उच्चारण स्थायी रूप से नहीं होता है।

तु ब् के उच्चारण की तरह दोनों होठ बिल्कुल बंद नहीं किए
ौर न संघर्ष ही होता है। व् के उच्चारण में जीभ का पिछला
ो कोमल तालु की तरफ़ उठता है किंतु कोमल तालु को स्पर्श
रता है। व् कंठचोष्ठ्य, सघोष, अर्द्धस्वर है। हिंदी बोलियों,
यह ध्वनि विशेप रूप से पाई जाती है। व् का उच्चारण
से मिलता-जुलता होता है।

उदा० क्वारा, स्वाद, स्वर।

८१. ऊपर वर्णित समस्त ध्वनियों का वर्गीकरण कोष्ठक में
र से किया गया है। आशा है, प्रत्येक हिंदी ध्वनि के ठीक रूप
या ध्वनियों के आपस के भेद को समझने में यह वर्गीकरण
शेष रूप से सहायक होगा।

[1]घ०, ए. भ., § ६९

कर दिया है। इस अध्याय का समस्त विवेचन हिंदी ध्वनिसमूह के दृष्टिकोण से है, अतः उदाहरणों[1] में आधुनिक काल से पीछे की ओर जाने का यत्न किया गया है—पहले हिंदी का रूप दिया गया है और उसके सामने संस्कृत का तत्सम रूप दिया गया है। बहुत कम शब्दों के निश्चित प्राकृत रूप मिलने के कारण प्राकृत उदाहरण बिल्कुल ही छोड़ दिए गए हैं। इस कारण ध्वनि-परिवर्तन की मध्य अवस्था सामने नहीं आ पाती, किंतु इस कठिनाई को दूर करने का अभी कोई उपाय नहीं था। स्थानाभाव के कारण ध्वनि-परिवर्तनों पर विस्तार से विचार नहीं किया जा सकता है। तुलनात्मक ढंग से केवल संस्कृत और हिंदी रूप देकर ही संतोष करना पड़ा है। हिंदी ध्वनियों के इतिहास में संस्कृत से नियमित अथवा अपवाद-स्वरूप से आनेवाली ध्वनियों का भेद नहीं दिखलाया जा सका है। इन सब त्रुटियों के रहते हुए भी विषय का विवेचन मौलिक ढंग से किया गया है, और कदाचित् हिंदी में अपने ढंग का पहला है।

अ. स्वर-परिवर्तन संबंधी कुछ साधारण नियम

८३. संस्कृत शब्दों के प्राकृत रूपों में ध्वनि-संबंधी परिवर्तन बहुत हुए हैं, किंतु हिंदी तथा अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं में आने पर इस तरह के परिवर्तन अपेक्षाकृत कम पाए जाते हैं। संस्कृत शब्दों के स्वर हिंदी में आने पर प्रायः ज्यों के त्यों रहते हैं, यद्यपि बहुत से उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनमें स्वर-परिवर्तन हो जाता है। वास्तव में हिंदी में आने पर संस्कृत के स्वरों में अनेक प्रकार के परिवर्तन पाए जाते हैं। स्वरों का एक-दूसरे में परिवर्तन हो जाना साधारण बात है। ये परिवर्तन एक ही स्वर के ह्रस्व और दीर्घ

---

[1] उदाहरण इकट्ठे करने में डॉ॰, ब॰, धी॰, तथा पं॰, के मै॰ से विशेष सहायता मिली है।

अध्याय २

हिंदी ध्वनियों का इतिहास

८२. पिछले अध्याय में साहित्यिक हिंदी तथा हिं
बोलियों में पाई जानेवाली समस्त ध्वनियों का विस्तृत व
जा चुका है। इस अध्याय में आधुनिक साहित्यिक हिंदी में
ध्वनियों का इतिहास देने का यत्न किया जायगा। बोलि
प्रयुक्त विशेष ध्वनियों के संबंध में ऐतिहासिक सामग्री
कारण बोली वाली ध्वनियों का इतिहास नहीं दिया जा
फ़ारसी-अरबी तथा अंग्रेज़ी से आई हुई विशेष ध्वनियों क
भी नहीं किया गया है, क्योंकि इनका इतिहास स्पष्ट ही है।
आने पर विदेशी शब्दों तथा उनमें होने वाले ध्वनि-परिव
विस्तृत समीक्षा अगले अध्याय में की गई है। इस अध्याय में
भारतीय आर्य-ध्वनियों के उद्गम से आई हुई ध्वनियों
विचार किया गया है।

ध्वनि-संबंधी परिवर्तनों को दिखाने के लिए तत्सम श
बिल्कुल भी सहायता नहीं मिलती है। आधुनिक साहित्यिक हि
तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुत बढ़ गया है। क्योंकि ध्वनि
इतिहास का अध्ययन केवल तद्भव शब्दों में ही हो सकता है, अत
अध्याय के उदाहरण के अंशों में प्रायः ऐसे शब्द दिखलाई प
जिनका प्रयोग साहित्यिक हिंदी की अपेक्षा हिंदी की बोलियों
विशेष रूप से होता है। केवल बोलियों में प्रयुक्त शब्दों का नि

र्घ में न बदल कर कदाचित् ए ओ हो कर अंत में गुण (ए, ओ) बदल जाते हैं :—

कोढ़ <*कुष्ठ*
कोख <*कुक्षि*
बेल <*बिल्व*
सेम <*शिम्बा*

तत्सम शब्दों को छोड़कर हिंदी में तद्भव शब्दों में वृद्धि-स्वरों (ऐ, औ) का प्रयोग बहुत कम मिलता है। ऐ, औ प्रायः ए, ओ में परिवर्तन हो जाते हैं :—

केवट <*कैवर्त्त*
गेरू <*गैरिक*
गोर <*गौर*

(३) ऋ का उच्चारण कदाचित् संस्कृत में ही शुद्ध मूल स्वर के समान नहीं रह गया था। प्राकृत में तो ऋ मिलती ही नहीं, इसके स्थान में अ, इ, उ आदि कोई अन्य स्वर हो जाता है। कुछ प्राकृत शब्दों में *रि* या *रु* रूप भी मिलते हैं। हिंदी तत्सम शब्दों में ऋ का उच्चारण *रि* होता है। तद्भव शब्दों में ऋ किसी अन्य स्वर में परिवर्तित हो जाती है। इन परिवर्तनों के उदाहरण आगे दिए गए हैं। नीचे दिए हुए समस्त ध्वनि-परिवर्तन एक तरह से अपवाद-स्वरूप हैं। साधारण नियम यही है कि संस्कृत शब्दों के स्वर हिंदी में प्रायः ज्यों के त्यों रहते हैं।

आ. हिंदी स्वरों का इतिहास

८५. हिंदी के एक-एक स्वर को लेकर नीचे यह दिखलाने का यत्न किया गया है कि यह किन-किन संस्कृत ध्वनियों का परिवर्तित रूप हो सकता है। उदाहरणों में पहिले हिंदी का शब्द दिया गया है

रूपों में भी पाए जाते हैं तथा भिन्न स्थान वाले स्वर
में पाए जाते हैं। हिंदी के दृष्टिकोण से इन परिवर्तन
उदाहरण आगे दिए गए हैं।

८८. बीम्स[1] आदि विद्वानों ने भारतीय आर्य
स्वर-परिवर्तनों के संबंध में कुछ साधारण नियम दिए
व्यापक सिद्ध नियम नहीं समझे जा सकते। इनमें से
स्वरूप कुछ मुख्य नियम नीचे दिए जाते हैं:—

(१) संस्कृत शब्दों का अंतिम स्वर म० भा० आ०
अंत तक चला था, बल्कि कुछ-कुछ तो आधुनिक काल के आरं
पाया जाता था। म० भा० आ० काल के अंत में दीर्घ स्वर आ,
धीरे-धीरे -अ, इ, उ में परिवर्तित हो गए थे और -ए,
परिवर्तन इ, उ में हो गया था। इन दीर्घ तथा संयुक्त से ह्रस्व
स्वरों और मूल ह्रस्व स्वरों में कोई भेद नहीं रह सका। आ०
आ० में शब्दों के अंत में ये ह्रस्व स्वर कुछ दिनों तक रहे किंतु धीरे
धीरे इनका भी लोप हो गया। अब हिंदी के तद्भव शब्द उच्च
की दृष्टि से बहुत संख्या में व्यंजनांत हो गए हैं। लिखने में
परिवर्तन अभी साधारणतया नहीं किया जाता है। हिंदी की
बोलियों में अंत्य-अ, इ आदि का उच्चारण कुछ-कुछ प्रचलित है।

(२) गुणवृद्धि परिवर्तन संस्कृत में पाए जाते हैं।
इन परिवर्तनों का अभाव है, अतः आ० भा० आ० में भी ये प्र
पाए जाते। किंतु हिंदी में संधि के पूर्व के इ, उ ह्रस्व स्वर कभी

---

[1] बी., क. ग्रै., भा० १ अ० २

[2] धी., वे. लै., ह १४८

[3] ध्वनि-संबंधी प्रयोगों के बाद सक्सेना (ए. अ. § ११४) इस निश्चय पर
अवधी में कुछ अंत्य स्वर केवल फुसफुसाहट वाले हैं।

घ में न बदल कर कदाचित् ए ओ हो कर अंत में गुण (ए, ओ) बदल जाते हैं :—

कोढ़ <कुष्ठ
कोख <कुक्षि
बेल <बिल्व
सेम <शिम्बा

तत्सम शब्दों को छोड़कर हिंदी में तद्भव शब्दों में वृद्धि-स्वरों ऐ, औ) का प्रयोग बहुत कम मिलता है। ऐ, औ प्रायः ए, ओ : परिवर्तन हो जाते हैं :—

केवट <कैवर्त्त
गेरू <गैरिक
गोर <गौर

(३) ऋ का उच्चारण कदाचित् संस्कृत में ही शुद्ध मूल स्वर के समान नहीं रह गया था। प्राकृत में तो ऋ मिलती ही नहीं, इसके स्थान में अ, इ, उ आदि कोई अन्य स्वर हो जाता है। कुछ प्राकृत शब्दों में रि या रु रूप भी मिलते हैं। हिंदी तत्सम शब्दों मे ऋ का उच्चारण रि होता है। तद्भव शब्दों में ऋ किसी अन्य स्वर में परिवर्तित हो जाती है। इन परिवर्तनों के उदाहरण आगे दिए गए हैं। नीचे दिए हुए समस्त ध्वनि-परिवर्तन एक तरह से अपवाद-स्वरूप हैं। साधारण नियम यही है कि संस्कृत शब्दों के स्वर हिंदी में प्रायः ज्यों के त्यों रहते हैं।

आ. हिंदी स्वरों का इतिहास

८५. हिंदी के एक-एक स्वर को लेकर नीचे यह दिखलाने का यत्न किया गया है कि यह किन-किन संस्कृत ध्वनियों का परिवर्तित रूप हो सकता है। उदाहरणों में पहिले हिंदी का शब्द दिया गया है

तथा उसके आगे उस शब्द का संस्कृत पूर्व-रूप दिया गया है। क्
से हिंदी शब्द प्राकृत काल के बाद संस्कृत से सीधे लिए गए थे, अ
उनके वर्तमान रूप प्राकृत रूपों से विकसित नहीं हुए हैं। ऐसे शब्दों
की ध्वनियों के अध्ययन में प्राकृत रूपों से विशेष सहायता नहीं मि
सकती। तो भी ध्वनियों के इतिहास के अध्ययन में प्राकृत रू
न कुछ साधारण सहायता अवश्य देते हैं। कुछ नहीं तो इतनी
तो निश्चित हो ही जाती है कि अमुक हिंदी शब्द प्राचीन तद्
अर्थात् प्राकृत भाषाओं से होकर आया हुआ है, अथवा आ
तद्भव है अर्थात् प्राकृत काल के बाद का आया हुआ है। क
प्राकृत साहित्य परिमित है अतः प्रत्येक हिंदी शब्द का प्राकृत
मिल सके यह आवश्यक नहीं है। अनुमान के आधार पर प्राकृत
गढ़े जा सकते हैं, किंतु ऐसे रूपों से ठीक निर्णय पर पहुँचना स
नहीं है। इन्हीं कठिनाइयों के कारण, जैसा ऊपर निर्देश किया
चुका है, इस अध्याय में प्राकृत शब्दों के देने का प्रयास ही नहीं कि
गया है। प्रायः एक ही शब्द में अनेक ध्वनि-परिवर्तन हुए हैं अ
एक ही शब्द कभी-कभी कई स्थलों पर उदाहरण-स्वरूप मिले
प्रत्येक स्थल पर उस शब्द में पाये जाने वाले निर्दिष्ट ध्व
परिवर्तन पर ही ध्यान देना उचित होगा।

क. मूलस्वर

८६ हि० अ[1]:

सं० अ :	पहर	प्रहर
	थन	[1]स्तन
	थल	स्थल

[1]अन्त्य अ का उच्चारण साहित्यिक हिंदी में प्रायः नहीं होता किंतु बोलियों में व
... भी चला आता है। इन उदाहरणों में अंत्य का होना मान लिया गया है

सं० आ :

अचरज	आश्चर्य
महँगा	महार्घ
मंजन	मार्जन

सं० इ :

बादल	वारिद
भभूत	विभूति

सं० ई :

गाभिन	गर्भिणी
गहरा	गंभीर
पाकड़	पर्कटी

सं० उ :

कबरा	कर्बुर
चोंच	चंचु
बूंद	बिंदु

सं० ऋ :

मरा	मृत
घर[1]	गृह

८७. हि० आ :

सं० आ :

आम	आम्र
आस	आशा
थान	स्थान

---

[1] टर्नर (दे०, नेपाली डिक्शनरी, पृ० १५४) हि० घर की व्युत्पत्ति सं० गृह से न करके प्रा० दृ० घृघरो (अर्थ—अग्नि, गरमी, घर में अग्नि का स्थान) से मानते हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि यह संभावित रूप मात्र है।

सं० ऋ:

काम	कर्म
बकरा	बर्कर
महँगा	महार्घ

सं० ऋ:

साँकर	शृङ्खला
कान्ह	कृष्ण
नाच	नृत्य

हि० ओ:

सं० ओ:

घोड़ा	घोटक
कोइल	कोकिल
होंठ	ओष्ठ

सं० अ:

चोंच	चंचु
नोन (बो०)	लवण
पोहे (बो०)	पशु

सं० उ:

पोखर	पुष्कर
कोख	कुक्षि
कोंढ़	कुंठ

सं० औ:

गोरा	गौर
मोती	मौक्तिक
मोली	मौलिक

८९ हिं० उ:

सं० उ:

कुंजी	कुंचिका
उजला	उज्वल

सं० अ:

उंगली	अंगुली
पुआल	पलाल
खुजली	खर्जू

सं० ऊ:

महुआ	मधूक
सुई	सूचिका

सं० ऋ:

मुआ (ब०)	मृत
सुरत (ब०)	स्मृति

सं० व:

सुर	स्वर
तुरत	त्वरित

१०. हि० ऊ:

सं० ऊ:

ऊन	ऊर्ण
रूखा	रूक्ष

सं० अ:

मूछ	श्मश्रु

सं० इ:

बूँद	बिंदु
ऊख	इक्षु
बिच्छू	वृश्चिक

सं० उ:

मूसल	मुषल
बालू	बालुका

सं० ऋ:

बूढ़ा	वृद्ध
रूख (व्र)	वृक्ष
पूछे	पृच्छति

११. हि० ई:

सं० ई:

पानी	पानीय
सीस	शीर्ष
कीड़ा	कीट

सं० अ :

बहंगी	*वाहांग*
करसी	*करीषिका*
तीसी	*अतसीका*

सं० इ :

चीता	*चित्रक*
जीभ	*जिह्वा*
हाथी	*हस्तिन्*

सं० उ :

बाई	*वायु*
बिंदी	*बिंदुका*

सं० ऋ :

सींग	*शृङ्ग*
भतीजा	*भ्रातृज-*
जमाई	*जामातृ-*

९२. हि० इ :

सं० इ :

किरन	*किरण*
बहिरा	*बधिर*
गाभिन	*गर्भिणी*

सं० अ :

पिंजड़ा	पंजर

गिनना	गणन
इमली	अम्लिका

सं० ई :

दिया	दीपक
दिवाली	दीपावली

सं० ऋ :

बिच्छू	वृश्चिक
मिट्टी	मृत्तिका
गिद्ध	गृद्ध

९३. हि० ए :

सं० ए :

एक	एक
जेठ	ज्येष्ठ
सेठ	श्रेष्ठिन्

सं० अ :

सेंध	संधि
केकड़ा	कर्कट
छेरी	छगलिका

सं० इ :

बेल	बिल्व
बेंदी	बिंदु
सेम	शिंबा

आँसू	अश्रु
साँच (वो)	सत्य
साँस	श्वास
भौं	भ्रू
जूं	यूक

ग. संयुक्त स्वर

९७. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में केवल ए, ओ, ऐ, औ, यह चार संयुक्त स्वर माने जाते थे, और इनके संबंध मे धारणा यह है कि इनके मूल रूप निम्नलिखित स्वरों के संयोग से बने थे:—

ए :	अ +इ
ओ :	अ +उ
ऐ :	आ+इ
औ :	आ+उ

जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है (दे० § २) संस्कृत काल में ही ए, ओ का उच्चारण मूल दीर्घस्वरों के समान हो गया था, जो आज भी आधुनिक आर्यभाषाओं में प्रचलित है। अत. हिंदी ए, ओ का विवेचन मूल स्वरों के साथ किया गया है। प्राकृतों मे ह्रस्व ए, ओ का व्यवहार भी मिलता है। आधुनिक साहित्यिक हिंदी में ये ध्वनियां अधिक शब्दों में नहीं पाई जाती, यद्यपि हिंदी की कुछ बोलियों में इनका व्यवहार बराबर मिलता है। इनका इतिहास प्राकृत काल के पूर्व नहीं जा सकता।

वैदिक काल में ऐ, औ का पूर्व स्वर दीर्घ था (आ+इ; आ+उ) किंतु भा० आ० भा० के मध्यकाल के पूर्व ही इस दीर्घ आ का उच्चारण ह्रस्व अ के समान होने लगा था। आजकल संस्कृत में ऐ, औ का उच्चारण अइ, अउ के समान ही होता है। हिंदी की कुछ बोलियों में ऐ, औ का यह उच्चारण अब भी प्रचलित है। आधुनिक

भौंरा	*भ्रमर*
साईं	*स्वामी*
भुइं (वो)	*भूमि*

९५. उच्चारण की दृष्टि से अनुनासिक व्यंजनों के निकट स्वर अनुनासिक हो जाते हैं यद्यपि साधारणतया लिखने में परिवर्तन नहीं दिखलाया जाता,[1] जैसे :—

लिखित	उच्चरित रूप
आम	*आंम*
राम	*रांम*
हनूमान	*हंनूमांन*
कान	*कांन*
तुम	*तुंम*
महाराज	*मंहाराज*

९६. हिंदी में अनुनासिक स्वरों के कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जो अकारण ही अनुनासिक हो गए हैं, और जिनके तत्सम रूपों में कोई अनुनासिक ध्वनि नहीं पाई जाती। सुविधा के लिए इसे अकारण अनुनासिकता[2] कह सकते हैं, जैसे :—

---

[1] अवधी, ब्रजभाषा आदि के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में बहुत से स्थलों पर उच्चारण के अनुसार कभी-कभी लिखने में भी इस तरह के परिवर्तन दिखलाए गए हैं। तुलसीदास ... मानस' की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में इस तरह के रूप पाए जाते हैं, जैसे, रांम, कांन, ...ांमवत, अभिलखाना आदि।

[2] मिडैरवर कं... "नेज़लाइज़ेशन इन हिंदी लिटरेरी वर्क्स, (जर्नल आव् दि डिपार्ट- ... ट आव् लेटर्स, कलकत्ता, भाग १८); पृ. के. मै. (5) १०८

आँसू	अश्रु
साँच (बो)	सत्य
साँस	श्वास
भौं	भ्रू
जूं	यूक

ग. संयुक्त स्वर

९७. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में केवल ए, ओ, ऐ, औ, यह चार संयुक्त स्वर माने जाते थे, और इनके संबंध में धारणा यह है कि इनके मूल रूप निम्नलिखित स्वरों के संयोग से बने थे.—

ए :	अ + इ
ओ :	अ + उ
ऐ :	आ + इ
औ :	आ + उ

जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है (दे० § ९) संस्कृत काल में ही ए, ओ का उच्चारण मूल दीर्घस्वरों के समान हो गया था, जो आज भी आधुनिक आर्यभाषाओं में प्रचलित है। अतः हिंदी ए, ओ का विवेचन मूल स्वरों के साथ किया गया है। प्राकृतों में ह्रस्व ए, ओ का व्यवहार भी मिलता है। आधुनिक साहित्यिक हिंदी में ये ध्वनियां अधिक शब्दों में नहीं पाई जाती, यद्यपि हिंदी की कुछ बोलियों में इनका व्यवहार बराबर मिलता है। इनका इतिहास प्राकृत काल के पूर्व नहीं जा सकता।

वैदिक काल में ऐ, औ का पूर्व स्वर दीर्घ था (आ + इ, आ + उ) किंतु प्रा० आ० भा० के मध्यकाल के पूर्व ही इस दीर्घ आ का उच्चारण ह्रस्व अ के समान होने लगा था। आजकल संस्कृत में ऐ, औ का उच्चारण अइ, अउ के समान ही होता है। हिंदी की कुछ बोलियों में ऐ, औ का यह उच्चारण अब भी प्रचलित है। आधुनिक

साहित्यिक हिंदी में ऐ, औ का उच्चारण *अए, अओ* हो गया है
प्राचीन *अइ, अउ* उच्चारण बहुत कम शब्दों में पाया जाता है
पाली प्राकृत में ऐ, औ संयुक्त स्वरों का बिलकुल भी व्यवहार न
होता था।

यद्यपि पाली प्राकृत वर्णमालाओं में संयुक्त स्वर एक भी न
रह गया था, तो भी व्यंजनों के लोप के कारण उच्चारण की दृ
से प्राकृत शब्दों में निकट आने वाले स्वरों की संख्या बहुत अधि
बढ़ गई थी। उदाहरण के लिए जब सं० *जानाति, एति, हितं, प्रा*
लता तथा *शतं* का उच्चारण महाराष्ट्री प्राकृत में क्रम से *ज*
एइ, हिअं, पाउअं, लआ तथा *सअं* हो गया था, तो अनेक स्वर-समूह
का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। इस दृष्टि से प्राकृत भाषाओं
स्वर-समूहों का व्यवहार वैदिक तथा संस्कृत भाषाओं की अपेक्षा
कहीं अधिक था।

प्राकृत तथा अपभ्रंशों से विकसित होने के कारण हिंदी आदि
आधुनिक आर्यभाषाओं में भी संयुक्त स्वरों का व्यवहार संस्कृत की
अपेक्षा अधिक पाया जाता है। साहित्यिक हिंदी तथा हिंदी की
बोलियों में व्यवहृत संयुक्त स्वरों की सूची उदाहरण सहित पिछले
अध्याय में दी जा चुकी है। हिंदी संयुक्त स्वरों का इतिहास प्राक
अपभ्रंश तथा प्राकृत भाषाओं तक ही जाता है। मूलस्वरों के समान
इनका इतिहास साधारणतया प्रा० भा० आ० तक नहीं पहुँचता।
अपभ्रंश तथा प्राकृत के संयुक्त स्वरों का पूर्ण विवेचन सुलभ न
होने के कारण हिंदी संयुक्त स्वरों का इतिहास[1] भी अभी ठीक-ठीक
नहीं दिया जा सकता। ऐसी स्थिति में पिछले अध्याय में समस्त

---

[1] हा., हि. ग्रै., § ९८-९८
बगाली संयुक्त स्वरों के लिए दे०, चै., बे, लै., § २०४-२११

संयुक्त स्वरों तथा स्वर-समूहों की सूची देकर ही संतोष करना पड़ा है।

यदि दो ह्रस्व स्वरों के समूह को सच्चा संयुक्त स्वर माना जाय तो साहित्यिक हिंदी में ऐ (अए) औ (अओ) ही संयुक्त स्वर रह जाते हैं। इनका इतिहास नीचे दिया जाता है।

९८. हि० ऐ (अए) :

सं० ऐ (अई) :

बैर	वैर
बैराग	वैराग्य
चैत	चैत्र

सं० अ :

पैसठ	पंचषष्टि
रैन	रजनी

सं० अय :

नैन	(बो०)	नयन
समै	(बो०)	समय
निहिचै	(बो०)	निश्चय

नोट—ऐसा, कैसा आदि शब्दों में प्रा० एरिसो (सं० ईदृश), प्रा० केरिसो (सं० कीदृश) आदि के र् के लोप होने से इ के संयोग से ए या ऐ हो गया है।

९९. हि० औ (अओ)

बी०, व० दे०, § १५, ४२

सं० श्र:

लौंग	*लवंग*
ब्यौसाय (औ)	*व्यवसाय*

नोट[1]—(१) शब्द के मध्य में आने वाले *प* या *म* के *व* परिवर्तित हो जाने से भी कभी-कभी औ की उत्पत्ति हो जाती जैसे :—

सौत	*सपत्नी*
कौड़ी	*कपर्द*
बौना	*वामन*
चौंरी	*चामर*

(२) प्राकृत में मध्य *त्* के लोप हो जाने से *अ* और *उ* संयोग से भी कुछ शब्दों में औ आया है, जैसे :—

चौथा	*चतुर्थ*
चौदह	*चतुर्दश*

इ. स्वर-संबंधी विशेष परिवर्तन

१००. ऊपर दिए हुए स्वरों के इतिहास के अतिरिक्त स्वरों के संबंध में कुछ अन्य विशेष परिवर्तन भी ध्यान देने योग्य हैं। इनमें स्वरों का लोप, आगम तथा विपर्यय मुख्य हैं।

क. स्वर-लोप

बहुत से ऐसे हिंदी शब्दों के उदाहरण मिलते हैं, जिनके संस्कृत रूपों में आदि, मध्य या अंत्य स्वर वर्तमान था, किंतु बाद को उनका

---

[1] बी., क. ग्रै., § ४२, ३६

दिखलाया	*दिख़्लाया*
समझना	*समझ़्ना*
बलहीन	*बल़्हीन*

अंत्यस्वर-लोप

अ: ऊपर बतलाया जा चुका है कि आधुनिक साहित्यिक हि
में अंत्य अ का लोप अत्यंत साधारण परिवर्तन है। इस का
अधिकांश अकरांत शब्द व्यंजनांत हो गए हैं। लिखने में य
परिवर्तन अभी नहीं दिखाया जाता है, जैसे —

लिखित रूप	उच्चरित रूप
चल	*चल्*
घर	*घर्*
सब	*सब्*
परिवर्तन	*परिवर्तन्*
साधारण	*साधारण्*
केवल	*केवल्*
तत्सम	*तत्सम्*

इस नियम के कई अपवाद[1] भी हैं। अंत्य अ के पहले यदि संयुक्त व्यंजन हो तो अ का उच्चारण होता है, जैसे *कर्तव्य, धर्म, दीर्घ, आर्य, संबंध* आदि। यदि अंत्य अ के पहले इ, ई, या उ के आगे आने वाला य हो तो भी अंत्य अ का उच्चारण होता है, जैसे— *प्रिय, सीय, राजसूय* इत्यादि।

शब्दांश अथवा शब्द के अंत में आने वाले अ का लोप आधुनि
है। हिंदी की बोलियों में अभी यह ढंग प्रचलित नहीं हुआ है। पुरा

---

[1] हि. व्या., § १८

हिंदी काव्य-ग्रंथों में भी अंत्य अ का उच्चारण किया जाता है।

अन्य अंत्य स्वरों के लोप के उदाहरण भी बराबर पाए जाते हैं, जैसे:—

आ :

नींद्	निद्रा
दूब्	दूर्वा
बात्	वार्ता
दाख्	द्राक्षा
परख्	परीक्षा
जीभ्	जिह्वा

इ :

पाकड़्	पर्कटि
बिपत् (बो०)	विपत्ति
आग्	अग्नि

ई :

गाभिन्	गर्भिणी
बहिन्	भगिनी

उ :

बांह्	बाहु

ए: संस्कृत सप्तमी के रूपों से विकसित हिंदी शब्दों में ए के लोप के उदाहरण मिलते हैं, जैसे:—

पास	पार्श्वे
निकट	निकटे
संग	संगे

ख. स्वरागम

१०१. हिंदी के कुछ शब्दों में नए स्वरों का आगम हो जाता है, चाहे तत्सम रूप में उस जगह पर कोई भी स्वर न हो।

आदि-स्वरागम

तत्सम शब्द में आरंभ में ही स् के साथ संयुक्त व्यंजन होने उच्चारण की सुविधा के लिए आदि में कोई स्वर बढ़ा लिया जा है। साहित्यिक हिंदी में इस तरह के उदाहरण बहुत कम मिलते किंतु बोलियों में आदि-स्वरागम साधारण बात है, जैसे:—

इ :	*इस्त्री*	*स्त्री*
अ :	*अस्नान*	*स्नान*
	अस्तुति	*स्तुति*

मध्य-स्वरागम

शब्द के मध्य में भी स्वरागम प्राय: तब पाया जाता है जब उच्चारण की सुविधा के लिए संयुक्त व्यंजनों को तोड़ने की आवश्यकता होती है। यह प्रवृत्ति भी बोलियों में विशेष पाई जाती है, जैसे:—

अ :	*किशन्*	*कृष्ण*
	गरब्	*गर्व*
	चंदरमा	*चंद्रमा*
	जनम्	*जन्म*
इ :	*तिरिया*	*स्त्री*
	गिरहन्	*ग्रहण*
	गिलानि	*ग्लानि*
उ :	*सुमरन्*	*स्मरण*

ग. स्वर-विपर्यय

१०२. कभी-कभी ऐसा पाया जाता है कि स्वर का स्थान बदल जाता है, या दो स्वरों में कदाचित् उच्चारण की सुविधा के लिए स्थान परिवर्तन हो जाता है, जैसे :—

लूका	*उल्का*
रेंडी	*एरंड*
उंगली	*अंगुली*
इमली	*अम्लिका*
बूंद	*विंदु*
ऊख	*इक्षु*
मूछ	*श्मश्रु*

कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनमे एक स्वर दूसरे को प्रभावित कर उसे या तो परिवर्तित कर देता है या दोनों मिलकर तीसरा रूप धारण कर लेते हैं :—

सेंध	*सन्धि*
पोहे (बो०)	*पशु*

ई. व्यंजन-परिवर्तन-संबंधी कुछ साधारण नियम

१०३. बीम्स[1] के आधार पर व्यंजन-परिवर्तनों के संबंध में कुछ साधारण नियम संक्षेप में नीचे दिए जाते हैं :—

---

[1] बी., क., ग्रै., भा० १, अ० ३, ४

क. असंयुक्त व्यंजन

आदि-व्यंजन

आदि असंयुक्त व्यंजन में प्रायः कोई भी परिवर्तन नहीं हो
यह प्रवृत्ति प्रायः समस्त भारत-यूरोपीय कुल की भाषाओं में
न किसी रूप में पाई जाती है। हिंदी में इसके अनेक उदा
मिलते हैं :—

कोइल	कोकिल
नंगा	नग्न
रोना	रोदन
हाथ	हस्त

शब्द के अंदर होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव कभी
आदि-व्यंजन पर आकर पड़ जाता है, ऐसी अवस्था में
व्यंजन में भी परिवर्तन हो जाता है। नीचे के उदाहरणों में
ऊष्म ध्वनियों के प्रभाव के कारण आदि-व्यंजन अल्पप्रा
महाप्राण हो गया है :—

भाप	वाष्प
घर	गृह
धी (बो०)	दुहितृ

कुछ उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनमें संस्कृत दंत्य-व्यंजन
मूर्द्धन्य में परिवर्तित हो जाता है —

डसना	√दंश्
डाह	√दह्
डोला	√दुल्

मध्य-व्यंजन

शब्दों के मध्य में आने वाले व्यंजनों में सब से अधिक प
होते हैं, यद्यपि ऐसे भी अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें

व्यंजन में कोई भी परिवर्तन नहीं होता या उसका लोप हो जाता है। इस संबंध में कुछ प्रवृत्तियाँ अत्यंत रोचक हैं :—

(१) अघोष अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन के अपने वर्ग के सघोष अल्पप्राण व्यंजन में परिवर्तित हो जाने के बहुत उदाहरण मिलते हैं—

साग	शाक
कुंजी	कुंचिक
कीड़ा	कीट—
सवा	सपादिक

(२) प् के संबंध में ऐसे उदाहरण अधिक मिलते हैं जिनमें प् केवल व् में परिवर्तित होकर नहीं रुक जाता बल्कि स्पर्श ब् अथवा व् अंतस्थ व् में परिवर्तित होकर अंत में उ का रूप धारण कर लेता है। यह मूलस्वर उ अपने गुणरूप ओ अथवा वृद्धिरूप औ में परिवर्तित हो जाता है—

सोना	स्वपनं
बोना	वपनं
कौड़ी	कपर्द
सौत	सपत्नी

इसी ढंग का परिवर्तन म् के संबंध में मिलता है—

गौना	गमनं
बौना	वामन
चौरी	चामर

(३) महाप्राण स्पर्श व्यंजनों के संबंध में एक परिवर्तन बहुत साधारण है। ऐसे व्यंजनों में एक अंश वर्गीय-स्पर्श का रहता है तथा दूसरा अंश हकार का। अक्सर यह देखा जाता है कि महाप्राण का वर्गीय-अंश लुप्त हो जाता है और केवल हकार शेष रह जाता है—

मेह	मेघ
कहना	कथन
बहरा	बधिर
अहीर	आभीर

घ्,भ्,द्,द् तथा फ् के संबंध में यह परिवर्तन कम मिलता है

(४) साधारणतया ऊष्म ध्वनियों में यह परिवर्तन नहीं होता किंतु कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनमें संस्कृत ऊष्म भी ह् में परिवर्तित हो जाते हैं। यह प्रवृत्ति हिंदी की अपेक्षा सिंधी और पंजाबी में विशेष पाई जाती है—

बारह	द्वादश
केहरी	केसरी
इकहत्तर	एकसप्तति

(५) मध्य म् का एक विशेष परिवर्तन अत्यंत रोचक है। ओष्ठ्य अनुनासिक है, अतः कभी-कभी यह देखा जाता है कि इसके ये दोनों अंश पृथक् हो जाते हैं। अनुनासिक अंश पिछले स्वर को अनुनासिक कर देता है और ओष्ठ्य अंश व हो जाता है—

आँवला	आमलक
गाँव	ग्राम
साँवला	श्यामल
कुँवर	कुमार

(६) मध्य ण् प्रायः न् में परिवर्तित हो जाता है—

घिन	घृणा
गिनना	गणन

सुनना	श्रवण
पन्डित	पण्डित

(७) मध्य व्यंजन का लोप होना प्राकृत मे साधारण नियम था, हिंदी में भी इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं—

कोइल	कोकिल
सुनार	स्वर्णकार
नेवला	नकुल

इन परिवर्तनों के संबंध में बीम्स[1] ने कुछ कारण दिए हैं जो रोचक हैं, किंतु ये निश्चित नियम नहीं माने जा सकते।

अंत्य-व्यंजन

साधारणतया हिंदी में व्यंजनांत शब्दों की संख्या बहुत कम है। यह बतलाया जा चुका है कि आधुनिक काल में अंत्य अ के उच्चारण का लोप हो जाने के कारण हिंदी के बहुत से शब्द व्यंजनांत हो गए हैं। आधुनिक परिवर्तन होने के कारण इसका अंत्य व्यंजन पर अभी विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है।

कुछ परिवर्तन बोलियों में विशेप रूप से पाए जाते हैं। इनमें से मुख्य-मुख्य नीचे दिए जाते हैं :—

य् > ज्	जोत	यौत्र
	काज	कार्य
	जमुना	यमुना
ल् > र्	केरा	केला
	महिरारू	महिला

[1] बी., क. ग्रै., § ५४, ५५

	थरिया	स्थाली
व् > ब्	सब	सर्व
	बिरिया	वेला
श् > स्	बस	वश
	सरीर	शरीर
ष् > ख्	भाखा	भाषा
	हरख	हर्ष
	मेख (मीनमेख)	मेष (मीनमेष)

र्, ह्, और स् में परिवर्त्तन बहुत कम होते हैं।

ख. संयुक्त व्यंजन

१०४. संस्कृत शब्दों में आदि अथवा मध्य में आने वाले सं
व्यंजनों में हिंदी में प्रायः एक ही व्यंजन रह जाता है। प्रा
भाषाओं में प्रायः एक व्यंजन दूसरे का रूप ग्रहण कर लेता है
इस संबंध में मुख्य-मुख्य प्रवृत्तियां[1] नीचे दी जाती हैं —

[1]बीम्स ने (क. ग्रै., भा० १, अ० ४) संयुक्त व्यंजनों में ध्वनि-परिवर्तन के इति की दृष्टि से व्यंजनों के दो विभाग किए हैं—१. बली व्यंजन अर्थात् पंचवर्गों के प्र चार स्पर्श व्यंजन और २. बलहीन व्यंजन अर्थात् पांच स्पर्श अनुनासिक, अंतस्थ और ऊष्म। इस दृष्टि से संयुक्त व्यंजनों के तीन भेद हो सकते हैं—१. बली संयुक्त व्यंजन, जैसे प्त्, ग्ध्, ब्ज्। २. बलहीन संयुक्त व्यंजन, जैसे श्र्, र्य्, ल्व्। ३. मिश्र संयुक्त व्यंजन, जैसे, त्न, ध्य्, द्र्। इन तीनों प्रकार के संयुक्त व्यंजनों के ध्वनि-परिवर्तन संबंधी नियम बीम्स ने नीचे लिख दिये हैं और ये साधारणतया ठीक उतरते हैं:—

१. बली संयुक्त व्यंजन में हिंदी में पहले व्यंजन का प्रायः लोप हो जाता है और पूर्व स्वर दीर्घ कर दिया जाता है।

(१) स्पर्श + स्पर्श: ऐसी परिस्थिति में हिंदी में प्राय: पहले व्यंजन का लोप हो जाता है, साथ ही संयुक्त व्यंजन का पूर्वस्वर दीर्घ हो जाता है —

मूंग	मुद्ग
दूध	दुग्ध
सात	सप्त

रूप-परिवर्तन के भी कुछ उदाहरण हिंदी में मिल जाते हैं—

सत्तर	सप्तति
सत्रह	सप्तदश

(२) स्पर्श + अनुनासिक : ऐसी परिस्थिति में यदि स्पर्श पहले आवे तो अनुनासिक व्यंजन का प्राय. लोप हो जाता है—

आग	अग्नि
तीखा	तीक्ष्ण ?

ज्ञ (ज्+ञ्) के संयुक्त रूप में कई प्रकार के परिवर्तन पाए जाते हैं—

आग्या	आज्ञा
जनेऊ	यज्ञोपवीत
जग्य, जाग (पो०)	यज्ञ
रानी	राज्ञी

२ व्यञ्जन संयुक्त व्यंजनों में प्राय. अधिक निर्बल व्यंजन का लोप हो जाता है, जैसे—स्पर्श-अनुनासिक और अन्तस्थ में अंतस्थ अधिक निर्बल होता है।

३ भिन्न व्यंजनों में प्राय व्यञ्जन व्यंजन का लोप हो जाता है।

ऊपर दिए हुए उदाहरणों को, इस दृष्टि से भिन्न-भिन्न वर्गों में विभक्त करके, देखना बड़ा रोचक होगा।

यदि अनुनासिक व्यंजन पहले हो तो उसका लोप तो हो जाता है किंतु पूर्वस्वर अनुनासिक हो जाता है —

जांघ	*जङ्घा*
कांटा	*कण्टक*
चांद	*चंद्र*
कांपना	*कंपन*

(३) स्पर्श + अंतस्थ (य्, र्, ल्, व्) : ऐसी परिस्थिति स्पर्श चाहे पहले हो या बाद को, अंतस्थ का प्राय: लोप हो जाता है-

य् :	*जोग (बो०)*	*योग्य*
	चूना	*च्यु*
र् :	*बाघ*	*व्याघ्र*
	पनाली	*प्रणाली*
	दुबला	*दुर्बल*
व् :	*पका*	*पक्व*
	तुरत	*त्वरित*

दंत्य स्पर्श व्यंजनों का संयोग जब किसी अंतस्थ से होता है तो एक असाधारण परिवर्तन मिलता है। अंतस्थ लुप्त होने के साथ स्पर्श व्यंजनों को अपने स्थान के स्पर्श व्यंजन में परिवर्तित कर देता है अर्थात् दंत्य स्पर्श य् के संयोग से तालव्य स्पर्श (चवर्ग), र् के संयोग से मूर्द्धन्य स्पर्श (टवर्ग), तथा व् के संयोग से ओष्ठ्य स्पर्श (पवर्ग) में परिवर्तित हो जाता है—

य् :	*सच*	*सत्य*
	नाच	*नृत्य*

आज	अद्य
बांझ	वन्ध्या
सांझ (बो०)	सन्ध्या
बटेर	वर्तिक
र् : काटना	कर्तन
कौड़ी	कपर्द
गाड़ी	गंत्री
ध् : बुढ़ापा	वृद्धत्व
बारह	द्वादश

(४) स्पर्श + ऊष्म (श्, ष्, स्, ह्): ऐसी परिस्थिति में, स्पर्श पहले हो या बाद को, ऊष्म का प्रायः लोप हो जाता है, साथ दि स्पर्श व्यंजन अल्पप्राण हो तो महाप्राण हो जाता है—

श् : पछाँव (बो०)	पश्चिम
ष् : आँख	अक्षि
खेत	क्षेत्र
काठ	काष्ठ
पीठ	पृष्ठ
स् : थन	स्तन
हाथ	हस्त
ह : जीभ	जिह्वा
गुझिया	गुह्य

(५) अनुनासिक + अनुनासिक : ऐसी परिस्थिति बहुत कम ई जाती है। न् और म् का संयोग कभी-कभी मिलता है। किंतु से हालत में दोनों अनुनासिक रह जाते हैं—

जनम (बो०)	*जन्म*

(६) अनुनासिक+अंतस्थ : ऐसी परिस्थिति में अंतस्थ
लोप हो जाता है—

अरना (भैंसा)	*अरण्य*
सूना	*शून्य*
ऊन	*ऊर्ण*
कान	*कर्ण*
काम	*कर्म*

(७) अनुनासिक+ऊष्म : ऐसी परिस्थिति में कई प्रका
परिवर्तन पाए जाते हैं। कभी अनुनासिक का लोप हो जाता
कभी ऊष्म का, कभी दोनों किसी न किसी रूप में ठहर जाते
तथा कभी-कभी ऊष्म ह् में परिवर्तित हो जाता है—

रास	*रश्मि*
मसान	*श्मशान*
सनेह, नेह	*स्नेह*
नहान	*स्नान*
कान्ह	*कृष्ण*

(८) अंतस्थ+अंतस्थ : ऐसी परिस्थिति के लिए भी को
निश्चित नियम नहीं है। कभी एक अंतस्थ का लोप हो जाता
और कभी दोनों अंतस्थ किसी न किसी रूप में रह जाते हैं—

मोल	*मूल्य*
सब	*सर्व*
चोरी	*चौर्य*

सूरज	(बो०)	सूर्य
परब	(बो०)	पर्व
बरत	(बो०)	व्रत

(९) अंतस्थ + ऊष्म: ऐसी परिस्थिति के लिए भी कोई निश्चित नियम नहीं है। कभी अंतस्थ रह जाता है, कभी ऊष्म, और कभी दोनों रह जाते हैं—

पास	पार्श्व
साला	श्याला
ससुर	श्वशुर
आसरा	आश्रय

उ. हिंदी व्यंजनों का इतिहास[1]

अब हिंदी के एक-एक व्यंजन को लेकर यह दिखलाने का यत्न किया जायगा कि यह प्रायः किन-किन संस्कृत ध्वनियों का परिवर्तित रूप हो सकता है।

क. स्पर्श व्यंजन

१. कंठ्य [क्, ख्, ग्, घ्]

१०५. हि० क्:

---

[1] इस अंश के क्रम तथा उदाहरणों में 'चै., वे. लैं., § २५०-३०५ से विशेष सहायता ली गई है। गुजराती के संबंध में इस प्रकार के शास्त्रीय विवेचन के लिए दे., टर्नर, गुजराती फोनोलोजी ज. रा. ए. सो., १९२१. पृ० ३२९, ५०५

सं० च्	: कपूर	कर्पूर
	काम	कर्म
सं० क्क	: चिकना	चिक्कण
	कूकुर (बो०)	कुक्कुर
सं० क्य्	: मानिक	माणिक्य
सं० क्ष्	: कोस	क्रोश
	चाक	चक्र
सं० क्व्	: पका	पक्व
सं० ङ्क्	: आंक	अंक
सं० र्क्	: शक्कर	शर्करा
	पाकड़	पर्कटी
सं० स्क्	: कंधा	स्कंध

क् ध्वनि कुछ देशी शब्दों में भी मिलती है जैसे मक्की, हाक आदि।

बैठक, मलक आदि शब्दों में प्रत्यय के रूप में आने वाली ध्वनि की व्युत्पत्ति के लिए अध्याय ५ देखिए।

उच्चारण में शब्द के मध्य तथा अंत में आने वाले त् के उच्चारण कभी-कभी क के समान हो जाता है, जैसे मूत, मतना आदि उच्चारण में प्रायः मूक, मकना हो जाते हैं। इस तरह के परिवर्तनों पर साधारणतया ध्यान नहीं दिया जाता।

विदेशी भाषाओं की क् ध्वनि हिंदी विदेशी शब्दों में बराबर पाई जाती है, जैसे अं० कोट, सिकार, फा० बारगुजार अ० मकान।

[1]बै. बे. सै., भाग १. पृ० ४५७

फ़ारसी, अरबी क़् ध्वनि पुरानी हिंदी तथा आधुनिक बोलियों में बराबर क् में परिवर्तित हो जाती है, जैसे कुलफी (फ़ा०), क़ीमत (अ०), नुकसान (अ०), संदूक (अ०)।

१०६. हि० ख्:

सं० क्ष् :	खीर	क्षीर
	खत्री	क्षत्रिय
	आँख	अक्षि
	लाख	लक्ष
सं० क्ष्ण् :	तीखा	तीक्ष्ण
सं० ख् :	खाट	खट्वा
	खजूर	खर्जूर
	मूरख (बो०)	मूर्ख
सं० ख् :	दुख	दुःख
सं० ख्य् :	बखानना	व्याख्यान
सं० ष्क् :	पोखर	पुष्कर
	सूखा	शुष्क

हिंदी बोलियों में सं० ष् के स्थान पर ख् बोला जाता है—

दोख	दोष
बरखा	बर्षा
मीनमेख	मीनमेष

लिखने में ख और र व के रूपों में संदेह होने के कारण पुरानी हस्तलिखित पोथियों में ख के लिए ष लिखने लगे थे, जैसे षषरि, मुष

आदि। हिंदी की दृष्टि से ष् चिह्न मूर्धन्य ष् के लिए ... समझा गया, क्योंकि इसका शुद्ध उच्चारण लोग भूल ... उच्चारण की दृष्टि से हिंदी-भाषा-भाषी ष् और ख् को ... समझते थे। इस तरह जब ष् चिह्न ख् तथा ष् दोनों के लिए प्रयुक्त होने लगा तो संस्कृत ष् का उच्चारण भी अधिकांश ख् के समान किया जाने लगा।

हिंदी बोलियों में फा० अ० ख़् का उच्चारण ख् के समान होता है—

खोजा	फ़ा० ख़्वाजह
खरचा	फ़ा० खर्च
खराब	अ० ख़राब

अंतिम उदाहरण में अ० क़् के लिए साहित्यिक हिंदी में प्रायः ख़् या ख् हो जाता है।

१०७. हि० ग्:

सं० क्	: गेंद	कंदुक (गेन्दुक)
	ग्यारह	एकादश
	मगर	मकर
	पगार	प्रकार
	भगत (बो०)	भक्त
	साग	शाक
सं० ग्	: गाँठ	ग्रन्थि
	गेरू	गैरिक
	गोरा	गौर
सं० ग्न्	: आग	अग्नि
	लगन	लग्न

नंगा	नग्न+क :
सं० ग्य् : जोग (बो०)	योग, योग्य
सं० ग्र् : गाँव	ग्राम
आगे	अग्र
अगहन	अग्रहायण
सं० ङ्ग् : लौंग	लवङ्ग
भांग	भङ्ग
सींग	शृङ्ग
सं० द्ग् : मूँग	मुद्ग
मुगरी	मुद्गर
सं० ल्ग् : फागुन	फाल्गुन
बाग	वल्गा

विदेशी ग़् ध्वनि हिंदी बोलियों में ग् हो जाती है—

गरीब	ग़रीब
बाग	बाग़

१०८. हि० घ् :

सं० घ् : घड़ा	घट
घाम	घर्म
सं० घ्र : बाघ	व्याघ्र

२. मूर्धन्य[1] [ट् ठ् ड् ढ्]

१०९. हि० ट्।

सं० ट् : टकसाल	टङ्कशाला
सं० ट् : लंगोट	लिंगपट
हाट	हट्ट
सं० ण्ट् : काँटा	कण्टक
बाँटना	√वण्ट्
सं० त्र् : टूटना	√त्रुट्
सं० र्त् : काटना	कर्तन
कटार	कर्तरिका
केवट	कैवर्त
सं० ष्ट् : ईंट	इष्टकः
सं० ष्ट्र् : ऊँट	उष्ट्र
सं० ष्ठ् : कोट (किला)	कोष्ठ
पटा	पट्टकः
कटहल	काष्ठफल

---

[1]हिंदी मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजनों का उच्चारण प्रा० भा० आ० की इन ध्वनियों की अपेक्षा बहुत आगे को हट आया है।

मूर्द्धन्य ध्वनियाँ भारतीय आर्य ध्वनियाँ हैं, या किसी अनार्यभाषा के प्रभाव से मूल आर्यभाषा में आ गई, यह प्रश्न हमारे क्षेत्र के बाहर है। भारतीय आर्यभाषाओं में ये आदि काल से मौजूद रही हैं। इस विषय पर दे., चै., बे. लैं., § २६६; वी. क. ग्रै., § ५१

११०. हि० ठ्:

सं० ण्ठ् : सोंठ	शुण्ठि
सं० न्थ् : गाँठ	ग्रन्थि
सं० र्थ् : अहुठ (३½) (बो०)	अर्द्धचतुर्थ
सं० ष्ट् : मीठा	मिष्ट
मूठ	मुष्टि
ढीठ	धृष्ट
डीठि (बो०)	दृष्टि
लाठी	यष्टि
साठ	षष्टि
सं० ष्ठ् : कोठा	कोष्ठकः
जेठ	ज्येष्ठ
निठुर	निष्ठुर
सं० स्थ् : पठाना (बो०)	प्रस्थापयति

१११. हि० ड्:

सं० ड् : डाइन	डाकिनी
सं० ण्ड् : भंडार	भाण्डागार
सं० द् : डोली	दोलिका
डोरा	दोरक
डाँड	दण्ड
डीवट	दीपवर्तिका

सं० त्व् : तू	त्वया
तुरंत	त्वरित, त्वर्रत
सं० न्त् : दाँत	दन्त
संताल (जाति)	सामन्तपाल
सं० न्त्र् : आँत	अन्त्र
सं० प्त् : नाती	नप्तृ
विनती	विज्ञप्ति
सतरह	सप्तदश
तत्ता (बो०)	तप्त
सं० र्त् : कातिक	कार्तिक
बत्ती	वर्तिका

११४. हि० थ् :

सं० त्थ् : कैथ	कपित्थ
कुलथी (दाल)	कुलत्थ
सं० र्थ् : साथ	सार्थ
चौथा	चतुर्थ
सं० स्त् : माथा	मस्तक
हाथ	हस्त
पाथर (बो०)	प्रस्तर

११५. हि० द् :

सं० द् : दाँत	दंत

दूध   दुग्ध

दाहिना   दक्षिण

सं० द्र : नींद   निद्रा

भादों   भाद्रपद

हल्दी   हरिद्रा

सं० द्व् : दो   द्वौ

दूना   द्विगुण

दीप (जै० जम्बू दीप)   द्वीप

सं० न्द् : सेंदुर   सिन्दूर

ननद   ननान्द

सं० न्द्र : चाँद   चन्द्र

सं० र्द् : चौदह   चतुर्दश

११६. हिं० ध् :

सं० ग्ध : दूध   दुग्ध

सं० द्ध् : ऊधो   उद्धव

उधार   उद्धार

सं० द्धृ : गीध (बो०)   गृद्ध

सं० ध् : धान   धान्य

धुआँ   धूम

धरना   धरति

सं० न्ध् : अँधेरा   अन्धकार

आँधी   अन्धिका

बाँधना	√बन्ध्
सं० द्ध् : आधा	अर्द्ध
गधा (बो०)	गर्दभ

४. ओष्ठ्य [प्, फ्, ब्, भ्]

११७. हिं० प् :

सं० त्प् : उपज—	उत्पद्—
सं० त्म् : अपना	आत्मनः
सं० र्ण् : पान	पर्ण
पौन	पादोन
पीपल	पिप्पल
सं० प्य् : रुपया	रूप्यकः
सं० प्र् : पिया (बो)	प्रिय
पावस	प्रावृष
पहर	प्रहर
सं० म्प् : काँपना	√कम्प्
सं० र्प : कपड़ा	कर्पट
कपास	कर्पास
साँप	सर्प
सं० ष्प् : भाप	बाष्प
सं० स्प् : परस	स्पर्श

११८. हिं० फ् :

सं० फ् :	फलारी (मिठाई)	फलाहार
	फूल	फुल्ल
सं० स्फ् :	फोड़ा	स्फोटक
	फटकरी	स्फटकारिका
	फुर्ती	स्फूर्ति

११९. हिं० ब् :

सं० ड्व् :	छब्बीस	षड्विंश
सं० द्व :	बारह	द्वादश
	बाईस	द्वाविंशति
सं० प् :	बैठना	√उपविष्ट
सं० ब् :	बाँझ	वन्ध्या
	बाँह	बाहु
	बकरा	बर्कर
	बाँधना	√बन्ध्
सं० ब्र :	बाम्हन (बो०)	ब्राह्मण
सं० म्ब् :	नीबू	निम्बूक
सं० म्र :	ताँबा	ताम्र
	अँबिया (बो०)	आम्र
सं० र्ब :	दुबला	दुर्बल
सं० र्ण :	बखानना	वर्ण

सब	सर्व
सं० व् : बाँका	वक्र
बावला	वातुला
बहू	वधू
बूँद	बिंदु
सं० व्य् : बखानना (बो०)	व्याख्यान
बाघ	व्याघ्र

१२०. हिं० भ्:

सं० ब् : भूख	बुभुक्षा
भाप	बाष्प
सं० भ् : भात	भक्त
भीख	भिक्षा
सं० भ्य : भीतर	अभ्यन्तर
भीजना	√अभ्यंज्
सं० भ्र् : भौंरा	भ्रमर
भाई	भ्रातृ
भावज	भ्रातृजाया
सं० र्भ् : गाभिन	गर्भिणी
सं० व् : भेष	वेष
सं० ह्,व् : जीभ	जिह्वा

ख : स्पर्श-संघर्षी [च्, छ्, ज्, झ्]

१२१. प्रा० भा० आ० में च, छ, ज, झ तालव्य स्पर्श व्यंजन थे। उन दिनों च् की ध्वनि कुछ-कुछ क्य के सदृश रही होगी। म० भा० आ० के प्रारंभिक काल में ही ये तालव्य स्पर्श ध्वनियाँ स्पर्श-संघर्षी हो गई थीं। यह परिवर्तन कदाचित् मगध आदि पूर्वी देशों की भाषाओं से आरंभ हुआ था। मध्यदेश और पश्चिमी आर्यावर्त की भाषाओं मे कुछ दिनों तक स्पर्श उच्चारण चलता रहा। म० भा० आ० के अंतिम समय तक प्रायः समस्त भारतीय आर्यभाषाओं में इन स्पर्श ध्वनियों का स्पर्श-संघर्षी उच्चारण फैल गया। आ० भा० आ० में अब चवर्गीय ध्वनियाँ स्पर्श न होकर स्पर्श-संघर्षी हो गई हैं। आसामी, मराठी, गुजराती आदि कुछ आधुनिक बोलियों में तो इनका झुकाव दंत्य ध्वनियों की ओर हो गया है। हिं० स्पर्श-संघर्षी ध्वनियों का इतिहास नीचे दिया जाता है।

१२२. हि० च् :

सं० च् : चाँद	चंद्र
चाक	चक्र
काँच	काच
सं० ञ्च् : पाँच	पञ्च
आँचल	अञ्चल
सं० त्य् : नाच	नृत्य
मीचु (बो०)	मृत्यु
साँच (बो०)	सत्य
सं० र्च् : कूची	कूर्चिका

¹बे, बे कै, ११२, ई २५५

१२३. हि० छ्:

सं० क्ष् : छुरा	क्षुरक:
छत्री (बो०)	क्षत्रिय
रीछ	ऋक्ष
छिन (बो०)	क्षण
सं० च्छ : पूछना	√पृच्छ्
सं० छ् : छाता	छत्र
छेरी (बो०)	छगल
छाँह	छाया

राम	राम
बनजारा	वाणिज्य+कार
सं० ज्य् : उजला	उज्ज्वल
सं० ञ्ज् : मूंज	मुञ्ज
पिंजड़ा	पञ्जर
सं० द्य : अनाज	अनाद्य
जुआ	द्यूत
आज	अद्य
बिजली	विद्युत्-
सं० य् : जौ, जवा	यवकः
जाना	√या
जाता	यंत्र
सं० य्य् : सेज	शय्या
सं० र्ज् : खुजली	खर्जुर
भोजपत्र	भूर्जपत्रं
माँजना	मार्जनं
सं० र्य् : आजी	आर्यिका
काज (बो०)	कार्य

१२५. हि० झ् :

सं० ध्य् : ओझा	उपाध्याय
समझना	संबुध्यति
बुझना	बुध्य

जूझना (बो०)	युध्यति
सं० न्ध् : साँझ	सन्ध्या
बाँझ	बन्ध्या

ग. अनुनासिक [ङ, ञ, ण, न, न्ह, म, म्ह]

१२६. संस्कृत में ङ ध्वनि कंठ्य व्यंजनों के पहले केवल मात्र शब्द के मध्य में आती थी। हिंदी में भी इसका यही प्रयोग मिलता है, किन्तु केवल ह्रस्व के बाद।

हि० ङ्<सं ङ्

अङ्गुल	अङ्गुलि
कङ्गाल	कङ्काल
जङ्गल	जङ्गल

कुछ देशी शब्दों में भी यह ध्वनि पाई जाती है, जैसे बङ्गू, घङ्गा।

विदेशी शब्दों में भी ऊपर दी हुई परिस्थिति में ध्वनि पाई जाती है, जैसे जङ्ग, तङ्ग।

१२७. संस्कृत में ञ् ध्वनि केवल मात्र शब्द के मध्य में तालव्य व्यंजनों के पहले आती थी। तालव्य व्यंजनों के उच्चारण में स्थान-परिवर्तन होने के कारण हिंदी में ऐसे स्थलों पर अब ञ् के स्थान पर न् का उच्चारण होने लगा है। लिखने में अभी यह परिवर्तन नहीं दिखाया जाता।

लिखित रूप	उच्चरित रूप
चञ्चल	चन्चल
पञ्जा	पन्जा
कञ्ज	कन्ज

आधुनिक साहित्यिक हिंदी में ञ् का प्रयोग बिल्कुल भी नहीं मिलता किन्तु हिंदी की कुछ बोलियों में ञ् से मिलती-जुलती एक ध्वनि है किंतु यह वास्तव में य मात्र है, जैसे ब्र० नाञ् या नाँयँ (नहीं), जाञ. या जायँ (जायें), बाञें या बाँयें (बाँयें)।

१२८. प्राकृतों में ण् का प्रयोग बहुत होता था। आजकल पंजाबी में इसका व्यवहार विशेष पाया जाता है। तत्सम शब्दों में हिंदी में भी संस्कृत ण् का व्यवहार शब्द के मध्य या अंत में मिलता है, जैसे गुण, गणपति, ऋण, हरिण इत्यादि। तद्भव रूपों में हिंदी में ण् के स्थान पर बराबर न् हो जाता है, जैसे गुन, हिरन, गनेस। तत्सम शब्दों में भी मध्य हलंत ण् के स्थान पर न् का ही उच्चारण होता है, यद्यपि लिखा ण् जाता है—

लिखित रूप	उच्चरित रूप
पण्डित	पन्डित
खण्ड	खन्ड
मुण्ड	मुन्ड

१२९. हिंदी न् वास्तव में दंत्य ध्वनि नहीं रही है व वर्त्स्य ध्वनि हो गई है। न् का प्रयोग हिंदी में आदि, मध्य : अंत, सब स्थानों पर स्वतंत्रता-पूर्वक होता है। हिंदी में सं० के पाँच अनुनासिक व्यंजनों के स्थान पर दो—न् और म्— ही प्रयोग विशेष होता है। ङ केवल कुछ शब्दों के मध्य मिलता है, ण् कुछ तत्सम शब्दों में जब सस्वर हो और ञ् व्यवहार बिल्कुल भी नहीं होता। न् का इतिहास नीचे दिया है·

हि० न् :

सं० ञ् : विनती	विज्ञप्तिक
सं० ञ् : चन्चल	चञ्चल
पन्जा	पञ्चकः
कन्ज	कञ्ज

सं० ण् : कनी	कणिका
कंगन	कंकण
दुगना	द्विगुण
पन्डित	पण्डित
खन्ड	खण्ड
मुन्ड	मुण्ड
सं० ण्य् : पुन्न (बो०)	पुण्य
अरना (बो०)	अरण्य
सं० न् : नींद	निद्रा
निउला	नकुल
थन	स्तन
पानी	पानीय
सं० न्य् : धान	धान्य
सूना	शून्य
मान (आदरणीय संबंधी)	मान्य
सं० र्ण् : पान	पर्ण
कान	कर्ण

१३० हि० न्ह् :

सं० ष्ण् : कान्ह (बो०)	कृष्ण
सं० स्न् : अन्हाना (बो०)	स्नान

सं० द् : बारह	द्वादश
ग्यारह	एकादश
सं० र् : रात	रात्रि
रानी	राज्ञी
और	अपर
गहिरा	गंभीर
सं० ल् : पखारना (बो०)	प्रक्षालन
बेर	वेला

च, उत्क्षिप्त [ड़्, ढ़्][1]

१३५. वैदिक भाषा में दो स्वरों के बीच में आने वाले ड्
उच्चारण ळ् ळ्ह् होता था। पाली में भी यह विशेषता पाई
है किंतु संस्कृत में यह परिवर्तन नहीं होता था। म० भा
में किसी समय स्वर के बीच में आने वाला ड् ढ् का उ
कदाचित् ड़् ढ़् के समान होने लगा था।

धीरे-धीरे कुछ अन्य मूर्द्धन्य ध्वनियाँ भी ड़् ढ़् में परिवर्ति
गईं। ड़् ढ़् सदा शब्द के मध्य में दो स्वरों के बीच में आते
आजकल अनेक आ० भा० आ० भाषाओं में ये ध्वनियाँ पाई ज
हैं। हिंदी ड़् ढ़् का इतिहास नीचे दिया जाता है—

१३६. हि० ड़् :

सं० ट् : बाड़ी	वाटिका
कड़ाही	कटाह
घोड़ा	घोटक

---

[1] चै, बँ लैं, § ११३, § २००

बड़	वट
खड़िया	खटिका
सं० ड्य् : जाड़ा	जाड्य
सं० ण्ड : खाड़	खाण्ड
पांड़े	पण्डित
मांड़	मण्ड
मूड़	मुण्ड
सं० र्द : कौड़ी	कपर्द

१३७. हिं० ढ़् :

सं० ठ् : मढ़ी	मठिका
पीढ़ा	पीठिका
पढ़ना	पठति
सं० द्ध् : बूढ़ा .	वृद्ध
सं० ध्य् : कुढ़ना	क्रुध्यति
सं० र्द्ध् : साढ़े	सार्द्ध
बढ़ई	वर्द्धकिन
सं० र्ध : बढ़ना	वर्धते

है। उच्चारण की दृष्टि से हिंदी में मूर्द्धन्य ष् अब नहीं है

१४१. हि० श :

सं० श् : पशु	पशु
विश्व	विश्व
सं० ष् : रोश	रोष
कशाय	कषाय

१४२. हि० स् :

सं० श् : सख	शंख
सलाई	शलाकिया
सास	श्वश्रू
सं० ष् : सिरस	शिरीष
कसेला	कषाय
असाढ़	आषाढ़
सं० स् : सूत	सूत्र
सुहाग	सौभाग्य
सोना	स्वर्ण

१४३. ष् केवल तत्सम शब्दों में रह गया है। हिंदी बोलियों में ष के स्थान पर बराबर ष् हो जाता है।

हि० ष् :

सं० ष् : वेषा	वेषा
षाम	षाम
ऋषि	ऋषि

सूचना—अन्य संघर्षी फ़् ज़् ख़् ग़् ध्वनियाँ केवल विदेशी शब्दों [illegible]ं पाई जाती हैं। इनका विवेचन अगले अध्याय में किया गया है।

ज. अर्द्धस्वर (य् व्)

१४४. प्रा० भा० आ० काल में य् व् शुद्ध अर्द्धस्वर इँ उँ थे। [illegible]कृत में उँ दंत्योष्ठ्य संघर्षी व् मे परिवर्तित हो गया था। साथ [illegible]ओष्ठ्य व् रूपांतर भी बहुत प्राचीन समय से मिलता है। इँ भी [illegible] भा० आ० में ही य् के सदृश हो गई थी। संस्कृत के य् और व् [illegible]दी में शब्द के आदि में प्रायः ज् और ब् हो गए तथा शब्द के [illegible]ध्य में इनका लोप हो जाता था। बाद को दो स्वरों के बीच में [illegible]ति के रूप में य् और व् का फिर विकास हुआ, जैसे सं० *एकादश*> [illegible]० *एआरह*> हि० *ग्यारह*।

१४५. हिंदी में य् का उच्चारण बहुत स्पष्ट नहीं होता। [illegible]च्चारण की दृष्टि से संयुक्तस्वर इ *अ या एअ* और अर्द्धस्वर य् [illegible]हुत मिलते-जुलते हैं। *अ* तथा इ ई या ए के बीच में आने पर य् [illegible]वनि बिल्कुल ही अस्पष्ट हो जाती है, जैसे *गये*, *गयी* आदि में। [illegible]कंतु *गया*, *आया* में य् श्रुति स्पष्ट सुनाई पड़ती है। विदेशी शब्दों [illegible]के अतिरिक्त य् ध्वनि तत्सम शब्दों में विशेष पाई जाती है।

तत्सम	तद्भव
यज्ञ	*जाग*
योधा	*जोधा*
वीर्य	*बीज*
कार्य	*काज*
[illegible]	*जमुना*

१४६. व् अर्द्धस्वर शब्द के मध्य में प्रयुक्त होता है। हिं में ए और व् में कोई भेद नहीं किया जाता है। व् का व् के उच्चारण बहुत प्राचीन है।

व् :

सं० य् : स्वामी	स्वामी
ज्वर	ज्वर
सं० म् : क्वारा	कुमार
आंवला (बो०)	आमलक
चंवर (बो०)	चमर

ऊ. व्यंजन-संबंधी कुछ विशेष परिवर्तन

क. अनुरूपता

१४७. हिंदी शब्दों में कुछ उदाहरण मिलते हैं जिनमें भिन्न स्थानीय संयुक्त व्यंजनों में से एक-दूसरे का रूप धारण कर लेते है, या उसी स्थान के व्यंजन में परिवर्तित हो जाता है —

शक्कर	शर्करा
छत्तीस	षट्त्रिंशत्
बत्ती	वर्तिका

कुछ बोलियों में, विशेषतया कनौजी में, र् का निकट व्यंजन में परिवर्तित हो जाना साधरण नियम है—

कनौ०	हि०
उद्द	उर्द
हद्दी	हलदी
मिच्चैं	मिरचें

अध्याय ३

विदेशी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन

अ. फ़ारसी-अरबी

१४९. विदेशी शब्दों के संबंध में भूमिका में सामान्य विवेचन हो चुका है। यहां इन विदेशी शब्दों के हिंदी में आने पर ध्वनि-परिवर्तन के संबंध मे विचार किया जायगा। हिंदी में सब से अधिक विदेशी शब्द फ़ारसी-अरबी के हैं। प्रायः यह भुला दि[illegible] जाता है कि इन विदेशी भाषाओं में फ़ारसी आर्यभाषा है जिस[illegible] प्राचीनतम रूप—अवस्ता की भाषा—का ऋग्वेद की भाषा से बहुत निकट का संबंध है, और अरबी भिन्न कुल की भाषा है जिसका आर्यभाषाओं से अब तक किसी प्रकार का भी संबंध स्थापित नहीं हो सका है। अरबी और फ़ारसी शब्दों में होने वाले ध्वनि-परिवर्तन को समझने के लिए अरबी और फ़ारसी की ध्वनियों के संबंध में ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है, अतः इन भाषाओं की ध्वनियों का संक्षिप्त विवेचन नीचे दिया जाता है।

क. अरबी ध्वनिसमूह

१५०. अरबी ध्वनि समूह[1] में ३२ व्यंजन, ९ मूलस्वर तथा ४ संयुक्त स्वर हैं। आधुनिक शास्त्रीय दृष्टि से ये नीचे वर्गीकृत[2] हैं —

---

[1] गैर्डनर, फ़ोनेटिक्स आव् ऐरेबिक।
[2] चै, बे, मै, § १०८

व्यंजन	द्व्योष्ठ्य	दंतोष्ठ्य	दंतमध्यस्थानीय	वर्त्स्य या दंत्य: साधारण	वर्त्स्य या दंत्य: कंठस्थानयुक्त	तालु तथा वर्त्स्य स्थानीय	तालव्य	कंठ्य	अलिजिह्व	उपालिजिह्व	स्वरयंत्रमुखी
स्पर्श	ब्			त् द्	त्_ द्_		ज्	क् ग्	क़		ʾ
अनुनासिक	म्			न्							
पार्श्विक					ल्_ म्_	ल्					
कंपनयुक्त						र्					
संघर्षी		फ़्	थ़् द़्	स़् ज़्	स्_ ज़्_	श़् झ़्			ख़ ग़	ह़ १	ह्
अर्धस्वर	व्						य				
स्वर	इन तो मूल स्वरों के अतिरिक्त अइ, अउ, आइ, और आउ ये चार मुख्य संयुक्त स्वर पाये जाते हैं।						ई ए —अ— ऐ अ	उ ओ औ आ			

सूचना—अघोष ध्वनियों के नीचे लकीर खिंची है, शेष ध्वनियाँ घोष हैं।

अरबी ध्वनिसमूह में कुछ ध्वनियाँ असाधारण हैं। त्_, द्_, स्_, ज़्_ कंठस्थानयुक्त दन्त्य ध्वनियें हैं। इनके उच्चारण में जीभ की नोक दन्त स्थान को छूती है और साथ ही जीभ का पिछला भाग

कोमल तालु की ओर उठता है। इस तरह जीभ बीच में नीचे और आगे-पीछे ऊँची हो जाती है। ल़ ध्वनि अरबी में केवल अल्ल शब्द के उच्चारण में प्रयुक्त होती है। ये समस्त ध्वनियां एक रूप से द्विस्थानीय हैं।

ह़ का उच्चारण कौवे के पीछे हल्क की नली की पिछली दीवार से जिह्वामूल के नीचे उपालिजिह्वा को छुवा कर किया जाता है इसके उच्चारण में एक विशेष प्रकार की जोरदार फुसफुसाहट की आवाज होती है। ह़ उपालिजिह्व अघोष संघर्षी ध्वनि है, और ʔ अर्थात् ऐन (अ) उपालिजिह्व घोष संघर्षी ध्वनि है।

ʔ अर्थात् हम्ज़ा-अलिफ के उच्चारण में स्वरयंत्र-मुख बिलकुल बंद होकर सहसा खुलता है। इसका उच्चारण हलके खांसने की ध्वनि से मिलता-जुलता समझना चाहिए। ʔ स्वरयंत्रमुखी अघोष स्पर्श ध्वनि है। ह़ स्वरयंत्रमुखी घोष संघर्षी ध्वनि है।

१५१. अरबी लिपि में केवल व्यंजनों के लिए लिपि-चिह्न हैं स्वरों के लिए पृथक् चिह्न नहीं हैं। दीर्घ स्वरों में से तीन तथा दो संयुक्त स्वरों के लिए व्यंजन चिह्नों में से ही तीन प्रयुक्त होते हैं—'हम्ज़ा' (ء) के विना 'अलिफ' (ا) आ के लिए 'ये' (ی) ई, अइ के लिए तथा 'वाओ' (و) ऊ, अउ के लिए। ह्रस्व स्वरों को लिपि द्वारा प्रकट करने का कोई साधन मूल अरबी में नहीं है। ३२ व्यंजन ध्वनियों को प्रकट करने के लिए भी केवल २८ चिह्न हैं, अतः नीचे लिखी सात ध्वनियाँ केवल तीन चिह्नों से प्रकट की जाती हैं—'ज़ोय' (ظ) ज़ ज़् के लिए, 'लाम' (ل) ल ल़ के लिए और 'जीम' (ج) ज़ ज् और ग् के लिए प्रयुक्त होती है।

ख. फ़ारसी ध्वनिसमूह

१५२. अरबी से प्रभावित होने के पूर्व छठी सदी ईसवी तक फ़ारसी भाषा पहलवी लिपि में लिखी जाती थी। नीचे मध्यकालीन

विवृत	अ	आ
संयुक्त स्वर	अइ	अउ

१५३. सातवीं सदी ईसवी में जब अरबों ने ईरान को ... कर ईरानी धर्म और सभ्यता के स्थान पर अपने इस्लाम धर्म ... अरबी सभ्यता को स्थानापन्न किया तो बहुत बड़ी संख्या में अ... शब्दसमूह को लेने के साथ-साथ फ़ारसी भाषा अरबी लि... लिखी जाने लगी। फ़ारसी के लिए व्यवहृत होने पर अरबी व... उच्चारण तथा संख्या दोनों में परिवर्तन करना पड़ा। अरबी ... की संख्या फ़ारसी में ३२ कर दी गई। इसका तात्पर्य यह है ... पहलवी में पाए जाने वाले २४ वर्णों में आठ नए अरबी वर्ण ... दिए गए, यद्यपि फ़ारसी में आने पर इन मूल अरबी वर्णों ... उच्चारण भिन्न अवश्य हो गए। अरबी के ये आठ विशेष ... निम्नलिखित हैं—

वर्ण का उर्दू नाम		अरबी उच्चारण	फ़ारसी उच्चा...
से	(ث)	थ़	स़
हे	(ح)	ह़	ह़
स्वाद्	(ص)	स़	स़
ज्वाद्	(ض)	द	ज़्
तोय	(ط)	त़	त़
ज़ोय	(ظ)	ज़	ज़्
ऐन्	(ع)	॰	अ
क़ाफ़	(ق)	क़	क़

अरबी ध्वनियों का उच्चारण फ़ारसी ध्वनियों के सदृश ... लेने के कारण इस नई फ़ारसी-अरबी वर्णमाला में कई-कई वर्णों ... [illegible]रण में सादृश्य हो गया। यह नीचे दिखलाया जा रहा है— होती है।

...का उर्दू नाम		अरबी उच्चारण	फ़ारसी उच्चार...
	(س)	स़	स़
१५२. अरब	(ص)	स़	
...[illegible] पहलव	(ث)	थ़	

स्वाद

जे	(ز)	ज़	ज़
ज़ोय	(ظ)	ज़	
ज़्वाद	(ض)	द़	
हे	(ح)	ह़	ह़
हे	(ہ)	ह़	
ते	(ت)	त़	त़
तोय	(ط)	त़	

अलिफ-हम्ज़ा में हम्ज़ा का उच्चारण फ़ारसी में नहीं होता था। साथ ही फ़ारसी में चार नई ध्वनियाँ थीं जो अरबी में मौजूद नहीं थीं। इनके लिए अरबी चिह्नों को कुछ परिवर्तित करके नए चिह्न गढ़े गए। ये चार ध्वनियाँ और चिह्न निम्नलिखित हैं—

ध्वनियाँ	नए	चिह्न
प	(پ)	(पे)
च़	(چ)	(चे)
झ़	(ژ)	(झे)
ग	(گ)	(गाफ़)

इन परिवर्तनों को करने के बाद अरबी ... के फारसी ...पांतर में वर्णों की संख्या ३२ (२४+८)... के समान ...भी सब व्यंजन ही रहे। यह ... हिंदुस्तान ...फ़ारसी भाषा ... ईसवी ...के बीच में ... शब्द- ... में नहीं ... के

ग. उर्दू वर्णमाला

१५४. १२०० ई० के बाद जब मुसलमान विजेताओं के साथ साथ अरबी और फ़ारसी भाषा तथा अरबी-फ़ारसी लिपि का प्रचार हिंदुस्तान में हुआ तब हिंदुस्तानी भाषाओं के शब्दों को लिखने के लिए अरबी-फ़ारसी लिपि में फिर कुछ परिवर्तन करने पड़े। कुछ विशेष हिंदुस्तानी ध्वनियों को प्रकट करने के लिए तीन नए चिह्न बना कर बढ़ाए गए। ये चिह्न और ध्वनियाँ नीचे दी हैं—

नई ध्वनियाँ	नए चिह्न
ट	(ٹ) (टे)
ड्	(ڈ) (डाल्)
ड़्	(ڑ) (ड़े)

इस तरह मूल अरबी लिपि के वर्तमान हिंदुस्तानी रूप में, जो साधारणतया उर्दू लिपि के नाम से पुकारी जाती है, वर्णों की संख्या ३५ (३२+३) है।

स्वरों का बोध कराने के लिए व्यंजनों के साथ नीचे लिखे चिह्नों तथा व्यंजनों का व्यवहार किया जाता है—

स्वर	चिह्नों के नाम	चिह्न	उदाहरण
अ	ज़बर्	َ	سَت (सत)
इ	ज़ेर्	ِ	سِت (सित)
उ	पेश्	ُ	سُت (सुत)
आ	अलिफ़+ह आ	ا	سات (सात)
ई	ज़ेर+इये	ی	سِیت (सीत)
ए	इये	ی	سیت (सेत)
ऐ	ज़बर+इये	یَ	سَیت (सैत)
ऊ	पेश+वाओ	و	سُوت (सूत)

ओ	वाओ	و	سوت	(सोत)
औ	ज़बर+वाओ	وَ	سَوت	(सौत)

नित्य-प्रति के लिखने में ज़ेर, ज़बर, पेश् प्रायः नहीं लगाए जाते, अतः तीन ह्रस्व स्वरों का भेद दिखलाया ही नहीं जाता तथा शेष सात दीर्घ स्वरों में आ के लिए 'अलिफ़' (ا) ई, ए, ऐ के लिए 'इये' (ی) तथा ऊ, ओ, औ के लिए 'वाओ' (و), का व्यवहार किया जाता है। मुड़िया के समान उर्दू लिपि के पढ़ने में सबसे अधिक कठिनाई इसी कारण पड़ती है। साथ ही इन उर्दू मात्राओं के न लगाने से मुड़िया की तरह उर्दू लिपि भी देवनागरी की अपेक्षा कुछ अधिक तेजी से लिखी जा सकती है।[1]

---

[1]अरबी-फारसी लिपि में तीन चिह्न बढ़ा लेने के बाद भी उर्दू लिपि समस्त हिंदी ध्वनियों को प्रकट करने में असमर्थ रही, अतः संयुक्त चिह्नों से काम लिया जाने लगा। उदाहरण के लिए हिंदी की समस्त महाप्राण ध्वनियाँ रोमन अनुलिपि के समान अल्प-प्राण चिह्नों में ह (ھ) लगाकर प्रकट की जाती हैं। ङ् ञ् और ण् अनुनासिक व्यंजनों को प्रकट करने के लिए भी कोई चिह्न नहीं हैं। स्वरों के लिए भी विशेष चिह्नों का प्रयोग साधारणतया नहीं किया जाता।

हिंदी वर्णमाला की उर्दू अनुलिपि निम्नलिखित है—

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ
َ	ا	ِ	ىِ	و	وُ	ے	ىَ	و	وَ

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्
ک	کھ	گ	گھ	×
च्	छ्	ज्	झ्	ञ्
چ	چھ	ج	جھ	×
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्
ٹ	ٹھ	ڈ	ڈھ	×
त्	थ्	द्	ध्	न्
ت	تھ	د	دھ	ن

१५५. नीचे के कोष्ठक में अरबी, फ़ारसी तथा उर्दू वर्णमालाएँ तुलनात्मक ढंग से दी गई हैं। साथ में देवनागरी के आधार पर बनाए गए लिपि-चिह्न तथा उर्दू वर्णमाला की देवनागरी अनुलिपि भी दी गई हैं—

अरबी		फ़ारसी		उर्दू		
अरबी लिपि-चिह्न	ध्वनि देवनागरी में	फ़ारसी लिपि-चिह्न	ध्वनि देवनागरी में	उर्दू लिपि-चिह्न	देवनागरी अनु-लिपि	ध्वनि देवनागरी में
ا	अ	ا	अ	ا	अ	अ
ب	ब्	ب	ब्	ب	ब्	ब्
×	×	پ	प्*	پ	प्	प्
ت	त्	ت	त्	ت	त्	त्
×	×	×	×	ٹ	ट्	ट्
ث	स्	ث	स	ث	स्	स्
ج	ज	ج	ज्	ج	ज्	ज्
×	×	چ	च्*	چ	च्	च्

م	म्	م	म्	م	म	म
ن	न्	ن	न्	ن	न्	न्
و	व्	و	व	و	व्	व्
ه	ह्	ه	ह्	ه	ह् :	ह्
ی	य्	ی	य	ی	य्	य्
२८		३२		३५		

सूचना—† ये चिह्न उन आठ वर्णों पर लगाए गए हैं जो अरबी के विशेष वर्ण होने के कारण फ़ारसी के मूल २४ पहलवी वर्ण-समूह में जोड़े गए थे जिससे फ़ारसी में व्यवहृत अरबी शब्द सुविधा से लिखे जा सकें। इनको छोड़कर शेष २४ वर्ण फ़ारसी के अपने हैं। इन नए आठ वर्णों का प्रयोग केवल अरबी शब्दों में मिलता है।

* ये चिह्न फ़ारसी के उन चार विशेष वर्णों पर लगाए गए हैं जिसके लिए अरबी में ध्वनि-चिह्न मौजूद नहीं थे, न ये ध्वनियाँ ही अरबी में थीं। अतः फ़ारसी भाषा लिखने को प्रयुक्त होने पर मूल अरबी लिपि में इनके लिए चार नए चिह्न गढ़े गए थे।

§ ये चिह्न उन तीनों वर्णों पर लगाए गए हैं जो हिंदुस्तानी भाषाओं की आवश्यकता के कारण अरबी-फ़ारसी लिपि में बढ़ाए गए थे।

फ़ारसी वर्णमाला के समान ही उर्दू वर्णमाला में भी अरबी के तत्सम शब्दों में अरबी वर्ण लिखे तो जाते हैं किंतु उनका उच्चारण हिंदुस्तानी मुसलमान भी साधारणतया अपनी ध्वनियों की तरह करते हैं। अतः लिखने में भिन्न चिह्नों का प्रयोग करने पर भी उच्चारण की दृष्टि से स् (س) स् (ص) स् (ث) का उच्चारण स् (س), त् (ط) त् (ت) का उच्चारण त (ت), ह् (ح) ह् (ا) का उच्चारण ह् (ه) और ज़् (ظ) ज़् (ض) ... होता

है। (ε) का उच्चारण भी अ (ा) से भिन्न साधारणतय नहीं किया जाता।

घ. फ़ारसी शब्दों में ध्वनिपरिवर्तन

१५६. ऊपर के विवेचन से यह कदाचित् स्पष्ट हो गया होग कि हिंदी में अरबी तथा तुर्की शब्द भी फ़ारसी भाषा के द्वारा आ हैं, अतः ऐसे शब्दों के साथ मूल अरबी या तुर्की ध्वनियाँ नहीं अ सकी है। फ़ारसी में आने पर अरबी और तुर्की शब्दों की ध्वनिय में जो परिवर्तन हो चुके थे उन्हीं परिवर्तित रूपों में ये शब साधारणतया हिंदी में पहुँचे हैं। व्यावहारिक दृष्टि से हिंदी के लि ये शब्द अरबी या तुर्की भाषा के न होकर फ़ारसी भाषा के ही हैं

फ़ारसी और हिंदी की अधिकांश ध्वनियों में समानता ह किन्तु फ़ारसी में कुछ ऐसी ध्वनियाँ है जो हिंदी में नहीं हैं। ये ध्वनिय फ़ारसी-अरबी तत्सम शब्दों में सुनाई पड़ती है और इनके लि देवनागरी में निम्नलिखित परिवर्तित लिपि-चिह्नों का प्रयोग होत आया है—क़् ख़् ग़् ज़् फ़्। इनमें श् भी शामिल किया जा सकता है श् ध्वनि संस्कृत में पहले ही से मौजूद थी। फ़ारसी श् तथा संस्कृ श् में थोड़ा ही भेद है। साहित्यिक हिंदी में फ़ारसी-अरबी शब्द की इन विशेष ध्वनियों का उच्चारण तथा लिखने में बराबर प्रयो किया जाता है।

फ़ारसी तत्सम शब्दों में पूर्ण उर्दू भाषा के बोले जाने वाले लिखे जाने वाले रूप से अधिक परिचित होने के कारण पश्चि संयुक्त प्रांत तथा दिल्ली प्रांत के रहने वाले हिंदी लेखक इन विदे ध्वनियों का व्यवहार बातचीत तथा लिखने, दोनों में ही शुद्ध री से कर सकते है, और बराबर करते हैं। किन्तु पूर्वी संयुक्त प्रां बिहार, मध्यप्रांत, मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा कमायूँ-गढ़वाल प्रदेशों में रहनेवाले हिंदी बोलने वालों तथा हिंदी लेखकों को दिल

(४) फ़ारसी संयुक्त स्वर अइ अउ हिंदी में क्रम से ऐ (अऍ)
औ (अऑ) हो जाते हैं—

फ़ा०	हि०	फ़ा०
अइ :	मैदान	मेइदान्
अउ :	मौसम	मउसमे

(५) स्वरलोप तथा स्वर-परिवर्तन के उदाहरण भी बराबर पाए जाते हैं—

हि०	फ़ा०
मसला	मेसेल् ह
ज़्यादती	ज़ियादेती
मामला	मुअामलेह्
माफ़िक	मुवाफ़िक़

(६) स्वरागम के उदाहरण भी बराबर मिलते हैं—

हि०	फ़ा०
निरख	निर्ख़
शामियाना	शामानह्
हुकुम	हुक्म्

व्यंजन

(७) अरबी ह और ह़ फ़ारसी में ह् में परिवर्तित हो ग
ये। हिंदी में फ़ारसी ह् के स्थान पर प्रायः ह़ हो जाता है—

हि०	फ़ा०
हवा	ह़वा
हुनर	हुनेर
मुहर्रम	मुहर्रम्

संयुक्त व्यंजनों के आने पर ह् का या तो लोप हो जाता है

हि०	फ़ा०
मुहर	मुहर्
फ़ेरिस्त	फ़िह्रिस्त्

फ़ारसी शब्दों का 'हा-इ-मुख़्तफ़ी' अर्थात् उच्चरित न होने वाला अंत्य ह् पूर्व अ के साथ मिलकर हिंदी में आ में परिवर्तित हो जाता है—

हि०	फ़ा०
कनारा	किनारेह्
सज़ना	से़ज़ानेह्

(८) अरबी ॰ (ε) फ़ारसी में ॰ से मिलती-जुलती ध्वनि में परिवर्तित हो गया था। हिंदी में ॰ का लोप हो जाता है या इसके स्थान पर प्रायः आ हो जाता है—

हि०	फ़ा०
जमा	जम्॰
तावीज़	त॰वीद
अजब	॰अजॅब्
अरब	॰अरॅब

(९) फ़ारसी क् ग्; च ज्; त द्; प ब्; ङ न् म्; र् ल्; स् य् हिंदी ध्वनियों के ही समान होने के कारण इनमें साधारणतया परिवर्तन नहीं किए जाते—

हि०	फ़ा०
किताब	किताब्
गरम	गॅर्म्
चाकर	चाकॅर्
जमा	जॅम्॰

फ़ा० क़> हि० ग : हि० तगादा फ़ा० तक़
हि० नगद फ़ा० न

अ. अंग्रेज़ी

१५८. लगभग १६०० ईसवी से भारत में यूरोपीय लोगों का आना-जाना प्रारम्भ हुआ था और तभी से कुछ यूरोपीय शब्दों का व्यवहार भारत में होने लगा था। किन्तु अंग्रेजी राज्य की स्थापना हिंदी प्रदेश में लगभग १८०० ईसवी से हुई थी, और तब से अंग्रेजी सभ्यता और भाषा तथा ईसाई धर्म की गहरी छाप हिंदीभाषियों पर पड़नी प्रारम्भ हुई। दक्षिण भारत तथा समुद्र के किनारे के प्रदेशों की तरह हिंदी प्रदेश फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि जातियों के विशेष संपर्क में कभी नहीं आया। हिंदी में थोड़े से फ्रांसीसी तथा पुर्तगाली आदि भाषाओं के शब्द[1] आ गए हैं, किन्तु इनकी संख्या अत्यन्त परिमित है। हिंदी की अपेक्षा बंगाली[2] आदि में इनकी संख्या कहीं अधिक है। यूरोपीय भाषाओं में से अंग्रेज़ी भाषा के शब्द हिंदी में सबसे अधिक संख्या में आए हैं, और यह स्वाभाविक ही है।

क. अंग्रेज़ी ध्वनि-समूह

१५९. अंग्रेज़ी में होने वाले ध्वनि-परिवर्तनों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि संक्षेप में अंग्रेज़ी ध्वनियों को समझ लिया जाय। अंग्रेज़ी ध्वनियों का वर्गीकरण[3] निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है—

---

[1]दे., भूमिका, 'विदेशी भाषाओं के शब्द'।
[2]बंगाली में व्यवहृत पुर्तगाली शब्दों के संबंध में दे., चै., बे. लै., अ० ७
[3]वा. फो, इं., § ९२, § ९६, § २१४

व्यंजन

	ओष्ठ्य		दंत्य		तालव्य			
	द्वयोष्ठ्य	दंत्योष्ठ्य	दंत्य	वर्त्स्य	तालव्य-वर्त्स्य	तालव्य	कंठ्य	स्वरयंत्रमुखी
स्पर्श	प् ब्			ट् ड्			क् ग्	
स्पर्शसंघर्षी					च् ज्			
अनुनासिक	म्			न्			ङ्	
पार्श्विक				ल्			ल़्	
लुंठित				र्				
संघर्षी		फ़् व्	थ़् द़्	स् ज़्	श् झ़्			ह्
अर्द्धस्वर	व़्					य्	(व़्)	

मूलस्वर

फ़ा० क़> हि० ग्: हि० *तगादा* फ़ा० तक़ा

हि० *नगद* फ़ा० नक़्

अ. अंग्रेज़ी

१५८. लगभग १६०० ईसवी से भारत में यूरोपीय लोगों क आना-जाना प्रारम्भ हुआ था और तभी से कुछ यूरोपीय शब्दों क व्यवहार भारत में होने लगा था। किन्तु अंग्रेज़ी राज्य की स्थापन हिंदी प्रदेश में लगभग १८०० ईसवी से हुई थी, और तब से अंग्रेज़ी सभ्यता और भाषा तथा ईसाई धर्म की गहरी छाप हिंदीभाषियों पर पड़नी प्रारम्भ हुई। दक्षिण भारत तथा समुद्र के किनारे के प्रदेशों की तरह हिंदी प्रदेश फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि जातियों के विशेष संपर्क में कभी नहीं आया। हिंदी में थोड़े से फ्रांसीसी तथा पुर्तगाली आदि भाषाओं के शब्द[1] आ गए हैं, किन्तु इनकी संख्या अत्यन्त परिमित है। हिंदी की अपेक्षा बंगाली[2] आदि में इनकी संख्या कहीं अधिक है। यूरोपीय भाषाओं में से अंग्रेज़ी भाषा के शब्द हिंदी में सबसे अधिक संख्या में आए हैं, और यह स्वाभाविक ही है।

क. अंग्रेज़ी ध्वनि-समूह

१५९. अंग्रेज़ी में होने वाले ध्वनि-परिवर्तनों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि संक्षेप में अंग्रेज़ी ध्वनियों को समझ लिया जाय। अंग्रेज़ी ध्वनियों का वर्गीकरण[3] निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है—

---

[1] दे., भूमिका, 'विदेशी भाषाओं के शब्द'।

[2] बंगाली में व्यवहृत पुर्तगाली शब्दों के संबंध में दे., चै., बे. लै., §० ७

[3] वा. फो. इ., § १२, § ९६, § २१४

व्यंजन

	ओष्ठ्य		दंत्य		तालव्य			
	द्वयोष्ठ्य	दंत्योष्ठ्य	दंत्य	वर्त्स्य	तालव्य-वर्त्स्य	तालव्य	कंठ्य	स्वरयंत्रमुखी
स्पर्श	प् ब्			ट् ड्			क् ग्	
स्पर्शसंघर्षी					च् ज्			
अनुनासिक	म्			न्			ङ्	
पार्श्विक				ल्			ल़्	
लुंठित				र्				
संघर्षी		.फ् व्	.थ् .द्	स् .ज्	श् .झ्			ह्
अर्द्धस्वर	.व्					य्	(.व्)	

मूलस्वर

अग्र मध्य पश्च

संवृत

१ ई

९ उ

अर्द्धसंवृत

२ ए

८ उ

११

अर्द्धविवृत

३ एॅ

१२

४

१० अ

विवृत

(अ)

५ आ

संयुक्तस्वर

१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
एइ	आउ	अइ	अउ	ऑइ	इअ	एअ	ओअ	उअ

सूचना—अंग्रेजी स्पर्श प ब, क ग के उच्चारण में स्वराघात-युक्त शब्दांश में कुछ हकार की ध्वनि आ जाती है,[1] किन्तु यह हकार का अंश इतना कम होता है कि लिखने में नहीं दिखाया जाता और इस कारण ये अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन हिंदी के महाप्राण स्पर्श व्यंजनों (फ भ ख घ) के समान नहीं हो जाते।

वाक्य में ज़ोर देने के लिए तथा कुछ अन्य स्थलों पर भी अंग्रेज़ी के कुछ शब्दों में स्वरयंत्रमुखी स्पर्श (अलिफ़-हम्ज़ा) की ध्वनि सुनाई पड़ती है किन्तु इसकी गणना साधारणतया अंग्रेज़ी मूल-ध्वनियों में नहीं की जाती।

ख. अंग्रेज़ी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन

मूलस्वर

१६०. अंग्रेजी और हिंदी की अधिकांश ध्वनियाँ समान हैं, किन्तु अंग्रेज़ी में कुछ नवीन ध्वनियाँ भी हैं। अंग्रेज़ी शब्दों के उच्चारण में इन नवीन ध्वनियों के सम्बन्ध में हिंदी-भाषियों को कठिनाई पड़ती है।

अंग्रेज़ी मूलस्वरों में ई (*सी* : see), इ (*सिट्* : sit) आ, (*काम्* : calm), उ (*पुट्* : put), ऊ (*सून्* : soon) तथा (अ *बट* : but) हिंदी मूलस्वरों से विशेष भिन्न नहीं हैं अतः इन अंग्रेजी स्वरों का उच्चारण हिंदी भाषी शुद्ध कर लेते हैं। शेष छः मूलस्वर हिंदी में नहीं पाए जाते, अतः इनका स्थान कोई न कोई हिंदी स्वर ले लेता है।

एँ : यह अर्द्धविवृत ह्रस्व अग्रस्वर है किन्तु इसका उच्चारण प्रधान स्वर ए की अपेक्षा काफ़ी ऊपर की तरफ़ होता है। हिंदी में इस अंग्रेज़ी स्वर के स्थान पर इ या ए हो जाता है।

---

[1] वा. फा. इ. ६ २१८

हि०	अं०
कालिज, कालेज	कॉलॅज् (college)
बिच बेंच	बॅन्च् (bench)

ॅ: यह भी अर्द्धविवृत ह्रस्व अग्रस्वर है, किन्तु इसका उच्चारण प्रधान स्वर ऍ से बहुत नीचे की तरफ और प्रधान स्वर अ के निकट होता है। हिन्दी में यह प्राय: ऐ (अइ) में परिवर्तित हो जाता है—

हि०	अं०
मैन	मॅन् (man)
गैस	गॅस् (gas)

ऑ: यह अर्द्धविवृत ह्रस्व पश्चस्वर है किन्तु इसका स्थान प्रधान स्वर आ की अपेक्षा कुछ ही ऊपर की तरफ है। हिंदी में यह प्राय: आ में परिवर्तित हो जाता है—

हि०	अं०
चाक	चॉक् (chalk)
आफिस	ऑफिस् (office)

ऑ: यह अर्द्धविवृत दीर्घ पश्चस्वर है किन्तु इसका उच्चारण-स्थान प्रधान स्वर ऑ की अपेक्षा नीचे की तरफ होता है। हिंदी में इसके स्थान में भी प्राय: आ हो जाता है। अब कुछ दिनों से ऑ, तथा ऑ दोनों के लिए ऑ लिखने का रिवाज हो रहा है—

हि०	अं०
ला, लॉ	लॉ (law)
बाट, बॉट	बॉट (bought)

ऐ: यह अर्द्धविवृत दीर्घ मध्यस्वर है किन्तु इसका स्थान कुछ ऊपर की तरफ हटा है। हिंदी में इसके स्थान पर प्राय: अ हो जाता है।

संयुक्तस्वर

१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
एइ	ओउ	अइ	अउ	ओइ	इअ	ऐ़अ	ओअ	उ

सूचना—अंग्रेजी स्पर्श प् ब्, क् ग् के उच्चारण में स्वराघात युक्त शब्दांश में कुछ हकार की ध्वनि आ जाती है,' किन्तु यह हवा का अंश इतना कम होता है कि लिखने में नहीं दिखाया जाता और इस कारण ये अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन हिंदी के महाप्राण स्प व्यंजनों (फ् भ् ख घ्) के समान नहीं हो जाते।

वाक्य में जोर देने के लिए तथा कुछ अन्य स्थलों पर भी अंग्रेज के कुछ शब्दों में स्वरयंत्रमुखी स्पर्श' (अलिफ़-हम्जा) की ध्वनि सुनाई पड़ती है किन्तु इसकी गणना साधारणतया अंग्रेजी मूल ध्वनियों में नहीं की जाती।

ख. अंग्रेजी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन

मूलस्वर

१६०. अंग्रेजी और हिंदी की अधिकांश ध्वनियाँ समान किन्तु अंग्रेज़ी में कुछ नवीन ध्वनियाँ भी हैं। अंग्रेजी शब्द उच्चारण में इन नवीन ध्वनियों के सम्बन्ध में हिंदी-भाषि

अं० ओइ > हि० वाय, वाय ऐ (अए) : व्याय बोँइ (boy)
न्याइज़ नोँइज़ (noise)
ऐन्टमेन्ट ओँइन्ट्मन्ट् (ointment)
अं० इअ > हि० इआ, इअ, ए : इन्डिआ इन्डिआ इन्डिअ (India)
बिअर बिअं (beer)
एरन् इअं-रिङ् (earring)
अं० एअं > हि० एअ, ए : शेअर, शेर शेँअं (share)
चेअर, चेर चेँअं (chair)
अं० ओँअं > हि० ओ : मोर मोँअं (more)
बोर्ड बोँअंड् (board)
अं० उअं > हि० यो : प्यारे पुअं (pure)
योर युअं (your)

१६२. हिंदी में व्यवहृत अंग्रेजी शब्दों में स्वरागम के बहुत उदाहरण मिलते हैं। स्वरलोप के उदाहरण बहुत कम पाए जाते हैं। स्वरागम के उदाहरण शब्द के आदि में संयुक्त व्यंजन के पूर्व में मिलते हैं या संयुक्त व्यंजन के टूटने पर मध्य में मिलते हैं, जैसे इस्टाम (stamp), इस्कूल (school), फ़ारम (form), बुरुश (brush), बिरांडी (brandy)

व्यंजन

१६३. अंग्रेजी व्यंजनों में से कुछ हिंदी में नहीं पाए जाते अतः ये हिंदी की निकटतम ध्वनियों में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसी असाधारण ध्वनियों का विवेचन हिंदी में पाए जाने वाले परिवर्तनों सहित नीचे दिया जा रहा है—

हि०	अं०
बर्ड	बँड् (bird)
लर्न	लँर्न् (learn)

अ' : यह अर्द्धविवृत ह्रस्व मध्यस्वर है। हिंदी में इनके स्थान पर प्रायः अ हो जाता है —

अलोन	अँलोउन् (alone)
बटर	बट (butter)

संयुक्त स्वर

१६१. अंग्रेजी के ढंग के संयुक्त स्वरों का व्यवहार हिंदी में नहीं है अतः इनके स्थान पर प्रायः दीर्घ मूल स्वर या हिंदी के संयुक्त स्वर हो जाते हैं। कुछ में असाधारण संयुक्त ध्वनियों का प्रयोग भी करना पड़ता है।

हि०		अं०	
अं० एइ > हि० ए	: मेल	मेइल	(mail)
	जेल	जेइल	(jail)
अं० ओउ > हि० ओ, अ	: बोट	बोउट्	(boat)
	कोट	कोउट्	(coat)
	रपट, रिपोट,	रिपोउट्	(report)
अं अइ > हि० ऐ (अए) आइ, ए	: टैम, टाइम, टेम,	टाइम्	(time)
	टाइप, टैप,	टाइप	(type)
अं० अउ > हि० औ (अओ) आऊ	: टौन, टाउन,	टाउन	(town)
	कौन्सिल, काउन्सिल,	काउन्सिल	(council)

अं० ओइ > हि० वाय, वाय ऐ (अए) :	ब्वाय	बॉइ	(boy)
	न्वाइज्	नॉइज्	(noise)
	ऐन्टमेन्ट	ऑइन्ट्मन्ट्	(ointment)
अं० इअ > हि० इआ, इअ, ए :	इन्डिआ	इन्डिआ इन्डिअ	(India)
	बिअर	बिअं	(beer)
	एरन्	इअं-रिङ्	(earring)
अं० एअं > हि० एअ, ए :	शेअर, शेर	शॅअं	(share)
	चेअर, चेर	चॅ अं	(chair)
अं० ऑअं > हि० ओ :	मोर	मॉअं	(more)
	बॉर्ड	बॉअंड्	(board)
अं० उअं > हि० यो :	प्यारे	पुअं	(pure)
	योर	युअं	(your)

१६२. हिंदी में व्यवहृत अंग्रेजी शब्दों में स्वरागम के बहुत उदाहरण मिलते हैं। स्वरलोप के उदाहरण बहुत कम पाए जाते हैं। स्वरागम के उदाहरण शब्द के आदि में संयुक्त व्यंजन के पूर्व में मिलते हैं या संयुक्त व्यंजन के टूटने पर मध्य में मिलते हैं, जैसे इस्टाम (stamp), इस्कूल (school), फारम (form), बुरुश (brush), बिरांडी (brandy)

व्यंजन

१६३. अंग्रेजी व्यंजनों में से कुछ हिंदी में नहीं पाए जाते अतः ये हिंदी की निकटतम ध्वनियों में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसी असाधारण ध्वनियों का विवेचन हिंदी में पाए जाने वाले परिवर्तनों सहित नीचे दिया जा रहा है—

ट् ड् अंग्रेजी ट् ड् न तो हिंदी के ट ड के समान मूर्धन्य हैं और न त द के समान दंत्य हैं। ये वास्तव में वर्त्स्य हैं अर्थात् जीभ की नोक को दाँतों के ऊपर मसूढ़ों पर लगा कर इनका उच्चारण किया जाता है। वर्त्स्य ट् ड् के अभाव के कारण हिंदी में ये ध्वनियाँ क्रम से ट या त और ड या द में परिवर्तित हो जाती हैं—

अ० ट् > हि० ट :	*रपट*	(report),
	बालस्टर	(barrister)
अ० ट् > हि० त :	*अगस्त*	(August),
	सिकत्तर	(secretary)
अ० ड् > हि० ड :	*डिकस*	(desk),
	डबल मार्च	(double march)
अ० ड् > हि० द :	*दिसंबर*	(December),
	अर्दली	(orderly)

च् ज्: अंग्रेज़ी च् ज् का उच्चारण हिंदी की तालव्य स्पर्श-संघर्षी च ज ध्वनियों से भिन्न है। अंग्रेज़ी ध्वनियों का उच्चारण कुछ-कुछ ट् श् ड् ज़् की तरह होता है। हिंदी में इनके स्थान पर क्रम से च् ज् हो जाता है—

अ० च् > हि० च् : चेयर (chair), चेन (chain)
अं० ज् > हि ज् : जज (judge), जेल (jail)

च् ज् के अतिरिक्त अंग्रेज़ी में कुछ अन्य स्पर्श-संघर्षी ध्वनियाँ[1] भी पाई जाती हैं, किन्तु इनका व्यवहार च् ज् की अपेक्षा कम मिलता है। ये ध्वनियाँ मूल व्यंजनों की अपेक्षा संयुक्त व्यंजनों के अधिक समान मालूम पड़ती हैं अतः साधारणतया इन्हें अंग्रेज़ी

---

[1]वा., फो. इं § २३१.

मूल व्यंजनध्वनियों में नहीं सम्मिलित किया जाता। ये अन्य स्पर्श-संघर्षी ध्वनियाँ उदाहरण सहित नीचे दी जाती हैं—

ट्थ्	:	एइट्थ्	(eighth)
ड्थ्	:	विड्थ्	(width)
ट्स्	:	ईट्स्	(eats)
ड्ज्	:	बेड्ज्	(beds)

ट्र् और ड्र् को भी कभी-कभी इसी श्रेणी में रख लिया जाता है, जैसे ट्री (tree) ड्रॉ (draw)।

अंग्रेज़ी अनुनासिक व्यंजन म्, न्, ङ्, का उच्चारण हिंदी के इन अनुनासिक व्यंजनों के समान होता है अतः अंग्रेज़ी विदेशी शब्दों में इनके आने पर हिंदी मे साधारणतया किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता।

ल्: स्वर के पहले अंग्रेज़ी ल् का उच्चारण हिंदी ल् के समान ही होता है। इसे 'स्पष्ट ल्' कह सकते हैं। किन्तु व्यंजन के पहले या शब्द के अन्त में ल् का उच्चारण भिन्न ढंग से होता है जिसमें जीभ की नोक से वर्त्स्य स्थान को छूने के साथ-साथ जीभ के पिछले हिस्से को कोमल तालु की ओर ऊपर उठा देते हैं, जिससे जीभ मध्यभाग में कुछ झुक जाती है। इसे 'अस्पष्ट ल्' कहते हैं। देवनागरी में इसे ल़् से प्रकट किया गया है। हिंदी में अंग्रेज़ी की इन दोनों ल् ध्वनियों में भेद नहीं किया जाता और ल़् का उच्चारण भी ल् के समान ही किया जाता है, जैसे बोतल (bottle), पेट्रोल (petrol)।

ल् के समान अंग्रेज़ी में र् के भी दो रूप पाए जाते हैं—एक लुंठित और दूसरा संघर्षी। संघर्षी र्' को देवनागरी में ऱ् से प्रकट

[1] बा., फो. इं., § २४०
[2] बा., फो. इं., § २४८

कर सकते हैं। संघर्षी ṛ प्रायः शब्द के आरम्भ में पाया जाता है। यह भेद इतना सूक्ष्म है कि इस पर यहाँ अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

संघर्षी ध्वनियों में *थ्‌ द्‌* हिंदी के लिए नई ध्वनियाँ हैं। *थ्‌ द्‌* दंत्य संघर्षी हैं। हिंदी में ये थ द अर्थात् दंत्य स्पर्श-ध्वनियों में परिवर्तित हो जाते हैं, जैसे *थर्ड* (third), *थर्मामेटर* (thermometre)। कुछ शब्दों में अंग्रेज़ी *थ्‌* हि० ट या ठ में भी परिवर्तित हो जाता है, जैसे *ठेटर* (theatre), *लंकलाट* (longcloth)।

अंग्रेज़ी संघर्षी ध्वनियों में से फ़ व़ ज़ और श्‌ से हिंदीभाषा-भाषी संस्कृत या फ़ारसी प्रभाव के कारण परिचित थे अतः पढ़े-लिखे लोग इनका उच्चारण शुद्ध कर लेते हैं। गाँव के लोग बोली में इन ध्वनियों को क्रम से फ़ व ज़ और स में परिवर्तित कर देते हैं, जैसे *फुटबाल* (football), *वोट* (vote), *सिलिङ्‌* (shilling)। अंग्रेज़ी ह्‌ का उच्चारण हिंदी ह्‌ के समान है।

झ्‌ का प्रयोग हिन्दी में प्रचलित बहुत कम अंग्रेज़ी शब्दों में पाया जाता है। यह साधारणतया ज़्‌ में परिवर्तित कर दिया जाता है, जैसे *प्लेज़र* (pleasure)।

अंग्रेज़ी ओष्ठ्य अर्द्धस्वर *व्‌* के स्थान पर हिंदी में प्रायः दंत्योष्ठ्य संघर्षी *व्‌* या ओष्ठ्य स्पर्श व्‌ हो जाता है, जैसे *वास्कट* (waistcoat), *वेटिङ्‌ रूम* (waiting room)।

अंग्रेज़ी और हिंदी *य्‌* के उच्चारण में कोई भेद नहीं है।

१६४. अंग्रेज़ी में नई ध्वनियाँ होने के कारण ऊपर दिए हुए अनिवार्य परिवर्तनों के अतिरिक्त अंग्रेज़ी विदेशी शब्दों में कुछ असाधारण ध्वनि-परिवर्तन भी पाए जाते हैं। ये उदाहरण सहित नीचे दिए जाते हैं—

(१) अनुरूपता : *कलट्टर* (collector)

(२) विपर्यय : *सिगल* (signal), *डिकस* (desk)

(३) व्यंजन-लोप : *वास्कट* (waistcoat)

(४) व्यंजनागम : *मोटर* (मोउटं, motor)

(५) वर्ग की घोष ध्वनि का अघोष तथा अघोष ध्वनि का घोष में परिवर्तित होना : *काग* (cork), *डिगरी* (decree) *लाट* (lord)।

(६) न् का ल् में परिवर्तन : *लंबर* (number), *लमलेट* (lemonade)।

अध्याय ४

स्वराघात

१६५. स्वराघात दो प्रकार का होता है। एक स्वराघात तो वह है जिसमें आवाज का सुर ऊँचा या नीचा किया जाता है। इसको *गीतात्मक स्वराघात* कहते हैं। यह स्वराघात उसी प्रकार का है जैसा हम गाने में पाते हैं और इसका सम्बन्ध स्वरतंत्रियों के ढीला करने या तानने से है। दूसरे ढंग का स्वराघात वह जिसमें आवाज़ ऊँची-नीची नहीं की जाती बल्कि साँस को धक्के साथ छोड़ कर ज़ोर दिया जाता है। इसे *बलात्मक स्वराघात* क हैं। इसका सम्बन्ध नादतंत्रियों से न हो कर फेफड़े से हवा फें के ढंग पर होता है। *यह स्मरण रखना चाहिए कि बलात्मक स्व* घात और दीर्घस्वर, तथा कभी-कभी गीतात्मक स्वराघात के : एक ही ध्वनि में पाए जाने के कारण इन सब में भेद करने में कठिन हो जाती है।

अ. भारतीय आर्यभाषाओं के स्वराघात का इतिहास

क. वैदिक स्वराघात

१६६. स्वराघात की दृष्टि से प्रा० भा० आ० भाषा व विशेषता यह है कि वह गीतात्मक स्वराघात-प्रधान भाषा है वैदिक साहित्य में प्रत्येक शब्द के ऊपर-नीचे जो चिह्न रहते हैं इसी स्वराघात के सूचक हैं। गीतात्मक स्वराघात में तीन भेद : जिन्हें पारिभाषिक शब्दों में उदात्त अर्थात् ऊँचा सुर, अनुदात्त अर्था

वैदिक साहित्य में गीतात्मक स्वराघात प्रकट करने के चार भिन्न ढंग प्रचलित हैं। सामवेद को छोड़ कर ऋग्वेदादि अन्य तीनों वेदों की प्रचलित संहिताओं में उदात्त-स्वर पर कोई चिह्न नहीं लगाया जाता। कदाचित् इसका कारण यह है कि प्रातिशाख्यों के अनुसार *स्वरित का पूर्व भाग उदात्त से भी ऊँचा बोला जाता था*, अतः सुर की दृष्टि से उदात्त और स्वरित में वास्तव में स्थान-परिवर्तन हो गया था। स्वरित-स्वर के ऊपर खड़ी लकीर और अनुदात्त-स्वर के नीचे बेड़ी लकीर लगाई जाती है। जैसे *अग्निना* शब्द में *अ* अनुदात्त, *ग्नि* उदात्त और *ना* स्वरित है। पाद के आरंभ में आने वाले समस्त उदात्त चिह्न-हीन छोड़ दिए जाते हैं तथा प्रत्येक अनुदात्त चिह्नित रहता है, किन्तु स्वरित के बाद आने वाले अनुदात्तों में केवल अंतिम अनुदात्त को चिह्नित किया जाता है। जैसे *इमं मे' गङ्गे यमुने सरस्वति शुतु'द्रि मे मं* उदात्त है किन्तु *गङ्गे यमुने सरस्वति* के समस्त स्वर अनुदात्त हैं *शु* फिर उदात्त और *द्रि* अनुदात्त है। स्वराघात के चिह्नों की दृष्टि से प्रत्येक पाद पूर्ण माना जाता है। पद पाठ में प्रत्येक शब्द पृथक् तथा पूर्ण माना जाता है।

ऋग्वेद की मैत्रायणी और काठक संहिताओं में स्वरित स्वर के ऊपर खड़ी लकीर न कर के उदात्त स्वर के ऊपर खड़ी लकीर की जाती है। जैसे इन संहिताओं में *अग्निना* में *ग्नि* उदात्त और *ना* स्वरित है। अनुदात्त का चिह्न ऋग्वेदादि संहिताओं के समान ही है, किन्तु स्वरित का चिह्न दोनों संहिताओं में कुछ भिन्न ढंग से लगाया जाता है। सामवेद में उदात्त, स्वरित और अनुदात्त स्वरों के ऊपर क्रम से १, २, ३ के अंक बनाए जाते हैं, जैसे *अग्निना* (३ २ १)। शतपथ ब्राह्मण में केवल उदात्त चिह्नित किया जाता है, और इसके लिए स्वर के नीचे अनुदात्त वाली आड़ी लकीर का व्यवहार होता है, जैसे *अग्निना*। साधारणतया प्रत्येक वैदिक शब्द में गीतात्मक स्वराघात पाया जाता है, और इसमें उदात्त सुर प्रधान है।

इस बात के चिह्न मिलते हैं कि प्रा० भा० आ० काल में गीतात्मक स्वराघात के साथ कदाचित् बलात्मक स्वराघात भी वर्तमान था, यद्यपि यह प्रधान नहीं था अतः चिह्नित भी नहीं किया जाता था।

ख. प्राकृत तथा आधुनिक काल में स्वराघात

१६७. कुछ यूरोपीय विद्वानों की धारणा है कि म० भा० आ० के आदिकाल में ही भारतीय आर्यभाषाओं में बलात्मक स्वराघात पूर्ण रूप से विकसित हो गया था, और गीतात्मक स्वराघात की प्रधानता नष्ट हो गई थी। यह बलात्मक स्वराघात शब्दांत के पूर्व प्रथम दीर्घस्वर पर प्रायः रहता था।[1] संस्कृत श्लोक पढ़ने में अब तक इस ढंग का स्वराघात चला जा रहा है।

म० भा० आ० काल में स्वराघात की दृष्टि से प्राकृतों के विभाग किए जाते हैं। एक तो वे जो किसी न किसी रूप में वैदि गीतात्मक स्वराघात को अपनाए रहीं। इस श्रेणी में महाराष्ट अर्द्धमागधी, जैन-मागधी, काव्य की अपभ्रंश, तथा काव्य की जै शौरसेनी रक्खी जाती हैं। इससे भिन्न शौरसेनी, मागधी त ढक्की (पंजाबी) प्राकृतों में संस्कृत के बलात्मक स्वराघात विकसित रूप वर्तमान था, ऐसा माना जाता है। प्रोफेसर टर्नर आ भा० आ० भाषाओं में भी म० भा० आ० काल के इस दोहरे स्वर घात के चिह्न पाते हैं, और वे मराठी को पहली श्रेणी में तथा गुजरा को दूसरी श्रेणी में रखते हैं। ग्रियर्सन आदि विद्वानों का एक मंडल म भा० आ० तथा आ० भा० आ० भाषाओं में केवल बलात्मक स्वराघा के चिह्न पाता है, तथा प्रोफेसर ब्लाक को इन दोनों कालों में बलात्म स्वराघात के भी पाए जाने के बारे में संदेह है। प्रा० भा० आ० काल के बाद लिखने में स्वराघात चिह्नित करने का रिवाज उठ गया था, इसलिए बाद के कालों के स्वराघात की स्थिति के सम्बन्ध

[1] इस अंश की सामग्री का मुख्य आधार ब्लॉ., बे., मै., § १४२ है।

कोई भी मत विशेषतया अनुमान के आधार पर ही बनाया जा सकता है, अतः इस विषय पर मतभेद और सन्देह का होना स्वाभाविक है।

हिंदी में स्वराघात

१६८. वैदिक भाषा के समान हिंदी में गीतात्मक स्वराघात शब्दों में नहीं पाया जाता। वाक्यों में इसका थोड़ा-बहुत प्रयोग अवश्य होता है जैसे प्रश्नवाचक वाक्य *क्या तुम घर जाओगे?* में जाओगे का उच्चारण कुछ ऊँचे सुर से होता है।

हिंदी शब्दों में बलात्मक स्वराघात अवश्य पाया जाता है, किन्तु वह अंग्रेज़ी के इस प्रकार के स्वराघात के सदृश प्रत्येक शब्द में निश्चित नहीं है। इसके अतिरिक्त हिंदी मे प्रायः दीर्घ स्वर पर स्वराघात होने के कारण दोनों में भेद करना साधारणतया कठिन हो जाता है। आधुनिक हिंदी शब्दों में स्वर लोप तथा ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का भेद दिखलाना बहुत आवश्यक है। स्वराघात का भेद उतना स्पष्ट नहीं है।

हिंदी स्वराघात के संबंध में गुरु के हिंदी व्याकरण[1] में कुछ नियम दिए हैं जिनका सार नीचे दिया जाता है। नीचे दिए हुए समस्त उदाहरणों में साधारणतया उपांत्य स्वर पर स्वराघात पाया जाता है, अतः ये समस्त नियम इस एक नियम के अन्तर्गत आ सकते हैं।

(१) यदि शब्द या शब्दांश के अन्त में रहने वाले अ का लोप हो कर शब्द या शब्दांश उच्चारण की दृष्टि से व्यंजनांत हो जाता है तो उपांत्य स्वर पर जोर पड़ता है जैसे *सँव, आदमी, कँमल*।

(२) संयुक्त व्यंजन के पूर्ववर्ती स्वर पर जोर पड़ता है जैसे *चँन्दा, लँज्जा, विँघा*।

[1] गु., हि. व्या. § ५६

(३) विसर्ग-युक्त स्वर का उच्चारण कुछ ज़ोर से होता है जैसे, *प्रायः, अन्तःकरण।*

(४) प्रेरणार्थक धातुओं में आ पर स्वराघात होता है जैसे *करांना, बुलाना, घुरांना।*

(५) यदि शब्द के एक ही रूप के कई अर्थ निकलते हैं तो इन अर्थों का अन्तर केवल स्वराघात से जाना जाता है, जैसे की (सम्बन्धकारक चिह्न) और की (क्रिया) में दूसरी का उच्चारण अधिक ज़ोर देकर किया जाता है।

१६९. हिंदी के कुछ मात्रिक और वर्णिक छन्दों का मूलाधार स्वरों की संख्या या मात्राकाल न होकर वास्तव में बलात्मक स्वराघात ही है। यदि स्वरों के मात्राकाल के अनुसार ये मात्रिक तथा वर्णिक छंद चलते होते तो ह्रस्व स्वर सदा एक मात्रा तथा दीर्घ स्वर सदा दो मात्रा काल का माना जाता, किन्तु हिंदी के इन छंदों में बराबर ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें स्वरों की मात्राओं में उच्चारण की दृष्टि से परिवर्तन कर लिया जाता है।

उदाहरण के लिए सवैया छन्द में गणों का क्रम तथा वर्ण-संख्या बँधी हुई है। प्रत्येक पाद की वर्ण-संख्या में तो कोई गड़बड़ी नहीं होता किन्तु गणों के अन्दर वास्तव में स्वर की ह्रस्व-दीर्घ मात्रा का ध्यान नहीं रक्खा जाता, जैसे [illegible] इस पाद में के रे रे के मात्रा के हिसाब से दीर्घ है किन्तु छन्द की दृष्टि से इन्हें ह्रस्व मानना पड़ता है। वास्तव में इस सवैया के अन्दर सगुण के समान गण का क्रम न होकर दो दो वर्णों के बाद बलात्मक स्वराघात है। स्वराघात की दृष्टि से इस पंक्ति को हम यों लिख सकते हैं—[illegible] में [illegible]। इस कारण जिन वर्णों पर बलात्मक

वराघात नहीं है वे चाहे ह्रस्व हों या दीर्घ किन्तु वे स्वराघात हीन
ोनें के कारण ह्रस्व के निकट हो जाते हैं। स्वराघात वाले स्वर
ावश्य दीर्घ होने चाहिए।

कवित्त या घनाक्षरी छंद में भी वर्णों की निर्धारित संख्या के
ातिरिक्त पाद के अन्दर बलात्मक स्वराघात का क्रम रहता है।

१७०. अवधी[1] के स्वराघात का अध्ययन सकसेना ने किया
। अवधी में भी बलात्मक स्वराघात पाया जाता है। इस संबंध
ं सकसेना के अध्ययन का सार नीचे दिया जाता है।

एकाक्षरी शब्दों में स्वराघात केवल तब पाया जाता है जब
नका व्यवहार वाक्य में हो। दो अक्षर, तीन अक्षर तथा अधिक
क्षर वाले शब्दों में अन्त के दो अक्षरों में से उस पर स्वराघात
ोता है जो दीर्घ हो या स्थान के कारण दीर्घ माना जाय, यदि
ोनोंदीर्घ या ह्रस्व हों तो स्वराघात उपांत्य अक्षर पर होता है।
नके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

ो अक्षर वाले शब्द :

पि-सा॑न्, प-ची॑स्, बा॑-इस्, ब॑-हिन्इ॒, ना॑-रा।

तीन अक्षर वाले शब्द :

का॑-प-इ,अ-दी॑-ई, सो-वा॑-इस्इ॒।

चार अक्षर वाले शब्द :

क-रि-हो॑-उ, क-चे॑-ह-री॑।

---

[1]सक. ए. अ. भा. १, अ. ५

अध्याय ५

रचनात्मक उपसर्ग तथा प्रत्यय

१७१. संस्कृत संज्ञा प्रायः तीन अंशों से मिल कर बनती है— धातु, प्रत्यय तथा कारक-चिह्न।[1] धातु और प्रत्यय से मिल कर मूल शब्द बनता है और फिर उसमें आवश्यकतानुसार कारक-चिह्न लगाए जाते हैं। आधुनिक आर्यभाषाओं की संज्ञाओं में संस्कृत कारक-चिह्न प्रायः लुप्त हो गए हैं। आधुनिक भाषाओं में कार रचना का सिद्धांत ही भिन्न हो गया है। इसका विवेचन अ अध्याय में किया जायगा। इस अध्याय में हिंदी रचनात्मक उप तथा प्रत्ययों के सम्बन्ध में विचार करना है।

संस्कृत के बहुत से प्रत्यय तथा उपसर्ग आधुनिक भाषाओं आते-आते नष्टप्राय हो गए हैं, किन्तु अब भी कुछ ऐसे हैं जो थोड़े य अधिक परिवर्तनों के साथ आधुनिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं कुछ काल से हिंदी में संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग विशेष ब गया है, अतः इन शब्दों के साथ बहुत से प्रत्यय तथा उपसर्ग क तत्सम रूपों में फिर से व्यवहार होने लगा है। नीचे तत्सम, तद्भव और विदेशी प्रत्यय तथा उपसर्गों का पृथक्-पृथक् विवेचन किया गया है।

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २., § १

अ. उपसर्ग[1]

क. तत्सम उपसर्ग तथा अव्ययादि

१७२. ऊपर बतलाया जा चुका है कि तत्सम शब्दों के साथ बहुत से संस्कृत उपसर्गों का व्यवहार साहित्यिक हिंदी में होने लगा है। इन्हें अभी हिंदी के उपसर्ग नहीं माना जा सकता क्योंकि ये अभी हिंदी भाषा की ऐसी संपत्ति नहीं हो पाए हैं कि जो तद्भव, विदेशी, या देशी शब्दों में स्वतन्त्रतापूर्वक लगाए जा सकें। पं० कामताप्रसाद गुरु ने हिंदी व्याकरण[2] में ऐसे तत्सम उपसर्गों तथा उपसर्गों के समान व्यवहृत संस्कृत विशेषण तथा अव्ययों की एक पूर्ण सूची दी है। उपसर्गों के इतिहास की दृष्टि से इन तत्सम उपसर्गों में कोई विशेषता नहीं दिखलाई जा सकती, अतः अनावश्यक समझ कर इन्हें यहाँ नहीं दिया गया है।

ख. तद्भव उपसर्ग[3]

१७३. प्रचलित तद्भव उपसर्ग व्युत्पत्ति सहित नीचे दिए जा रहे हैं—

अ<सं० अ : यह संस्कृत उपसर्ग है किन्तु तद्भव शब्दों में भी इसका स्वतन्त्रता पूर्वक प्रयोग होता है, जैसे, *अथाह, अजान*। संस्कृत में स्वर से प्रारंभ होने वाले शब्दों के पूर्व *अ* के स्थान पर *अन्* हो जाता है जैसे, *अनेक*।

---

[1] उपसर्ग उस अक्षर या अक्षर-समूह को कहते हैं जो शब्दरचना के निमित्त शब्द के पहले लगाया जाता है, जैसे 'रूप' शब्द में 'अनु' उपसर्ग लगाकर 'अनुरूप' शब्द की रचना हो जाती है।

[2] गु., हि. व्या., § ४३४, § ४३५ (क)

[3] गु., हि. व्या., § ४३५ (क)

हिंदी में व्यंजन से प्रारम्भ होने वाले शब्दों के पूर्व भी अ के स्थान पर अन मिलता है जैसे, *अनमोल, अनगिनती।*

अध	<	*सं० अर्द्ध*	:	*आधा,*	*अधबिच,*	*अधकचरा*
उन	<	*स० ऊन*	:	*एक कम,*	*उन्नीस,*	*उन्तीस*
औ	<	*सं० अव*	:	*हीन,*	*औघट,*	*औगुन*
दु	<	*स० दुर्*	:	*बुरा,*	*दुबला,*	*दुकाल*
दु	<	*स० द्वौ*	:	*दो,*	*दुधारा,*	*दुमुहाँ*
नि	<	*स० निर्*	:	*रहित,*	*निकम्मा,*	*निडर*
बिन	<	*सं० बिना*	:	*अभाव,*	*बिनब्याहा,*	*बिनबोर*
भर	<	*स० √भृ*	:	*पूरा,*	*भरपेट,*	*भरसक*

ग. विदेशी उपसर्ग

(१) फ़ारसी-अरबी

१७४. फारसी-अरबी उपसर्गों की भी एक पूर्ण सूची गुरु के हिंदी व्याकरण[1] में दी हुई है। उसी के अनुसार नीचे मुख्य-मुख्य उपसर्ग दिए जा रहे हैं।

कम	:	*थोड़ा,*	*कमज़ोर*	*कम उम्र*
			कम समझ,	*कम दाम*
खुश	:	*अच्छा*	*खुशबू,*	*खुशदिल*
ग़ैर	:	*भिन्न,*	*ग़ैरमुल्क,*	*ग़ैरहाज़िर*
दर	:	*में*	*दरअसल,*	*दरहकीक़त*

---

[1] गु., हि. व्या., § ४३५ (क)

ना	: अभाव	, नापसंद	, नालायक़
ब	: अनुसार	, बदस्तूर	, बदौलत
बद	: बुरा	, बदमाश	, बदनाम
बिला	: बिना	, बिला कुसूर	, बिलाशक
बे	: बिना	, बेईमान	, बेरहम
ला	: बिना	, लाचार	, लावारिस
सर	: मुख्य	, सरकार	, सरदार, सरपंच
हम	: साथ	, हमदर्दी	, हमउम्र
हर	: प्रत्येक	, हररोज़	, हर चीज
		हरघड़ी	, हर काम

(२) अंग्रेज़ी

१७५. कुछ अंग्रेज़ी शब्द भी हिंदी में उपसर्ग के समान व्यवहृत होते हैं। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :—

सब : अं० सब : सब ओवरसियर, सब रजिस्ट्रार

हेड : अं० हेड : हेड पंडित, हेडमास्टर

आ. प्रत्यय[1]

क. तत्सम प्रत्यय

१७६. तत्सम उपसर्गों के समान तत्सम प्रत्यय भी तत्सम शब्दों के साथ बहुत बड़ी संख्या में हिंदी में आ गए हैं। प्रत्ययों के इतिहास

---

[1] प्रत्यय उस अक्षर या अक्षर-समूह को कहते हैं जो शब्द रचना के निमित्त शब्द के बाद में लगाया जाता है जैसे 'बूढ़ा' शब्द में 'पा' प्रत्यय लगाकर बुढ़ापा शब्द बन जाता है।

की दृष्टि से इनको यहाँ देना व्यर्थ समझा गया। इनमें से जिनका प्रयोग तद्भव तथा विदेशी शब्दों के साथ होने लगा है उन्हें तद्भव प्रत्ययों की सूची में शामिल कर लिया गया है। संस्कृत कृदंत और तद्धित प्रत्ययों तथा प्रत्ययों के समान व्यवहृत संस्कृत शब्दों की पूर्ण सूचियाँ पं० कामताप्रसाद गुरु के हिंदी व्याकरण में दी हुई हैं।[1]

ख. तद्भव तथा देशी प्रत्यय

१७७. हिंदी में व्यवहृत तद्भव तथा देशी प्रत्ययों पर नीचे विचार किया गया है। तद्भव प्रत्ययों में यथासंभव संस्कृत तत्सम रूप देने का यत्न किया गया है। देशी तथा कुछ अन्य प्रत्ययों का इतिहास नहीं दिया जा सका है। देशी माने जाने वाले प्रत्ययों में कुछ ऐसे हो सकते हैं जो खोज के बाद तद्भव साबित हों।

१७८. अ (कृ० भाववाचक संज्ञा, विशेषण, पूर्वकालिक कृदंत, अव्यय) यह प्रत्यय संस्कृत पु० अः, स्त्री० तथा नपुं० अम् की प्रतिनिधि है।[2]

बोल :	*बोलना*
चाल :	*चलना*
मेल :	*मिलना*
देख :	*देखना*

---

[1] संस्कृत में धातुओं के उपरान्त जो प्रत्यय लगाए जाते हैं उन्हें 'कृत' कहते हैं [और इन]के लगाने से जो शब्द बनते हैं उन्हें 'कृदंत' कहते हैं। धातुओं को छोड़कर [अन्य शब्दों] के आगे प्रत्यय लगाकर जो शब्द बनते हैं उन्हें 'तद्धित' कहते हैं। हिंदी में [इस भेद] को अनावश्यक समझ कर प्रत्ययों के इस वर्गीकरण का यहाँ अनुसरण नहीं [किया गया] है।

[1] गु., हि. व्या., § ४३५ (क), ४३५ (ख)

[2] चै., इ. लैं., § ३९५

१७९. अक्कड़ (कृ०, कर्तृवाचक)[1]

यह देशी प्रत्यय मालूम होता है।

पियक्कड़ :	*पीना*
भुलक्कड़ :	*भूलना*

१८०. अन्त (कृ०, भाववाचक)[1]

इसका सम्बन्ध सं० वर्तमान-कालिक कृदंत प्रत्यय अंत (शतृ) से मालूम होता है यद्यपि आधुनिक प्रयोग कुछ भिन्न हो गया है।[1]

रटन्त :	*रटना*
गढ़न्त :	*गढ़ना*

१८१. आ (कृ०, भूतकालिक कृ०, भाववाचक संज्ञा, करण-वाचक संज्ञा)[1]

इसका सम्बन्ध निरर्थक प्रत्यय *आ* के साथ सं०—त (क्त)–इत > प्रा०—अ,—इअ से जोड़ा जाता है।[1]

मरा :	*मरना*
घेरा :	*घेरना*
पोता :	*पोतना*

१८२. आ (त० विशेषण, स्थूलता-वाचक संज्ञा)[1]

मैला :	*मैल*
लकड़ा :	*लकड़ी*

१८३. आइंद (त० भाववाचक संज्ञा)[1] <+गन्ध

---

[1] गु., हि., व्या, ४३५(ख)

[2] बे. बें., लैं., § ३९५

खाऊ	:	खाना
उड़ाऊ	:	उड़ाना

यह प्रत्यय योग्यता के अर्थ में तथा तद्धित गुणवाचक शब्द बनाने के लिए भी प्रयुक्त होता है।[1]

१८६. आक, आका (कर्तृवाचक संज्ञा)

हार्नली के अनुसार इसका सम्बन्ध सं० कृ० अक या आपक से है, जैसे सं० उड्डापक, प्रा० उड्डावके या उड्डाअके, हि० उड़ाका।

तैराक	:	तैरना
लड़ाका	:	लड़ना

अनुकरण-वाचक शब्दों में आका लगा कर भाववाचक संज्ञाएँ (त०) बनती हैं, जैसे धड़ाका : धड़, सड़ाका : सड़।[2]

१८७. आका, आटा (त० भाववाचक संज्ञा)[3]

अनुकरण-वाचक शब्दों में प्रायः ये प्रत्यय लगते हैं।

धड़ाका	:	धड़
सड़ाका	:	सड़
सनाटा	:	सन

१८८. आन (कृ० त०, भाववाचक संज्ञा)

चैटर्जी[4] के अनुसार इसका संबंध सं० आन्—अन—आन्—अन—क से है।

---

[1] चै., बे. लै., § ४२८
[2] गु., हि. व्या., § ४३५ (ग)
[3] गु., हि. व्या., § ४३५ (ख)
[4] चै., बे. लै., § ४०८

कपड़ाइंद :	*कपड़ा*
सड़ाइंद :	*सड़ा*

१८४. *आई* (कृ० भाववाचक संज्ञा)[1]

हार्नली[2] इस प्रत्यय का सम्बन्ध सं० त० स्त्री० *ता*>प्रा० *दा* या *आ* से मानते हैं। निरर्थक *क* जोड़ने से सं० *तिका*, प्रा० *दिआ* या *इआ*, हि० *आई* हो गया, जैसे सं० *मिष्टता* या *मिष्टतिका*, प्रा० *मिट्ठइआ*, हि० *मिठाई* हो गया।

चैटर्जी[3] और हार्नली में मतभेद है। चैटर्जी के अनुसार यह प्रत्यय म० भा० आ० काल का है और इसका सम्बन्ध धातु के प्रेरणार्थक रूप से बनी हुई स्त्रीलिंग क्रियार्थक संज्ञाओं से है, जैसे सं० *याचापिका** रूप से हि० *जँचाई* रूप बन सकता है।

लड़ाई :	*लड़ना*
खुदाई :	*खुदना*

१८५. *आऊ* (कृ० कर्तृवाचक संज्ञा)

हार्नली[4] के अनुसार यह प्रत्यय सं० कृ० *तृ* अथवा निरर्थक *क* सहित *तृक* से निकला है। प्रा० में *ऋ* का *उ* में परिवर्तन हो जाने के कारण इस प्रत्यय का प्राकृत रूप *उ* या *उओ* हो गया था जैसे सं० *खादिता* (मूलरूप *खादितृ*), प्रा० *खाइउ* या *खाइउओ*, हि० *खाऊ*। चैटर्जी[5] सं० *उक* से इसकी व्युत्पत्ति को मानना ठीक समझते हैं।

---

[1] गु., हि. व्या., § ४३५ (ग)
[2] हा., ई. हि. ग्रै., § ३२१
[3] चै., बे. लै., § ४०२
[4] हा., ई. हि. ग्रै., § ३३१
[5] चै., बे. लै., § ४७८

खाऊ	:	खाना
उड़ाऊ	:	उड़ाना

यह प्रत्यय योग्यता के अर्थ में तथा तद्धित गुणवाचक शब्द बनाने के लिए भी प्रयुक्त होता है।[1]

१८६. आक, आका (कर्तृवाचक संज्ञा)

हार्नली के अनुसार इसका सम्बन्ध सं० कृ० अक या आपक से है, जैसे सं० उड्डापक, प्रा० उड्डावके या उड्डाअके, हि० उड़ाका।

तैराक	:	पैरना
लड़ाका	:	लड़ना

अनुकरण-वाचक शब्दों में आका लगा कर भाववाचक संज्ञाएँ (त०) बनती हैं, जैसे धड़ाका : धड़, सड़ाका : सड़।[2]

१८७. आका, आटा (त० भाववाचक संज्ञा)[3]

अनुकरण-वाचक शब्दों में प्रायः ये प्रत्यय लगते हैं।

धड़ाका	:	धड़
सड़ाका	:	सड़
सनाटा	:	सन

१८८. आन (कृ० त०, भाववाचक संज्ञा)

चैटर्जी[4] के अनुसार इसका संबंध सं० आर्—अन—आप्—अन—क से है।

---

[1] चै., बे. लै., § ४२८
[2] गु., हि. व्या., § ४३५ (ग)
[3] गु., हि. व्या., § ४३५ (ख)
[4] चै., बे. लै., § ४०८

उठान : *उठना*
लम्बान : *लम्बा*

१८९. *आना* (त० स्थानवाचक संज्ञा)

राजपूताना : *राजपूत*
सिरहाना : *सिर*

१९०. *आनी* (त० स्त्रीलिंग संज्ञा)

यह संज्ञा तत्सम *आनी* से प्रभावित प्रत्यय है, जैसे सं० *इन्द्र* > *इन्द्राणी*।

गुरुआनी : *गुरु*
पंडितानी : *पडित*

१९१. *आप, आपा,* (कृ० भाववाचक संज्ञा)[1]

मिलाप : *मिलना*
पुजापा : *पूजना*

१९२. *आयत, आइत,* (त० भाववाचक संज्ञा)

इनका संबंध सं० *वत्, मत्* से जोड़ा जाता है।[2] प्राकृत में *वं* *वंत, मंत* हो गए थे और इन रूपों के साथ-साथ *इंत* या *इत्त* रूप भी मिलता है। मूल शब्द के *अ* सहित इन का रूप *अवंत, अमंत* या *अअंत, आयंत* या *अइंत* या *इंत* हो सकता है।

वहुताइत : *वहुत*
पंचायत : *पच*

---

[1] पी., वे. लै., § ४८
[2] ..., ई. हि. ग्रै., § २४०
चा., क., ग्रै., भा. २, § २०

१९३. *आर, आरी* (त० कर्तृवाचक संज्ञा)

ये प्रत्यय संस्कृत *कार, कारिक* के वर्तमान रूप हैं।[1]

सं० *कुम्भकार* > प्रा० *कुम्हआरो* > हि० *कुम्हार*

सं० *पूजाकारिक:* > प्रा० *पूजआलिए* > हि० *पुजारी*

१९४. *आरा, आरी* (*आर* के पर्यायवाची)

हर्नली[2] इनकी व्युत्पत्ति संबंधकारक के प्रत्ययों से जोड़ते हैं, सं० *कृत*> प्रा० *केरं*> हि० *का, आरा*।

पुजारी	:	*पूजा*
भिखारी	:	*भीख*
घसिआरा	:	*घास*

१९५. *आड़ी खिलाड़ी* : *खेल*

१९६. *आल, आला* (त० संज्ञा)[3]

यह सं० *आलय* का वर्तमान रूप है, जैसे सं० *श्वशुरालय* > हि० *ससुराल*, सं० *शिवालय* > हि० *शिवाला*

ससुराल	:	*ससुर*
शिवाला	:	*शिव*

---

[1] चै., बे. लै., § ४१२
हा., ई. हि. ग्रै., § २७७
बी.क. ग्रै., भा० २, § २५
हा., ई. हि. ग्रै., § २७४
हा., ई. हि. ग्रै., § २४४-२४८
चै., बे. लै., § ४१६-४१७

भुलावा	:	*भुलाना*
सजावट	:	*सजाना*
कहावत	:	*कहना*

आवना (कृ० विशेषण) की व्युत्पत्ति भी *आव* के ही समान हो सकती है।

डरावना	:	*डराना*
सुहावना	:	*सुहाना*

२००. *आस*, *आसा* (कृ० त०, भाववाचक संज्ञा)

हार्नली[1] इन प्रत्ययों को संस्कृत सं० *वाञ्छा* (इच्छा) का संक्षिप्त तथा परिवर्तित रूप मानते हैं, जैसे सं० *निद्रावाञ्छा*> प्रा० *निद्दवछा*> हि० *निंदासा*, किंतु यह व्युत्पत्ति अत्यंत संदिग्ध है। हि० *पियासा* का संबंध सं० *पिपासा* से है।

रुआसा	:	*रोना*
निंदास	:	*नींद*

२०१. *आहट* (कृ० त०, भाववाचक संज्ञा)

हार्नली[2] के अनुसार इसका संबंध सं० *वृत्ति*, *वृत्त* या *वार्त* संज्ञाओं से है। प्रा० में ये *वट्टी*, *वट्ट* या *वत्ता* हो जाते हैं। बीम्स[3] के अनुसार यह सं० *ऋतु* या *आतु* से निकला है।

कड़ुवाहट	:	*कड़ुवा*
चिकनाहट	:	*चिकना*

---

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § २८३
[2] हा., ई. हि. ग्रै., § २८८
[3] बी., क., ग्रै., भा. २, § १६

२०२. *इन* या *आइन* (स्त्रीलिंग)

व्युत्पत्ति की दृष्टि से ये *आनी* के समान हैं।

मुंशियाइन : *मुंशी*
बरेठिन : *बरेठा*

२०३. *इयल* (कृ०, कर्तृवाचक)

अड़ियल : *अड़ना*
मरियल : *मरना*

२०४. *इया* (त० कर्तृवाचक)

इसकी व्युत्पत्ति सं० *इय*, *ईय* या *इक* से हो सकती है।[1]

पर्वतिया : *पर्वत*
कनौजिया : *कनौज*

२०५. *ई* (त०, संज्ञा, विशेषण)

प्राचीन कई प्रत्ययों ने हिंदी में *ई* का रूप धारण कर लिया है।[2]

(१) सं० *इन्*> हि० *ई*, जैसे सं० *मालिनः* हि० *माली*।

(२) सं० *ईय*> हि० *ई*, जैसे सं० *देशीयः* हि० *देशी*।

(३) सं० *इक*> हि० *ई*, जैसे सं० *तैलिकः*> हि० *तेली*।

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § १८
चै., वे. लै., § ४२१
[2] चै., वे. लै., § ११८
बी., क. ग्रै., भा. २, § १८

स्त्रीलिंग-वाचक हि० ई की व्युत्पत्ति सं० इक से मानी जाती है।[1]

घोड़ी	:	*घोड़ा*
पगली	:	*पागल*

ई (कृ०) कुछ क्रियार्थक संज्ञाओं में भी पाई जाती है। स रूप में यह संस्कृत तत्सम प्रत्यय है।[2]

हँसी	:	*हँसना*
घुड़की	:	*घुड़कना*

१०६. ईला (त० विशेषण)

हार्नली[3] के मतानुसार इसका संबंध प्रा० इल्ल से है। ाकृत से ही कदाचित् यह प्रत्यय इल रूप में संस्कृत के कुछ शब्दों i पहुँच गया, जैसे सं० मैथि>मथिला

पथरीला	:	*पत्थर*
रंगीला	:	*रंग*
गँठीला	:	*गाँठ*

२०७. एर, एरा (कृ० कर्तृवाचक, त० भाववाचक)

हार्नली[6] के अनुसार उनका संबंध सं० दश (सदृश) से माना जाता है। प्राकृत में इस प्रकार के प्रत्यय बराबर पाए जाते हैं।

---

[1] बे., बे. लैं., § ४१९
[2] बे., बे., लैं., § ४२०
[3] हा., ई. हि. ग्रै., § २४२
बो., क. पै. भा. २, § १८
बे., बे. लै. § ४२५, ४२६
[6] हा., ई. हि. ग्रै., § २५१, २१७, २१८

अंधेर अंधेरा	:	*अंध*
बसेरा	:	*बसना*
ममेरा	:	*मामा*

हि० *एड़ी* जैसे *मँगेड़ी*, *एली* जैसे *हथेली*, *एल* जैसे *फुलेल*, *एला* जैसे *अधेला*, *ऐल* जैसे *खपड़ैल* आदि समस्त प्रत्यय व्युत्पत्ति की दृष्टि से एर, एरा के सदृश माने जाते हैं।

२०८. ऐत (कृ० कर्तृवाचक)

व्युत्पत्ति के लिए दे० *आयत*।

डकैत	:	*डाका*
लड़ैत	:	*लड़ना*

२०९. *ओड़, ओड़ा*

हँसोड़	:	*हँसना*
हथौड़ा	:	*हाथ*

२१०. *ओला*

खटोला	:	*खाट*

२११. *औता, औटा, ओती, ओटी, औती, औटी* (कृ० त० संज्ञा)

व्युत्पत्ति के लिए दे० *आयत*।

चुकौता, चुकौती	:	*चुकाना*
कजरौटा	:	*काजर*
बपौती	:	*बाप*
कसौटी	:	*कसना*

२१२. *औना, औनी, आवना, आवनी* (कृ०)

हार्नली[1] के अनुसार इन सब का संबंध सं० *अनीय*> प्रा० *अणीअ, अणिअ, अणअ* से है।

खिलौना	:	*खेलना*
मिचौनी	:	*मिचाना*
पहरावनी	:	*पहराना*
डरावना	:	*डराना*

२१३. औवल (कृ० भाववाचक)

बुझौवल	:	*बूझना*
मिचौवल	:	*मीचना*

२१४. क, अक (कृ० त०)

चैटर्जी[2] के अनुसार यह सं० *अत् अंत* वाले क्रिया के रूपों में *कृत* लगा कर बना था। प्रा० में इसका रूप *अक्क* मिलता है, जैसे हि० *चमक*<प्रा० *चमक्क*<सं० *चमत्कृत*। अतः इस की उत्पत्ति सं० *कृत्* से मानी जा सकती है। सं० प्रत्यय *अ-क* का प्रभाव भी कुछ शब्दों पर हो सकता है। हार्नली के मतानुसार *अक, आक* इ० का संबंध *अक* से है।

फाटक	:	*फाड़ना*
बैठक	:	*बैठना*
घमक	:	*घम*

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § ३२१

[2] चै., बे. ले., § ४३०, ४३१

बी., क. ग्रै., भा. २, § ९

हा., ई. हि. ग्रै., § ३३८

२१५. का (कृ० त०)

हार्नली[1] के मतानुसार इसका संबंध भी संबंधकारक के प्रत्ययों से है (दे० हा०, ई० हि० ग्रै०, § ३७७)

मैका	:	*मा*
लड़का	:	*लाड़*

२१६. *गी* (कृ०) >*का—गी*

देनगी	:	*देना*
बानगी	:	*बान*

यह प्रत्यय वास्तव में विदेशी प्रत्ययों के अन्तर्गत जाना चाहिए।

२१७. ड़ ड़ी[2] (त०)

टुकड़ा	:	*टूक*
मुखड़ा	:	*मुख*

२१८. जा (त०)

सं० जात का वर्तमान रूप बहुत से हिंदी शब्दों में मिलता है।

भतीजा	:	*भाई*
भानजा	:	*बहिन*

२१९. *टा, टी०*[3] (त०)

इनका संबंध सं० √वृत् > प्रा० वट्ट से है। दे० *आहट*।

कलूटा	:	*काला*
बहूटी	:	*बहू*

---

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § २८०

[2] बी., क. ग्रै., भा. २, § २४

[3] चै., बे. लैं., § ४३६

२२०. ड़ा ड़ी (त०)

इनका संबंध (१) सं० वाट (जैसे अखाड़ा) (२) सं० ट>प्रा० ड़ (जैसे पंखुड़ी) से माना जाताहै।[1]

२२१. त ता (कृ० त०)

(१) भाववाचक संज्ञाओं में पाए जाने वाले त प्रत्यय का संबंध सं० त्व>प्रा० त्त से माना जाता है।[2] हिंदी में इस प्रत्यय से बने हुए रूप स्त्रीलिंग हो जाते हैं, इस कारण यह व्युत्पत्ति संदिग्ध है।

बचत	:	बचना
रखत	:	रखना
रंगत	:	रंग

(२) कुछ हिंदी संज्ञाओं में त सं० पुत्र, पुत्रिक, या पुत्रिका का अवशिष्ट रूप है।[3]

जिठौत	:	जेठ
बहिनौत	:	बहिन

(३) वर्तमान-कालिक कृदंत ता का संबंध सं० अत्> प्रा० अंत से माना जाता है।[4]

जीता	:	जीना
खाता	:	खाना

---

[1] बी., हे. सै., § ४४०, ४४१
[2] बी., हे. सै., § ४४२
[3] बी., हे. सै., § ४४४
[4] ए., ई. हि. है., § १०१

२२२. *न, ना, नी* (कृ० त०)

हार्नली[1] इन सब प्रत्ययों का संबंध सं० *अनीय* प्रा० *अणीअ* या *अणअ* से जोड़ते हैं। स्त्रीलिंग द्योतक बहुत सी संज्ञाओं में सं० *इन्* का प्रभाव भी है।[2]

रहन	:	*रहना*
घिनौना	:	*घिन*
होनी	:	*होना*
चाँदनी	:	*चाँद*

२२३. *पा, पन* (त० भाववाचक संज्ञा)

इन प्रत्ययों का सम्बन्ध सं० *त्व, त्वन्* > प्रा० *प्पणं* से जोड़ा जाता है, जैसे सं०, *वृद्धत्वं* > प्रा० *वुड्ढप्पं* हि० *बुढ़ापा*।[3]

बुढ़ापा	:	*बूढ़ा*
मुटापा	:	*मोटा*
लड़कपन	:	*लड़का*
कालापन	:	*काला*

---

[1] चे., चै. ठै., § ३२१
[2] चै., बे. लै., § ४४५
[3] हा. ई. हि. ग्रै., § २३१
[4] ...., क. ग्रै., भा. २, § १७
[5] ...., बे. लै., § ४४६

२२४. व (त०)

अव	:	यह.
जव	:	जो

२२५. *री* (त०)

कोठरी	:	कोठा
मोटरी	:	मोट

२२६. रू (त०)

चैटर्जी[1] के अनुसार इसका संबंध सं० रूप > प्रा० रूव से है।

गोरू (गोरूप)	:	*गो*
पखेरू (पक्षरूप)	:	पंखी
मिहरारू (महिलारूप)		

२२७. *ला, ला, ली* (त०)

चैटर्जी[2] इन प्रत्ययों का संबंध सं० ल से जोड़ते हैं। बीम्स[3] के अनुसार इस प्रकार के अधिकांश प्रत्ययों का सम्बन्ध सं० इल > प्रा० इल्ल से है।

घायल	:	घात
गंठीला	:	*गांठ*
सहेली	:	*सखी*
टिकली	:	*टीका*

---

[1] चै., बे. लै., § ४४८
[2] चै., बे. लै., § ४४९
[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § १८

१६

२२८. वान् (त०)

इस प्रत्यय का संबंध स्पष्ट ही सं० मतुप् से है जिस के मान्, वान् आदि रूप होते हैं।

गुणवान	:	गुण
धनवान	:	धन

२२९. वां (त०)

हार्नली[1] के अनुसार इसका संबंध सं० म के स्थान क सहित मक से है, जैसे सं० पञ्चमः या पचमकः > प्रा० पचमओ या पचँओ > हि० पांचवां।

पांचवां	:	पांच
सातवां	:	सात

२३०. वाल, वाला (त०)

हार्नली के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति सं० पाल से है।

ग्वाला>सं० गोपालक	:	गो
गाड़ीवाला	:	गाड़ी
कोतवाल (कोटपालक)		
प्रयागवाल	:	प्रयाग

---

[1] [illegible] § २०
[2] [illegible] § २३६
[3] [illegible] § २११
[4] [illegible] § २०६

२३१. *वैया* (कृ० कर्तृवाचक)

इस प्रत्यय का मूल रूप हार्नली[1] के अनुसार सं० *तव्य+इ*> प्रा० *एअव्वं* या *इअव्वं* है।

खवैया	:	*खाना*
गवैया	:	*गाना*

२३२. *सा* (त०)

इसका संबंध हार्नली[2] सं० *सदृशक:** > प्रा० *सड्अए,** *सड्अ** से जोड़ते हैं। चैटर्जी इस मत से सहमत नहीं हैं और इसका संबंध सं० *श* (जैसे सं० *कपि-श,कर्क-श*) से लगाते हैं। बीम्स[3] का मत इन दोनों से भिन्न है।[4]

हाथीसा	:	*हाथी*
वैसा	:	*वह*

२३३. *सरा*[5]

इसकी व्युत्पत्ति सं० √*सृ* > *सृत:* से मानी जाती है, जैसे सं० *द्विस्सृत:* > प्रा० *दूसलिए* > हि० *दूसरा*।

तीसरा	*तीन*
दूसरा	*दो*

[1] हा., ई. हि., ग्रै., § ३१४
[2] हा., ई. हि. ग्रै., § २९२
[3] चै., वे. लै., § ४५०
[4] बी., क. ग्रै., भा० २, § १७
[5] हा., ई. हि. ग्रै., § २७१
[6] चै., वे. लै., § ४५२

२३४. *हरा*[1]

इस प्रत्यय का संबंध सं० *हार* (भाग) से [illegible] गया है।

दुहरा	:	दो
इकहरा	:	एक

रंडहर, पीहर आदि शब्दों में हर सं० *घर* का परिवर्तित रूप है।

२३५. *हार, हारा*

हार्नली[2] ने इनका संबंध सं० *कार्य* से जोड़ा है, किन्तु यह व्युत्पत्ति बिल्कुल भी संतोषजनक नहीं है।

होनहार	:	*होना*
पढ़नेहारा	:	*पढ़ना*
लकड़हारा	:	*लकड़ी*

२३६. *हा* (कृ० कर्तृवाचक, त० गुणवाचक)

कटहा	:	*काटना*
मरखहा	:	*मारना*
पनिहा	:	*पानी*
हलवाहा	:	*हल*

ग. विदेशी प्रत्यय

फ़ारसी अरबी

२३७. गुरु[3] के हिंदी व्याकरण में हिंदी में प्रचलित फारसी-अरबी शब्दों में पाए जाने वाले प्रत्ययों की सूची दी है। इनमें से कुछ वे

---

[1] बे., वे. लै., § ४५४
[2] हा., ई. हि. ग्रै., § ३२१
[3] गु. हि. व्या. § ४३६-४४२ (ग)

त्यय नीचे दिए जाते हैं जिनका प्रयोग हिंदी शब्दों में भी होने गा है। कुछ प्रत्यय चैटर्जी[1] के ग्रंथ से भी लिए हैं।

ई (त० भाववाचक संज्ञा)

ख़ुशी	:	*ख़ुश*
नवाबी	:	*नवाब*
दोस्ती	:	*दोस्त*

कार (त० कर्तृवाचक)

पेशकार	:	*पेश*
जानकार	:	*जान*

दान, दानी (त० पात्रवाचक)

इत्रदान	:	*इत्र*
चायदान	:	*चाय*
गोंददान	:	*गोंद*

बान, वान (त० कर्तृवाचक)

बाग़वान	:	*बाग़*
गाड़ीवान	:	*गाड़ी*

आना

घराना	:	*घर*
साहिबाना	:	*साहिब*

ख़ाना

छापाख़ाना	:	*छापा*
गाड़ीख़ाना	:	*गाड़ी*

---

[1] चै., बे. लैं., § ४६८

ख़ोर

घूसख़ोर	:	घूस
चुग़लख़ोर	:	चुग़ली

गीरी फ़ा० गीर या गरी

कारीगरी	:	कार
बाबूगीरी	:	बाबू

ची फ़ा० च़ह्. का रूपांतर

देगची	:	देगचा
चमची	:	चमचा
बग़ीची	:	बग़ीचा

बाज़, बाजी

रंडीबाजी	:	रंडी
कबूतरबाजी	:	कबूतर

अध्याय ६

संज्ञा

मूलरूप तथा विकृत रूप

२३८. हिंदी में कारकों की संख्या उतनी ही है जितनी संस्कृत में, किंतु प्रत्येक कारक में भिन्न-भिन्न संयोगात्मक रूप नहीं होते। संस्कृत में आठ विभक्तियों और प्रत्येक विभक्ति में तीन वचनों के रूपों को मिला कर प्रत्येक संज्ञा में चौवीस रूपांतर हो जाते हैं। फिर भिन्न-भिन्न अंतवाली संज्ञाओं के रूप पृथक्-पृथक् होते हैं। लिंगभेद से भी रूपों में भेद हो जाता है। इस तरह किसी एक संज्ञा के चौवीस रूप जान लेने से भिन्न अंत अथवा लिंग वाली संज्ञा के रूपांतर बना लेना साधारणतया संभव नहीं होता।

हिंदी में द्विवचन तो होता ही नहीं है। भिन्न-भिन्न कारकों के एकवचन तथा बहुवचन में भी संज्ञा मे चार से अधिक रूप नहीं पाए जाते। *प्रथमा* बहुवचन तथा समस्त अन्य कारकों के एकवचन तथा बहुवचन के रूपों में अंत, वचन तथा लिंगभेद के अनुसार कुछ भेद पाए जाते हैं। इन्हीं रूपों में भिन्न-भिन्न कारक चिह्न लगाकर, तथा कुछ प्रयोगों में बिना लगाए भी भिन्न-भिन्न विभक्तियों के रूप बना लिए जाते हैं। उदाहरण के लिए, *राम* शब्द के संस्कृत तथा हिंदी के रूप नीचे दिए जाते हैं—

संस्कृत

	एक०	द्वि०	बहु०
कर्ता	रामः	रामौ	रामाः
कर्म	रामम्	रामौ	रामान्
करण	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
संप्रदान	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
अपादान	रामात्	"	"
संबंध	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
अधिकरण	रामे	"	रामेषु
संबोधन (हे)	राम	रामौ	रामाः

हिंदी

	एक०	बहु०
कर्ता	राम	राम
कर्म	" को	रामों को
करण	" से	" से
संप्रदान	" को	" क
अपादान	" से	" स
सम्बंध	" का के, की	" क
अधिकरण	" में	" में
संबोधन (हे)	" राम	(हे)

ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि हिंदी के
. [illegible] के रूपों से बिल्कुल भी नहीं है। ब्रजभाषा 3
। बोलियों में कुछ संयोगात्मक रूप अवश्य मिलते हैं,
म० घरै (हि० घर को), संप्रदान म० रामै (हि० राम

किंतु खड़ीबोली हिंदी की संज्ञाओं में ऐसे रूपों का व्यवहार नहीं पाया जाता।

२३९. कारक-चिह्न लगाने के पूर्व हिंदी संज्ञा के मूलरूप में जब परिवर्तन किया जाता है तो ऐसे रूपों को संज्ञा का विकृत रूप कहते हैं। हिंदी में संज्ञा के चार रूपों—दो मूल और दो विकृत—के उदाहरण भी प्रत्येक संज्ञा में भिन्न नहीं पाए जाते। भिन्न-भिन्न अंत वाली संज्ञाओं में मिलाकर ये चारों रूप अवश्य मिल जाते हैं। नीचे के उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जावेगी।

		एक०	बहु०
मूलरूप	(कर्ता)	*घोड़ा*	*घोड़े*
विकृत रूप	(अन्य कारक)	*घोड़े*	*घोड़ों*
मूलरूप	(कर्ता)	*लड़की*	*लड़की, लड़कियाँ*
विकृत रूप	(अन्य कारक)	*लड़की*	*लड़कियों*
मूलरूप	(कर्ता)	*घर*	*घर*
विकृत रूप	(अन्य कारक)	*घर*	*घरों*
मूलरूप	(कर्ता)	*किताब*	*किताब*
विकृत रूप	(अन्य कारक)	*किताब*	*किताबों*

बहुवचन के भिन्न रूपों की व्युत्पत्ति के संबंध में वचन के शीर्षक में विचार किया गया है। कुछ आकारान्त शब्दों के एकवचन में भी कर्ता को छोड़कर अन्य कारकों में एकारान्त विकृत रूप पाया जाता है (कर्ता एक० घोड़ा, अन्य कारक एक० घोड़े)[1]। इस विकृत रूप की व्युत्पत्ति के संबंध में प्रायः समस्त विद्वानों का एक मत है। यह रूप संस्कृत एकवचन की भिन्न-भिन्न विभक्तियों के रूपों का अवशेष मात्र माना जाता है।

[1] इसके अपवादों के लिए दे. गु., हि. व्या., § ३१०

हिंदी संज्ञाओं के मूल तथा विकृत रूपों में होने वाले अन्य संभावित परिवर्तन नीचे दिखलाए गए हैं।

	पुंल्लिंग		स्त्रीलिंग	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
	आकारान्त कुछ			
मूलरूप	-आ	-ए	×	-एँ
विकृत रूप	-ए	-ओं	×	-ओं
	अन्य			
मूल रूप	×	×	×	(-एँ,-आँ)
विकृत रूप	×	-ओं	×	-ओं

सूचना—(१) ईकारान्त तथा ऊकारांत शब्दों में ओं लगाने के पूर्व ईकार तथा ऊकार के स्थान में इकार तथा उकार हो जाता है।

(२) स्त्रीलिंग के अन्य रूपों में इकारांत अथवा ईकारांत तथा ऊकारांत संज्ञाओं के मूलरूप बहुवचन में इआँ, इएँ तथा उएँ रूप भी होते हैं।

आ. लिंग

२४०. प्रकृति में जड़ और चेतन, दो प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं। चेतन पदार्थों में पुरुष और स्त्री का भेद होता है। कभी-कभी चेतन पदार्थ को लिंगभेद की दृष्टि के बिना भी सोचा जा सकता है। इस प्रकार प्राणियों में लिंग की दृष्टि से चेतन पदार्थों के तीन भेद हो

[1]बी., क. ग्रै., भा. ३, § २९

सकते हैं—(१) पुरुष, (२) स्त्री तथा (३) लिंग की भावना के बिना चेतन पदार्थ। व्याकरण में स्वाभाविक रीति से इनके लिए क्रम से (१) पुल्लिंग, (२) स्त्रीलिंग तथा (३) नपुंसक लिंग शब्दों का प्रयोग करते हैं। अचेतन पदार्थों को प्रायः नपुंसक लिंग के अन्तर्गत रख लिया जाता है। इस क्रम से मिलता-जुलता लिंगभेद संस्कृत और अंग्रेजी में, तथा मराठी, गुजराती आदि के कुछ रूपों में है, यद्यपि कभी-कभी कुछ जड़-पदार्थों को चेतन मान कर, नमें भी चेतन पदार्थों के पुल्लिंग-स्त्रीलिंग भेद का आरोप कर दया जाता है।

भिन्न-भिन्न लिंग वाले पदार्थों के लिए पृथक् शब्द रहने पर भी लंग के कारण कभी-कभी संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, या क्रिया के रूपों में परिवर्तन करना व्याकरण-संबंधी लिंगभेद का शुद्ध क्षेत्र है। प्राकृतिक लिंगभेद तो प्रत्येक भाषा में समान-रूप से वर्तमान है, किंतु व्याकरण-संबंधी लिंगों की संख्या तथा मात्रा भिन्न-भिन्न भाषाओं में पृथक्-पृथक् है। उदाहरण के लिए संस्कृत में विशेषण, कृदंत तथा अन्य पुरुषवाची सर्वनाम के रूप पुल्लिंग-स्त्रीलिंग तथा नपुंसक लिंग में भिन्न होते हैं। अंग्रेज़ी में केवल अन्य पुरुष सर्वनाम के रूपों में भेद किया जाता है। लिंगों की संख्या के संबंध में भारतीय आर्यभाषाओं में ही कई भेद मिलते हैं। प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं में संस्कृत और प्राकृत में तथा आधुनिक भाषाओं में मराठी, गुजराती और सिंहाली में तीन लिंग होते हैं। हिंदी, पंजाबी, राजस्थानी तथा सिंधी में दो लिंग होते हैं। बंगाली, उड़िया, असामी तथा बिहारी में व्याकरण-संबंधी लिंगभेद बहुत ही कम किया जाता है। भारत की पूर्वी भाषाओं में लिंगभेद के शिथिल होने का कारण प्रायः निकटवर्ती तिब्बत और बर्मा प्रदेशों की अनार्यभाषाओं का प्रभाव माना जाता है। इन भाषाओं में व्याकरण-संबंधी लिंगभेद नहीं पाया जता। चैटर्जी की धारणा है कि कोल-भाषाओं के प्रभाव

हिंदी संज्ञाओं के मूल तथा विकृत रूपों में होने वाले सब संभावित परिवर्तन नीचे दिखलाए गए हैं।[1]

	पुल्लिंग		स्त्रीलिंग	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
		आकारान्त कुछ		
मूलरूप	–आ	–ए	×	–एँ
विकृत रूप	–ए	–ओं	×	–ओं
		अन्य		
मूल रूप	×	×	×	(–ए, –आँ)
विकृत रूप	×	–ओं	×	–ओं

सूचना—(१) ईकारान्त तथा ऊकारांत शब्दों में ओं लगाने के पूर्व ईकार तथा ऊकार के स्थान में इकार तथा उकार हो जाता है।

(२) स्त्रीलिंग के अन्य रूपों में इकारांत अथवा ईकारांत तथा ऊकारांत संज्ञाओं के मूलरूप बहुवचन में इआँ, इएँ तथा उएँ रूप भी होते हैं।

आ. लिंग

२४०. प्रकृति में जड़ और चेतन, दो प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं। चेतन पदार्थों में पुरुष और स्त्री का भेद होता है। कभी-कभी चेतन पदार्थ को लिंगभेद की दृष्टि के बिना भी सोचा जा सकता है। इस प्रकार स्थान में लिंग की दृष्टि से चेतन पदार्थों के तीन भेद हो

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. ३, § २९।

¹ हिंदी संज्ञाओं के मूल तथा विकृत रूपों में होने वाले सब संभावित परिवर्तन नीचे दिखलाए गए हैं।

	पुल्लिंग		स्त्रीलिंग	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
		आकारान्त कुछ		
मूलरूप	–आ	–ए	×	–एँ
विकृत रूप	–ए	–ओं	×	–ओं
		अन्य		
मूल रूप	×	×	×	(–एँ,–आँ)
विकृत रूप	×	–ओं	×	–ओं

सूचना—(१) ईकारान्त तथा ऊकारांत शब्दों में ओं लगाने के पूर्व ईकार तथा ऊकार के स्थान में इकार तथा उकार हो जाता है।

(२) स्त्रीलिंग के अन्य रूपों में इकारांत अथवा ईकारांत तथा ऊकारांत संज्ञाओं के मूलरूप बहुवचन में इआँ, इएँ तथा उएँ रूप भी होते हैं।

आ. लिंग

२४०। प्रकृति में जड़ और चेतन, दो प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं। चेतन पदार्थों में पुरुष और स्त्री का भेद होता है। कभी-कभी चेतन पदार्थ को लिंगभेद की दृष्टि के बिना भी सोचा जा सकता है। इस प्रकार सृष्टि में लिंग की दृष्टि से चेतन पदार्थों के तीन भेद हो

¹बी, क. ग्रै., भा. ३, § २९

सकते हैं—(१) पुरुष, (२) स्त्री तथा (३) लिंग की भावना के बिना चेतन पदार्थ। व्याकरण में स्वाभाविक रीति से इनके लिए क्रम से (१) पुल्लिंग, (२) स्त्रीलिंग तथा (३) नपुंसक लिंग शब्दों का प्रयोग करते हैं। अचेतन पदार्थों को प्रायः नपुंसक लिंग के अन्तर्गत रख लिया जाता है। इस क्रम से मिलता-जुलता लिंगभेद संस्कृत और अंग्रेजी में, तथा मराठी, गुजराती आदि के कुछ रूपों में है, यद्यपि कभी-कभी कुछ जड़-पदार्थों को चेतन मान कर, इनमें भी चेतन पदार्थों के पुल्लिंग-स्त्रीलिंग भेद का आरोप कर लिया जाता है।

भिन्न-भिन्न लिंग वाले पदार्थों के लिए पृथक् शब्द रहने पर भी लिंग के कारण कभी-कभी संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, या क्रिया के रूपों में परिवर्तन करना व्याकरण-संबंधी लिंगभेद का शुद्ध क्षेत्र है। प्राकृतिक लिंगभेद तो प्रत्येक भाषा में समान-रूप से वर्तमान है, किंतु व्याकरण-संबंधी लिंगों की संख्या तथा मात्रा भिन्न-भिन्न भाषाओं में पृथक्-पृथक् है। उदाहरण के लिए संस्कृत में विशेषण, कृदंत तथा अन्य पुरुषवाची सर्वनाम के रूप पुल्लिंग-स्त्रीलिंग तथा नपुंसक लिंग में भिन्न होते हैं। अंग्रेजी में केवल अन्य पुरुष सर्वनाम के रूपों में भेद किया जाता है। लिंगों की संख्या के संबंध में भारतीय आर्यभाषाओं में ही कई भेद मिलते हैं। प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं में संस्कृत और प्राकृत में तथा आधुनिक भाषाओं में मराठी, गुजराती और सिंहाली में तीन लिंग होते हैं। हिंदी, पंजाबी, राजस्थानी तथा सिंधी में दो लिंग होते हैं। बंगाली, उड़िया, असामी तथा बिहारी में व्याकरण-संबंधी लिंगभेद बहुत ही कम किया जाता है। भारत की पूर्वी भाषाओं में लिंगभेद के शिथिल होने का कारण प्रायः निकटवर्ती तिब्बत और बर्मा प्रदेशों की अनार्यभाषाओं का प्रभाव माना जाता है। इन भाषाओं में व्याकरण-संबंधी लिंगभेद नहीं पाया जाता। चैटर्जी की धारणा है कि कोल-भाषाओं के प्रभाव

के कारण बंगाली आदि पूर्वी भाषाओं से लिंगभेद उठ गया। ग
मत के अनुसार पूर्वी भाषाओं में लिंगभेद-संबंधी शिथिल
कारण इन भाषाओं का स्वाभाविक विकास भी हो सकता है। वि
वाह्य प्रभाव के ऐसा होना संभव है। मराठी, गुजराती आ
दक्षिण-पश्चिमी आर्यभाषाओं में प्राचीन तीनों लिंगों का
रहना निकटस्थ द्राविड़ भाषाओं के कारण माना जाता है।
द्राविड़ भाषाओं में भी लिंगों की संख्या तीन है। मध्यवर्ती आ
आर्यभाषाएं लिंगों की संख्या की दृष्टि से भी मध्यस्थ हैं।

२४१. हिंदी में व्याकरण-संबंधी लिंगभेद सबसे अधिक दु
है। जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है, हिंदी की एक विशेषता
यह है कि उसमें केवल दो लिंग—पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग—है
हैं। हिंदी व्याकरण में नपुंसक लिंग नहीं है, अतः प्रत्येक अचे
पदार्थ के नाम को पुल्लिंग या स्त्रीलिंग के अंतर्गत रखना पड़ता
और तत्संबंधी समस्त रूप-परिवर्तन इन शब्दों में भी करने प
हैं। इस संबंध में निश्चित नियम बनाना दुस्तर है।[1] साधारण
हिंदीभाषा-भाषी अभ्यास से ही अचेतन पदार्थों में प्रचलित लि
विशेष के शुद्ध रूपों का व्यवहार करने लगते हैं। विदेशियों को हिं
में शुद्ध लिंग का प्रयोग करने में विशेष कठिनाई इसी का
पड़ती है।

हिंदी में लिंग-संबंधी दूसरी विशेषता यह है कि इसकी क्रियाओं
में भी लिंग के कारण विकार होता है। लिंगभेद के कारण प्रत्ये
हिंदी क्रिया के दो रूप होते हैं—पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग—जैसे
आदमी जाता है, जहाज जाता है, किंतु स्त्री जाती है, रेल जाती है। लि
के संबंध में यह बारीकी अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में
से भी बहुत कम में है। भारत की पूर्वी भाषाओं में क्रिया में लि

दे., हे. हे., § ४८३

[1] इस संबंध में कुछ विस्तृत नियमों के लिए दे., गु., हि. व्या., § २५९-२११

न होने के कारण बंगाली, बिहारी तथा संयुक्त प्रांत की गोरखपुर
र बनारस कमिश्नरी तक के लोग हिंदी बोलते समय क्रिया में
द्ध लिंग का प्रयोग अक्सर करते हैं। 'लोमड़ी बोला कि ऐ हाथी
कहाँ जाती हो' इस प्रकार के नमूने हिंदी से कम परिचय रखने
ले बंगालियों के मुंह से अक्सर सुनाई पड़ते हैं। हिंदी क्रिया में
त रूपों का व्यवहार बहुत अधिक है। संस्कृत कृदंत रूपों में
गभेद मौजूद था, यद्यपि संस्कृत क्रिया में लिंगभेद नहीं किया
ता था। क्योंकि हिंदी कृदंत रूप संस्कृत कृदंतों से संबद्ध हैं, अतः
लिंगभेद हिंदी कृदंतों में तो आ ही गया, साथ ही कृदंत से बनी
क्रियाओं में भी पहुँच गया है। इस संबंध में उदाहरण सहित
स्तृत विवेचन 'क्रिया' शीर्षक अध्याय में किया गया है।

हिंदी आकारांत विशेषणों में लिंगभेद के कारण भिन्न रूप होते
। अन्य विशेषणों में इस प्रकार का भेद बहुत कम पाया जाता
। लिंग के कारण विशेषणों में होने वाले परिवर्तनों का रूप
निश्चित-सा है। इनमें सब से अधिक प्रचलित परिवर्तन नीचे
लिखे ढंग से प्रकट किया जा सकता है:—

	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
एक०	—आ	—ई
बहु०	—ए	—ई, ईं

हिंदी विशेषणों के ई लगाकर बने हुए स्त्रीलिंग रूपों की व्युत्पत्ति सं० तद्धित प्रत्यय *इका* > प्रा० *इआ* से अथवा इसके प्रभाव से मानी जाती है।[1]

हिंदी सर्वनामों तथा प्रायः क्रियाविशेषणों[2] में लिंगभेद के कारण परिवर्तन नहीं होते। मैं, तुम, वह आदि सर्वनाम स्त्री-पुरुष द्योतक संज्ञाओं के लिए समान-रूप से प्रयुक्त होते हैं।

[1] हा., ई. हि. ग्रा., § ३८५
[2] इस संबंध में अपवादों के लिए दे, गु., हि. व्या., § ४२३

२४२. हिंदी संज्ञाओं के लिंगभेद की व्युत्पत्ति के संबंध बीम्स[1] ने नीचे लिखा नियम दिया है। 'तत्सम तथा तद्भव संज्ञाओं में प्रायः वही लिंग हिंदी में भी माना जाता है जो संस्कृत में उसका लिंग रहा हो। संस्कृत नपुंसक लिंग शब्द हिंदी में प्रायः पुल्लिंग हो जाते हैं।' इस नियम के सैकड़ों अपवाद भी हैं। इस संबंध में बीम्स[2] ने कुछ विस्तृत नियम दिए हैं जिनका सार नीचे दिया जाता है।

हिंदी की पुल्लिंग आकारांत संज्ञाओं की व्युत्पत्ति नीचे लिखे रूपों से हो सकती है—

(१) संस्कृत की—अन् अंतवाली संज्ञाओं से जिनके प्रथमा में आकारांत रूप होते हैं, जैसे *राजा*।

(२) संस्कृत की—तृ अंतवाली संज्ञाओं से जैसे *कर्ता*, *दाता*।

(३) कुछ विदेशी शब्दों से, जो प्रायः फ़ारसी, अरबी या तुर्की से आए हैं, जैसे *दरिया*, *दरोगा*।

साधारणतया ईकारांत शब्द स्त्रीलिंग होते हैं किंतु कुछ शब्द पुल्लिंग भी पाए जाते हैं। ये निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किए जा सकते हैं—

(१) संस्कृत—इन् अंतवाले शब्द जैसे सं० *हस्तिन्* हि० *हाथी*, सं० *स्वामिन्* > हि० *स्वामी*।

(२) संस्कृत के—तृ अंतवाले पुल्लिंग शब्द, जैसे सं० *भ्रातृ* > हि० *भाई*, सं० *नप्तृ* > हि० *नाती*।

(३) संस्कृत के इकारांत पुल्लिंग या नपुंसक लिंग शब्द, जैसे सं० *दधि* (नपुं०) > हि० *दही*, सं० *भगिनीपति* (पुं०) > हि० *बहिनोई*।

(४) संस्कृत के इक, इय, और ईय अंत वाले, पुल्लिंग या नपुंसक लिंग शब्द, जैसे, सं० *पानीय* > हि० *पानी*,

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § ३०

[2] बी., क. ग्रै., भा. २, § ३२-३३

सं० *ताम्बूलिक*> हि० *तमोली*; सं० *क्षत्रिय* हि० *खत्री*।

(५) संस्कृत के वे पुल्लिंग या नपुंसक लिंग शब्द जिनके उपांत्य में इकार या ईकार हो, अंत्य ध्वनि के लोप से ये शब्द हिंदी में ईकारांत हो जाते हैं, जैसे सं०*जीव*> हि०*जी*।

पुल्लिंग ऊकारांत शब्द प्रायः संस्कृत ऊकारांत शब्दों से संबद्ध तथा पुल्लिंग व्यंजनांत शब्द प्रायः संस्कृत के अंत्य ह्रस्व स्वर के लोप से हिंदी में आ गए हैं।

हिंदी में कुछ आकारांत स्त्रीलिंग शब्द हैं। ये व्युत्पत्ति की दृष्टि से नीचे लिखी श्रेणियों में रक्खे जा सकते हैं—

(१) संस्कृत के आकारांत स्त्रीलिंग शब्द, जैसे *कथा*, *यात्रा*।

(२) संदिग्ध व्युत्पत्ति वाले शब्द, जैसे *डिबिया*, *चिड़िया*।

ऊपर दिए हुए पुल्लिंग ईकारांत शब्दों को छोड़कर शेष ईकारांत शब्द स्त्रीलिंग होते हैं।

संस्कृत के ऊकारांत स्त्रीलिंग शब्द हिंदी में भी स्त्रीलिंग में ही प्रयुक्त होते हैं, जैसे सं० *वधू*> हि० *बहू*।

जाति तथा व्यापार आदि से संबंध रखनेवाले शब्दों में पुल्लिंग रूपों से स्त्रीलिंग रूप बना लिए जाते हैं।[1] पुल्लिंग आकारांत शब्द स्त्रीलिंग में ईकारांत हो जाते हैं, जैसे पु० *लड़का* स्त्री० *लड़की* पु० *घोड़ा* स्त्री० *घोड़ी*। विशेषणों में भी यही प्रत्यय लगता है और इसकी व्युत्पत्ति ऊपर दी जा चुकी है। बहुत से शब्दों में *इन*, *इनी* या *आनी* लगा कर पुल्लिंग रूपों से स्त्रीलिंग रूप बनाए जाते हैं, जैसे पु० *धोबी* स्त्री० *धोबिन*, पु० *हाथी*, स्त्री० *हथिनी* पु० *पंडित* स्त्री० *पंडितानी*। व्युत्पत्ति की दृष्टि से ये प्रत्यय सं० *इन* (पु०) *इनी* (स्त्री०)

---

[1] भो., व. है., भा. २, § २१५

से संबद्ध हैं, किंतु हिंदी में ये स्त्रीलिंग के अर्थ में ही व्यवहृत होते हैं। संस्कृत में जिन शब्दों में ये नहीं भी लगते हैं, हिंदी में इनको भी लगा दिए जाते हैं। विदेशी शब्दों तक में इनको लगा कर स्त्रीलिंग रूप बना लेते हैं जैसे पु० *मुग़ल* स्त्री० *मुग़लानी*, पु० *मेहतर* स्त्री० *मेहतरानी*।

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके लिंग में परिवर्तन हो गया है। संस्कृत में इनका जो लिंग था हिंदी में उससे भिन्न लिंग में ये शब्द व्यवहृत होते हैं, जैसे

सं०		हि०	
देह	(पु०)	देह	(स्त्री०)
बाहु	(पु०)	बाँह	(स्त्री०)
अक्षि	(न०)	आँख	(स्त्री०)
विष	(न०)	विष	(पु०)

इ. वचन

२४२. प्रा० भा० आ० में तीन वचन थे—एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन। म० भा० आ० काल के प्रारंभ में ही द्विवचन समाप्त हो चुका था। आ० भा० आ० में एकवचन और बहुवचन ये दो ही वचन रह गए हैं और प्रवृत्ति केवल एकवचन रखने की ओर मालूम पड़ती है।

हिंदी में बहुवचन के रूप बहुत सरल ढंग से बनते हैं।

(१) पुल्लिंग व्यंजनांत तथा कुछ स्वरांत संज्ञाओं में प्रथमा एकवचन तथा बहुवचन के रूप समान होते हैं, जैसे

एक०	बहु०
घर	घर
[illegible]	[illegible]
आदमी	आदमी

(२) स्त्रीलिंग आकारांत तथा व्यंजनांत संज्ञाओं में प्रथमा बहुवचन में –एँ लगता है, जैसे

एक०	बहु०
रात	*रातें*
औरत	*औरतें*
कथा	*कथाएं*

(३) पुल्लिंग आकारांत शब्दों में प्रथमा बहुवचन में आ के स्थान में–ए कर दिया जाता है, जैसे

एक०	बहु०
लड़का	*लड़के*
साला	*साले*

(४) स्त्रीलिंग ईकारांत शब्दों में प्रथमा बहुवचन में या तो सिर्फ अनुस्वार जोड़ दिया जाता है या ई के स्थान में–*इयाँ* कर दिया जाता है, जैसे

एक०	बहु०
लड़की	*लड़की या लड़कियाँ*
पोथी	*पोथी या पोथियाँ*

(५) अन्य समस्त विभक्तियों के बहुवचन में समान रूप से ओं लगता है, जैसे *घरों*, *रातों*, *लड़कों*, *पोथियों*, इत्यादि। ईकारांत शब्दों में ई ह्रस्व हो जाती है और ओं, के स्थान पर–*यों* हो जाता है।

हिंदी बहुवचन के चिह्नों में प्रथमा बहु० –ए के स्थान पर संस्कृत में पुल्लिंग बहुवचन में –आ पाया जाता है।[1] संभव है इस परिवर्तन में, संस्कृत के कुछ सर्वनाम रूपों के बहुवचन के चिह्न–ए का भी प्रभाव रहा हो, जैसे सं० प्रथमा बहु० *ते*।

---

[1] बे. ए. ई., भा. ३, § ४५

हिंदी प्रथमा बहु०— *एं,—इयां,—ईं* का संबंध संस्कृत नपुंसक लिंग प्रथमा बहुवचन के— *आनि* से जोड़ा जाता है।

सं०—*आनि > आइं > एं > एं; इआं; ईं*

अन्य विभक्तियों के बहुवचन के चिह्न—*ओं या-यों* का संस्कृत षष्ठी बहुवचन —*आनां* से है।

ई. कारक-चिह्न

२४४. संज्ञा के विकृत रूप में कारक-चिह्न लगाकर विभक्तियों के रूप बनाए जाते हैं। प्राचीन तथा मध्यक भारतीय आर्यभाषाओं के संयोगात्मक रूपों के धीरे-धीरे घिस पर मध्यकाल के अंत में संज्ञा का प्रायः मूलरूप भिन्न विभक्तियों में प्रयुक्त होने लगा था। ऐसी स्थिति में अर्थ समझ कठिनाई पड़ती थी इसलिए भिन्न-भिन्न कारकों के अर्थों को करने के लिए ऊपर से पृथक् शब्द इन मूलरूपों के साथ जोड़े लगे। हिंदी के वर्तमान कारक-चिह्न मध्यकाल के अंत में ल जाने वाले इन्हीं सहकारी शब्दों के अवशेष मात्र हैं। घिसते-घि ये प्रायः इतने छोटे हो गए हैं कि इनके मूलरूपों को पहचा प्रायः दुस्तर हो गया है। इसके अतिरिक्त भाषा के साधारण श समूह में इनका पृथक् अस्तित्व नहीं रह गया है। इसी कारण संज्ञा के मूलरूपों के साथ लिखने की प्रवृत्ति हो रही है।

भिन्न-भिन्न कारकों में प्रयुक्त चिह्न नीचे दिए जाते हैं, साथ इनकी व्युत्पत्ति पर भी विचार किया गया है।

कर्ता या करण कारक

२४५. हिंदी में कर्ता के रूपों में कोई भी कारक-चिह्न प्रयु नहीं होता। संस्कृत तथा प्राकृत में भी अधिकांश संज्ञाओं में प्रथम के रूपों में परिवर्तन नहीं होता है।

सप्रत्यय कर्ता कारक का चिह्न ने पश्चिमी हिंदी की विशेषता
। 'बोलना, भूलना, बकना, लाना, समझना, जानना आदि सकर्मक
क्रियाओं को छोड़ शेष सकर्मक क्रियाओं के और नहाना, छींकना,
ाँसना आदि अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदंत से बने कालों
े साथ सप्रत्यय कर्ता कारक आता है।'[1]

ने कारक-चिह्न की व्युत्पत्ति के संबंध में बहुत मतभेद है।
ीम्स[2] इसका विचार करण कारक के अंतर्गत करते हैं और इसे
र्मणि तथा भावे प्रयोग का अर्थ देने वाला बताते हैं। बीम्स का
हना है कि गुजराती जैसी प्राचीन भाषा तक में करण तथा
ंप्रदान कारकों का एक-दूसरे के लिए प्रयोग होता रहा है। नेपाली
ें भी संप्रदान तथा करण के कारक-चिह्न बहुत मिलते-जुलते हैं।
नेपाल में संप्रदान में *लाई* तथा करण में *ले* का प्रयोग होता है।
पुरानी हिंदी के कर्म कारक के चिह्न *ने* तथा आधुनिक हिंदी के
कारक-चिह्न *ने* में भी साम्य है। *ने* गुजराती में भी कर्म-संप्रदान के
लिए प्रयुक्त होता है। मराठी में *ने* करण का चिह्न है। बीम्स इस
सबसे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वास्तव में संप्रदान तथा करण के
चिह्न व्युत्पत्ति की दृष्टि से समान थे। इस तरह से उनके मतानुसार
ने का संबंध *लगि, लागि* जैसे शब्दों से है।

ट्रंप तथा कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि ने का संबंध संस्कृत
की अकारांत संज्ञाओं के करण कारक के चिह्न-*एन* से है। इस संबंध
में आपत्ति यह की जाती है कि संस्कृत का यह चिह्न प्राकृत के अंतिम
रूपों तथा चंद के ग्रंथ में भी कुछ स्थलों पर मिलता है। आधुनिक
भारतीय आर्यभाषाओं में मराठी में यह एं तथा गुजराती में ए के
रूप में वर्तमान है। इस तरह *एन* के न का धीरे-धीरे लोप होता

[1] गु., हि. व्या. § ५१५
[2] बी., क. ग्रै., भा. २, § ५७

गया है फिर एन का ने होना कैसे संभव है। यदि एन के स्थान पर संस्कृत में नेन कोई चिह्न होता तो उसे ने होना संभव। किंतु ऐसा कोई भी चिह्न संस्कृत या प्राकृत में नहीं मिलता।

इस व्युत्पत्ति के विरोध में बीम्स का यह तर्क भी विचार करने के योग्य है कि यदि ने प्राचीन करण कारक के चिह्न का रूपांतर होता तो पुरानी हिंदी में इसके प्रयोग का बाहुल्य होना चाहिए था। वास्तव में बात उलटी है। पुरानी हिंदी में का प्रयोग बहुत कम मिलता है। आधुनिक हिंदी में आकर ही इसका प्रचार अधिक हुआ। संस्कृत के करण कारक का कोई भी चिह्न हिंदी में नहीं रह गया था। ऐसी परिस्थिति में बीम्स के मतानुसार १६वीं १७वीं शताब्दी के लगभग संप्रदान-कारक के लिए प्रयुक्त ने का प्रयोग (जैसे दे दे) करण कारक की कुछ क्रियाओं के साथ भी होने लगा होगा। हार्नली[1] का कहना है कि संप्रदान के लिए ब्रज० में कौ को और मारवाड़ी में नैं ने का प्रयोग होता था। संभव है नैं या ने को संप्रदान के लिए अनावश्यक समझ कर इसे सप्रत्यय कर्ता या करण कारक के लिए ले लिया गया हो। प्राचीन संयोगात्मक कारकों के अवशेष यदि आधुनिक भाषाओं में कहीं रह गए हों तो संयोगात्मक रूप में ही रह गए हैं। ने हिंदी में पृथक् कारक चिह्न है। बीम्स के मतानुसार इस बात से भी पुष्टि होती है कि ने संस्कृत-एन का रूपांतर नहीं है।

ब्लाक ने ग्रियर्सन का मत उद्धृत करते हुए कहा है कि ने का संबंध सं०—तन—से होना संभव है। वास्तव में ने की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। निश्चयपूर्वक इस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

कर्म तथा संप्रदान

२४६. हिंदी तथा हिंदी की बोलियों में कर्म और संप्रदान के

---

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७१

लिए प्रायः एक ही प्रकार के कारक-चिह्न प्रयुक्त होते हैं। खड़ी-बोली में *को* दोनों विभक्तियों में आता है। संप्रदान में *के लिये* रूप विशेष आता है।

ट्रंप[1] के मतानुसार *को* की उत्पत्ति सं० *कृतं* से हुई है जो प्राकृत में *कितो* > *किओ* होकर *को* रूप धारण कर सकता है। प्राकृत में वास्तव में *कतं* और *कदं* रूप मिलते हैं। इस संबंध में सब से बड़ी कठिनाई हिंदी के प्राचीन रूप *कहु* के संबंध में है। ट्रंप का अनुमान है कि *कृतं* की जब *ऋ* का लोप हुआ होगा तब *त* महाप्राण हो गया होगा। यह विचार-शैली बहुत मान्य नहीं दिखलाई पड़ती।

हार्नली और बीम्स[2] *को* का संबंध सं० *कक्षं* से जोड़ते हैं। चैटर्जी[3] आदि अन्य आधुनिक विद्वान् भी इस व्युत्पत्ति को ठीक समझते हैं, यद्यपि *कृतं* वाली व्युत्पत्ति को भी असंभव नहीं मानते। *कक्षं* > *कक्खं* > *काखं काहं* > *कहुं कहं* > *कौं* > *को* ये परिवर्तन की संभव सीढ़ियाँ हैं। अर्थ की दृष्टि से भी *कक्षं* 'बगल में को निकट, ओर' से अधिक साम्य रखता है। हिंदी बोलियों में *को* से मिलते-जुलते रूपों की व्युत्पत्ति भी *कक्ष* से ही मानी जाती है।

२४७. हिंदी के *लिये के* के का संबंध प्रायः सं० *कृते* से जोड़ा जाता है। सत्यजीवन वर्मा[4] *के* को संबंध कारक के प्राचीन चिह्न *केरक* का रूपांतर मानते हैं। इनके मत में *को* भी *केहि* का रूपांतर

---

[1] ट्रंप, सिंधी ग्रैमर, पृष्ठ ११५
[2] बी, क. ग्रै, भा. २
[3] हा, ई. ...

है जिसमें के अंश केरक का विकसित रूप है और *हि* अंश अपभ्रंश की सप्तमी विभक्ति का चिह्न है। किंतु *को* तथा *के* की व्युत्पत्ति के संबंध में यह मत अन्य विद्वानों द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सका है। प्रथम मत ही सर्वमान्य है।

के लिये के *लिये* अंश का संबंध *लग्ने* से माना जाता है। हार्नली[1] के अनुसार *लिये* की उत्पत्ति सं० *लब्धे* 'लाभार्थ' से हुई है। किंतु यह मत सर्वमान्य नहीं है। संभव है कि इसका संबंध प्रा० √ *ले* से हो। हिंदी बोलियों के *लगे*, *लागि* आदि रूपों की व्युत्पत्ति भी *लिये* के ही समान मानी जाती है। सं० *लग्ने* > प्रा० *लग्गे*, *लग्गि* > हि० बो० *लागि*, *लगे* ये संभव परिवर्तन हैं।

२४८. हिंदी बोलियों में प्रयुक्त चतुर्थी के अन्य मुख्य शब्दों की व्युत्पत्ति हार्नली के मतानुसार[1] संक्षेप में नीचे दी जाती है।

हि० बो० *ठाई*	<अप० प्रा० *ठाणि*, *ठाऐ*	<सं० *स्थाने*;
हि० बो० *पाहि*	<अप० प्रा० *पक्खे**, *पाहे*	<सं० *पक्षे*;
हि० बो० *केने*	<अप० *कएो*	<सं० *कर्णे*;
हि० बो० *काज*	<प्रा० *कज्जे*	<सं० *कार्ये*;
हि० बो० *ताईं*, *तईं*	<अप० *तरिए*, *तइए*	<सं० *तरिते*;
हि० बो० *बाटे*	<प्र० *वट्ट*, *वत्त*	<सं० *वार्ते*;
हि० बो० *बरे*		<सं० *वरे*

उपकरण तथा अपादान

२४९. करण के चिह्न *ने* पर विचार किया जा चुका है। उपकरण के लिए हिंदी में *से*, (अव० *से*, *सन*; व्रज० *सों*; *सूं*; बुंदेली *सें*) का प्रयोग होता है। यही चिह्न तथा कुछ अन्य विशेष चिह्न अपादान के लिए भी प्रयुक्त होते हैं।

[1] ई. हि. ग्रै., § ३७५

वीम्स के मतानुसार[1] से का वास्तविक अर्थ 'साथ' है, 'अलग ोना' ही है, जैसे *राम से कहता है*, *चाकू से कलम बनाओ*। अतः ्युत्पत्ति की दृष्टि से वीम्स *से* का संबंध संस्कृत अव्यय *समं* से जोड़ते । हार्नली[2] *से* का संबंध प्रा० *संतों*, *सुंतों* तथा सं० *√अस्* से लगाते । आजकल प्रायः वीम्स का मत ही मान्य समझा जाता है।

२५०. केलाग के अनुसार ब्रज *ते* या *तें* का संबंध सं० त्य—तः से है, जो अपादान के अर्थ में संस्कृत संज्ञाओं में प्रयुक्त ा था, जैसे सं० *पितृतः*, *ब्रज पिता तें*।

संबंध

२५१. संबंध के रूपों का संबंध क्रिया से न हो कर संज्ञा से ोता है। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि हिंदी में संबंध-सूचक ारक-चिह्नों में आगे आने वाली संज्ञा के अनुसार लिंगभेद होता जैसे *लड़के का लोटा*, *लड़के की गेंद*।

हिंदी पुल्लिग एकवचन में *का* (ब्रज० *को* या *कौ*; अव० *कर्*), बहुवचन में *के*, तथा स्त्रीलिंग में *की* का व्यवहार होता है।

इन रूपों की व्युत्पत्ति के संबंध में बीम्स[3] तथा हार्नली[4] एक हैं। इनकी धारणा है कि ये समस्त रूप सं० *कृतः* तथा प्रा० *केरो* ेरक से संबद्ध हैं। हार्नली के अनुसार क्रमिक विकास नीचे ़ ढंग से हुआ होगा। सं० *कृतः* >प्रा० *करितो*, *करिओ*, *केरको*> ०ी हिं० *केरओ*, *केरो*; हिं० *केर*, *का*।

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § ५८
[2] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७६
[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § ५९
[4] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७७

पिशेल तथा कुछ अन्य संस्कृत विद्वानों की धारणा थी कि हि॰ केर सं॰ *कार्य* से निकला है। केलाग[1] के अनुसार हि॰ *को* या *क* का सीधा संबंध सं॰ *कृतः* के प्राकृत रूप *किदः* या *कदः* से हो सकता है। चैटर्जी[2] *का* का संबंध प्रा॰—से *क* करते हैं क्योंकि उनके मतानुसार सं॰ *कृतः* के प्राकृत रूप *कश्र* में आधुनिक काल तक आते-आते *क* बना रहना संभव नहीं प्रतीत होता। साधारणतया बीम्स तथा हार्नली की व्युत्पत्ति अधिक मान्य मालूम होती है। *के की* आदि रूप वचन तथा लिंग की दृष्टि से *का* के रूपांतर मात्र हैं।

अधिकरण

२५२. अधिकरण के लिए हिंदी *में* (व्रज॰ *मैं*) और *पर* (व्रज॰ *पै*) का प्रयोग सब से अधिक होता है। अधिकरण के लिए कुछ संयोगात्मक प्रयोग हिंदी बोलियों में पाए जाते हैं।

में की व्युत्पत्ति के संबंध में मतभेद नहीं है। *में* का संबंध सं॰ *मध्ये* > अप॰ प्रा॰ *मज्झे, मज्झि, मज्झहि* > पुरानी हि॰ *माँहि, महि* से जोड़ा जाता है।[3]

हिंदी *पर* का संबंध सं॰ *उपरि* से स्पष्ट ही है। हार्नली[4] सं॰ *परे* 'दूर' प्रा॰ *परि* से इसकी व्युत्पत्ति का अनुमान करते हैं।

कारक-चिह्नों के समान प्रयुक्त अन्य शब्द

२५३. ऊपर दिए हुए कारक-चिह्नों के अतिरिक्त हिंदी में कुछ

[1] के., हि. ग्रै., § १५९
[2] चे., वे. लैं., § ५०३
[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § ६०
[4] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७८

संबंधसूचक अव्यय कारकों के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। गुरु[1] के आधार पर इसमें से अधिक प्रचलित शब्द व्युत्पत्ति सहित नीचे दिए जाते हैं। ये शब्द संबंध-कारक के रूपों में लगाए जाते हैं।

कर्म : प्रति (सं॰), तईं;
करण : द्वारा (सं॰), ज़रिये (अर॰), कारण (सं॰), मारे (स॰ मारितेन);
सम्प्रदान : हेतु (स॰), निमित्त (सं॰), अर्थ (सं॰), वास्ते (अर॰);
अपादान : अपेक्षा (सं॰), बनिस्बत (फ॰), सामने (सं॰ सम्मुख), : आगे (सं॰ अग्रे), साथ (सं॰ सार्थे);
अधिकरण : मध्य (सं॰), बीच (सं॰ विच्) भीतर (सं॰ अभ्यंतरे), : अंदर (फ॰), ऊपर (सं॰ उपरि), नीचे (सं॰ नीचैः), पास (स॰ पार्श्वे)।

२५४. हिंदी में कभी-कभी फ़ारसी-अरबी के कुछ कारक आ जाते हैं, जैसे अज़ (अज़खुद), दर (दरहक़ीक़त)[2]। इनका प्रयोग बहुत ही कम पाया जाता है।

[1] गु. हि. व्या., § ३१५
[2] गु. हि. व्या., § ३१६

पिशेल तथा कुछ अन्य संस्कृत विद्वानों की धारणा थी कि हि
केर सं० कार्य से निकला है। केलाग[1] के अनुसार हि० को या क
सीधा संबंध सं० कृतः के प्राकृत रूप किदः या कदः से हो सकता है
चैटर्जी[2] का का संबंध प्रा०—से क करते हैं क्योंकि उनके मतानुसा
सं० कृतः के प्राकृत रूप कअ में आधुनिक काल तक आते-आते
बना रहना संभव नहीं प्रतीत होता। साधारणतया बीम्स त
हार्नली की व्युत्पत्ति अधिक मान्य मालूम होती है।
रूप वचन तथा लिंग की दृष्टि से का के रूपांतर मात्र

अधिकरण

२५२. अधिकरण के लिए हिंदी में में (व्रज० मैं
(व्रज० पै) का प्रयोग सब से अधिक होता है। अधिक
कुछ संयोगात्मक प्रयोग हिंदी बोलियों में पाए जाते

में की व्युत्पत्ति के संबंध में मतभेद नहीं है। में का
मध्ये > अप० प्रा० मज्झे, मज्झि, मज्झहि > पुरानी हि०
से जोड़ा जाता है।[3]

हिंदी पर का संबंध सं० उपरि से स्पष्ट
परे 'दूर' प्रा० परि से इसकी व्युत्पत्ति

कारक-चिह्नों

२५३. [illegible]

[1] के., हि. ग्रै., § १५९
[2] चे., बे. लै., § ५
[3] बी., क. ग्रै., भा.

उनमें होने वाले मुख्य-मुख्य परिवर्तनों पर नीचे विचार किया गया है।

२५६. हि० एक < प्रा० एक्क < सं० एक। एक वाली संख्याओं में हि० एक के कई रूप मिलते हैं। *ग्यारह* में *ग्या* अंश प्रा० *एगा*–रूप से प्रभावित हुआ है अर्थात् क् का घोष रूप हो जाता है। सं० एकादश में *आ* द्वादश के प्रभाव के कारण माना जाता है। यह *आ* प्रा० तथा हिंदी दोनों में चला आया है। संयुक्त संख्याओं में ए–का इ–रूप हो जाता है, जैसे *इक्कीस*, *इकतीस*, *इकतालीस* आदि। यह स्पष्ट ही है कि इन शब्दों में गुण की ध्वनि (*ए*) मूलध्वनि ह तथा मूलस्वर (इ) गुण की ध्वनि के विकार के कारण हुआ है।

२५७. हि० दो < प्रा० दो < सं० द्वौ। सं० द्वौ का व अंश प्रा० तथा गुज० के बे में मिलता है। हिंदी में भी इसका अस्तित्व संयुक्त संख्याओं में है, जैसे *बारह*, *बाइस*, *बत्तीस*, *बेयालीस* इत्यादि। समासों में दो के स्थान पर दु, दू तथा दो रूप मिलता है जैसे *दुपट्टा*, *दुमहला*, *दुमुँहा*, *दुधारी*, *दूसरा*, *दूना*, *दोहरा*, *दोनों*।

२५८. हि० *तीन* < प्रा० *तिण्णि* < सं० *त्रीणि*। संयुक्त संख्याओं में *ते तें*, *ति* या *तिर* रूप मिलते हैं जिन पर सं० *त्रय* का प्रभाव स्पष्ट है, जैसे *तेरह*, *तेंतीस*, *तितालीस*, *तिरपन*। ये रूप *तिपाई*, *तिहाई*, *तेहरा*, *तिपुरी* आदि शब्दों में भी मिलते हैं।

२५९. हि० *चार* < प्रा० *चत्तारि* < सं *चत्वारि*। संयुक्त संख्याओं तथा समासों में सं० मूल रूप *चतुर्* तथा प्रा० *चउरो* का प्रभाव मालूम होता है अतः हिंदी में *चौ*, *चौ* तथा *चौर* रूप मिलते हैं जैसे, *चौदह*, *चौंतीस*, *चौरासी*। समासों में *चौ* रूप अधिक पाया जाता है, जैसे, *चौमासा*, *चौपाई*, *चौपाये*, *चौपड़*, *चौपाल*, *चौपरी*, *चौसट*, *चौराहा*। नए समासों में *चार* का भी प्रयोग होता है, जैसे, *चारपाई*, *चारखाना*।

अध्याय ७

संख्यावाचक विशेषण

अ. पूर्ण संख्यावाचक

२५५. संख्यावाचक विशेषणों में होने वाले ध्वनि-परिव
का इतिहास विचित्र है। 'हिंदी ध्वनियों का इतिहास' शी
अध्याय में इन पर कुछ विचार हो चुका है। यहाँ पर एक ज
क्रमबद्ध रूप से एक वार इन सब पर दृष्टि डाल देना अनुचित
होगा। ये विशेषण अन्य हिंदी शब्दों के समान प्राय: प्राकृतों में हो
संस्कृत से आए हुए नहीं मालूम पड़ते, वल्कि ऐसा मालूम होता है
समस्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के विशेषण पाली अथ
मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के सदृश किसी अन्य स
प्रचलित भाषा से संबंध रखते हैं। केवल किन्हीं-किन्हीं रूपों
प्रादेशिक प्राकृत या अपभ्रंश की छाप है (जैसे, गुजराती बे, मरा
दोन वंगाली दुइ)।[1] हिंदी संख्यावाचक विशेषणों का सब
प्राचीन ऐतिहासिक विवेचन बीम्स[2] के ग्रंथ में है। चैटर्जी[3] ने इ
विषय पर कुछ नई सामग्री तथा अनेक नए उदाहरण दिए हैं। इ
दोनों विवेचनों के आधार पर हिंदी के संख्यावाचक विशेषणों तथ

---

[1] चै., बे. लै., § ५११

[2] बी., क. ग्रै., भा. २, § २६-२८

[3] चै., बे. लै., भा. २, अ. ३

उनमें होने वाले मुख्य-मुख्य परिवर्तनों पर नीचे विचार किया गया है।

२५६. हि० एक < प्रा० एक्क < सं० एक। एक वाली संख्याओं में हि० एक के कई रूप मिलते हैं। *ग्यारह* में *ग्या* अंश प्रा० *एगा*–रूप से प्रभावित हुआ है अर्थात् क् का घोष रूप हो जाता है। सं० *एकादश* में *आ द्वादश* के प्रभाव के कारण माना जाता है। यह *आ* प्रा० तथा हिंदी दोनों में चला आया है। संयुक्त संख्याओं में ए–का इ–रूप हो जाता है, जैसे *इक्कीस, इकतीस, इकतालीस* आदि। यह स्पष्ट ही है कि इन शब्दों में गुण की ध्वनि (*ए*) मूलध्वनि ह तथा मूलस्वर (*इ*) गुण की ध्वनि के विकार के कारण हुआ है।

२५७. हि० दो < प्रा० *दो* < सं० द्वौ। सं० द्वौ का *व* अंश प्रा० तथा गुज० के *बे* में मिलता है। हिंदी में भी इसका अस्तित्व संयुक्त संख्याओं में है, जैसे *बारह, बाइस, बत्तीस, बेयालीस* इत्यादि। समासों में *दो* के स्थान पर दु, दू तथा दो रूप मिलता है जैसे *दुपट्टा, दुमहला, दुमुँहा, दुधारी, दूसरा, दूना, दोहरा, दोनों*।

२५८. हि० *तीन* < प्रा० *तिण्णि* < सं० *त्रीणि*। संयुक्त संख्याओं में *ते तैं, ति या तिर* रूप मिलते हैं जिन पर सं० *त्रय* का प्रभाव स्पष्ट है, जैसे *तेरह, तैंतीस, तितालीस, तिरपन*। ये रूप *तिपाई, तिहाई, तेहरा, तियुरी* आदि शब्दों में भी मिलते हैं।

२५९. हि० चार < प्रा० *चत्तारि* < सं *चत्वारि*। संयुक्त संख्याओं तथा समासों में सं० मूल रूप *चतुर्* तथा प्रा० *चउरो* का प्रभाव मालूम होता है अतः हिंदी में चौ, चौं तथा चौर रूप मिलते हैं जैसे, *चौदह, चौंतीस, चौरासी*। समासों में चौ रूप अधिक पाया जाता है, जैसे, *चौमासा, चौपाई, चौपाये, चौपड़, चौपाल, चौपरी, चौसट, चौराहा*। नए समासों में चार का भी प्रयोग होता है, जैसे, *चारपाई, चारखाना*।

२६०. हि० *पांच* < प्रा० *पंच* < सं० *पंच*। कुछ संयु-
संख्याओं के प्रा० रूप *पण्ण* तथा *पन* (जैसे १५ *पण्णरह*, ३५ *पणती*)
का प्रभाव हिंदी की भी संयुक्त संख्याओं में मिलता है, जैसे *प*
पैंतीस, *पैंतालीस*, *तिरपन*। *इक्यावन*, *चौअन*, आदि संख्याओं में *पन* के
स्थान में *वन* या *अन* हो जाता है। अन्य संयुक्त-संख्याओं तथा सम
में *पांच* का *पच्* रूप हो जाता है, जैसे *पचीस*, *पचपन*, *पचासी*, *पच*
पचमेल, *पचलड़ी*। प्रा० *पंच* रूप हि० *पंचायत*, *पंचमी*, *पंचवटी*, *पंच*
पंचामृत, *पंचगव्य* आदि प्रचलित तत्सम शब्दों में अब भी मिलता है।
कभी-कभी इसका रूप *पँच* भी हो जाता है, जैसे *पँचमेल*, *पँचगु*

२६१. हि० *छः* < प्रा० *छ* < सं० *षट्* (*षष्*)। हिंदी और
प्राकृत रूप एक हैं यह तो स्पष्ट ही है, किंतु प्राकृत का रूप संस्कृ
रूप से कैसे हो गया यह स्पष्ट नहीं होता। हि० *सोलह* तथा *स*
आदि संख्याओं में सं० *ष* के अधिक निकट की ध्वनि पाई जाती है।
अन्य संयुक्त संख्याओं में *छ*. या *छ्* या रूप बराबर मिलता है, जैसे
छब्बीस, *छत्तीस*, *छ्यासठ*, *छ्यानवे*। चैटर्जी[1] के मत से *छः* का संबं
प्रा० भा० आ० के एक कल्पित रूप *क्षष्** या *क्षक** से है। जो हो
प्राकृत काल के पहले इसका संबंध ठीक नहीं जुड़ता।

२६२. हि० *सात* < प्रा० *सत्त* < सं० *सप्त*। यह संबंध स्पष्ट
है। कुछ संयुक्त संख्याओं में प्रा० *सत्त* या *सत* रूप अब भी पाया
जाता है, जैसे *सत्रह*, *सत्ताईस*, *सतासी*, *सत्तानवे* इसके अतिरि
सै रूप भी मिलता है, जैसे *सैंतीस*, *सैंतालीस*। इनमें अनुनासिक
पैंतीस, *पैंतालीस* आदि के अनुकरण से हो सकती है। *सत्तर*, *स*
सत्तहत्तर में *सत* या *सड़* रूप असाधारण है। यह *बाद* वाली संख्या
अस्सी से प्रभावित हो सकती है।

---

[1] वे. ले. ६,५१२

२६३. हि० *आठ*<प्रा० *अट्ठ*< सं० *अष्ट*। संयुक्त संख्याओं में *अट्ठ*, *अटा*, *अठ* आदि रूप मिलते हैं, जैसे *अट्ठाईस*, *अठारह*, *अठहत्तर*, *अड़तीस*, *अड़तालीस*, और *अड़सठ* में *अठ* का *अड़* हो जाता है। इस परिवर्तन का कारण स्पष्ट नही है।

२६४. हि० *नौ*< प्रा० *नअ*< सं० *नव*। संयुक्त संख्याएं प्रायः *नौ* लगाकर नहीं बनाई जातीं, बल्कि दहाई की संख्या में सं० *ऊन* (एक कम) >प्रा० *ऊण*> हि० *उन* लगा कर बनती हैं, जैसे *उन्नीस*, *उन्तालीस*, *उनासी* आदि। केवल *नवासी* और *निन्यानवे* में *नौ* लगाया जाता है। इन संख्याओं में संस्कृत में भी ऐसा ही होता है जैसे, सं० *नवाशीति*, *नवनवति*। *निनानवे* में *निन*। अंश की व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है।

२६५. हि० *दस*< प्रा० *दस*< सं० *दश*। *ग्यारह* आदि संयुक्त संख्याओं में प्रा० के *दह*, *रह*, *लह*, *रह*, *लह* आदि समस्त रूप वर्तमान हैं, जैसे *चौदह*, *अठारह*, *सोलह*। दहाई शब्द में भी *दह* वर्तमान है। प्रा० में *द* के *र* होने का कारण स्पष्ट नहीं है। हिंदी में *र* का *ल* या *स* का *ह* हो जाना साधारण परिवर्तन है।

दहाई की संख्याओं के नाम प्रायः प्राकृत में हो कर सस्कृत से आए हैं।

२६६. हि० *बीस*< प्रा० *बीस*< सं० *विंशति*। हिंदी का *कौड़ी* शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से कोल शब्द माना जाता है। कोल भाषाओं में बीसी से गिनती होती है। *चौबीस* और *छब्बीस* को छोड़ कर *इक्कीस* आदि संयुक्त संख्याओं में *बीस* का *ईस* रह जाता है, जैसे *बाईस*, *तेईस*, *पच्चीस* आदि।

२६७. हि० *तीस*<प्रा० *तीसा*< सं० *त्रिंशत्*। संयुक्त संख्याओं में भी *तीस* रूप रहता है, जैसे *इकतीस*, *बत्तीस*, *तेंतीस* आदि।

२६८. हि० *चालीस*< प्रा० *चत्तालीसा*< सं० *चत्वारिंशत्*। संयुक्त संख्याओं में प्रा० *चत्तालीसा* के *च* का लोप हो जाने से *चालीस* का

तालीस और *त* के लुप्त हो जाने से *यालीस* या *आलीस* रूपांतर मिलते हैं जैसे *उनतालीस, इकतालिस, ब्यालीस, चवालीस* आदि।

२६९. हि० *पंचास*< प्रा० *पंचासा*< सं *पंचाशत्*। संयुक्त संख्याओं में *पचास* के स्थान में *पन* तथा *वन, व अन* रूप मिलते हैं। इनका संबंध प्रा० के *पचास* प्रचलित रूप *पण्णासा, पन्ना* आदि होता है, जैसे हि० *बावन*< प्रा० *बावण्णं, तिरपन, चौअन*। *उनचास* *पचास* का रूपांतर वर्तमान है।

२७०. हि० *साठ*< प्रा० *सट्ठि*< सं० *षष्टि*। संयुक्त संख्या में *सठ* रूप मिलता है, जैसे *उनसठ, इकसठ, बासठ* आदि।

२७१. हि० *सत्तर*< प्रा० *सत्तरि*< सं० *सप्तति*। पाली में अंतिम *त* ध्वनि *र* में परिवर्तित हो गई थी। (प्रा० *सत्तति, सत्त*- किंतु इसका कारण स्पष्ट नहीं है। चैटर्जी[1] का मत है प्राचीन रूप *सत्तति*, में *ति* आप ही *टि* हो गया और *टि, डि* कर *रि* हो गया। किंतु यह कारण बहुत संतोषप्रद नहीं मालू होता। जो हो हि० *सत्तर* में *र* प्राकृत से आया है। संयुक्त संख्या में *सत्तर* के *स* का *ह* हो जाता है, जैसे *उनहत्तर, इकहत्तर, बह* आदि। *सतत्तर* में *ह* का लोप हो गया है, तथा *अठत्तर* में *ह, ट* महाप्राण करके उसमें मिल जाता है।

२७२. हि० *अस्सी*> प्रा० *असीइ*< सं० *अशीति*। संयुक्त संख्याओं में *आसी* या *यासी* रूप मिलता है, जैसे *उनासी, इक्या- ब्यासी* आदि। *अस्सी* में *स* का दोहरा हो जाना संभवतः पंजाबी से प्रभावित है।

२७३. हि० *नब्बे*< प्रा० *नब्बइ* < सं० *नवति*। संयुक्त संख्याओं में *नवे* रूप मिलता है, जैसे *इक्यानवे, ब्यानवे, तिरानवे*,

---

[1] चै, बे लै, §५२८

चौरानवे आदि। *इक्यासी* आदि रूपों के प्रभाव के कारण कदाचित् *इक्यानवे* आदि में भी *आ* आ गया है।

२७४. हि० *सौ* (१००) < प्रा० *सअ*, *सय*< सं० *शत्*। संयुक्त संख्याओं में *सै* रूप भी मिलता है, जैसे *सैकड़ा*, *एक सै एक*, *चार सै*।

२७५. हि० *हज़ार* (१०००) फ़ारसी का तत्सम शब्द है। सं० *सहस्र* के स्थान पर सं० *दशशत* का प्रचार मध्ययुग में हो गया था। कदाचित् इसी कारण से फ़ारसी का एक शब्द *हज़ार* मुसल्मान काल से समस्त उत्तर भारत में प्रचलित हो गया।

२७६. हि० *लाख* (१००,०००) सं० *लक्ष* से निकला है। समासों में *लख* रूप हो जाता है, जैसे *लखपती*।

२७७. हि० *करोड़* (१०,०००,०००) की व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है। सं० *कोटि* से मिलता-जुलता यह शब्द कभी गढ़ लिया गया हो तो असंभव नहीं।

२७८. हि० *अरब* (१०००,०००,०००) सं० *अर्बुद* से संबंध रखता है। हि० *खरब* सं० *खर्व* (१००,०००,०००,०००) का रूपांतर है। अरब और खरब का प्रयोग साधारणतया असंख्यता का बोध कराने के लिए किया जाता है।

आ. अपूर्ण संख्यावाचक

२७९. अपूर्ण संख्यावाचक विशेषणों से पूर्ण संख्या के किसी भाग का बोध होता है। हिंदी तथा प्राचीन रूपों का संबंध नीचे दिखलाया गया है।

१ : हि० *पाव*; *पउआ* < प्रा० *पाव-*, *पाअ-*, *पाअ-*, < सं० *पाद*, *पादक*। संयुक्त रूपों में सं० *पादिका* से आया हुआ *पई* रूप भी मिलता है, जैसे *अधपई*।

हि० *चौथाई* सं० *चतुर्थिक* से संबद्ध है।

३ : हि० *तिहाई* का संबंध सं० *त्रिभागिक* से संभव है।

: हि० *आधा* < सं० *अर्द्ध*।

संयुक्त रूपों में *अध* रूप हो जाता है, जैसे अधे
अधसेरा, *अधबर*।

१½ : हि० *डेढ़* < प्रा० *दिअड्ढ* < सं० *द्वयर्द्ध*।

२½ : हि० *ढाई*, *अढ़ाई* < प्रा० *अड़्तीय* < सं० *अर्द्धतृती*
हि० *ढाई* भी सं० *अर्द्ध-तृतीय* से संबद्ध है। अ क
लोप बलाघात के फलस्वरूप हुआ है।

३½ : हि० *अहुठ* (साढ़े तीन) का प्रयोग प्रचलित नहीं है
यह शब्द सं० *अर्द्ध-चतुर्थ* से संबद्ध है। प्रा० में अड्
*चउट्ठ** < *अड्ढ-अउट्ठ** < *अड्ढउट्ठ** आदि रूप मिल
हैं। सं० म फिर से यह शब्द *अध्युष्ठ* के रूप में आ गया है

+¼ : हि० *सवा* < प्रा० *सवाअ*- < सं० *सपाद*। *सवा* के बहु
रूपांतर हो जाते हैं, जैसे *सवाया*, *सवाई*, *सवाये*।

+½ : हि० *साढ़े* < प्रा० *सड्ढ* < सं० *सार्द्ध*।
साढ़े विकृत रूप मालूम होता है।

—¼ : हि० *पौन* < सं० *पादोन*। केवल *पौन* शब्द ¾ के लिए
प्रयुक्त होता है। अन्य संख्याओं में लगा देने से वह
संख्या ¼ से घट जाती है, जैसे *पौने आठ*=७¾

इ. क्रम संख्यावाचक

२८०. इनका संबंध संस्कृत के प्रचलित क्रमवाचक रूपों से
सीधा नहीं है। संस्कृत के आधार पर नए ढंग से ये बाद को बने हैं।

हि० *पहला* < प्रा० *पहिल्ल**, *पधिल्ल** < सं० *प्र-थ* ...।
संस्कृत *प्रथम* से आधुनिक *पहला* शब्द की उत्पत्ति संभव
नहीं है।

बीम्स[1] के मत में हि० *पहला* सं० *प्रथर** से निकला है।

हि० *दूसरा*, *तीसरा*।

---

[1] बी०, क० ग्रै०, भाग २, § ९०

सं० *द्वितीय*, *तृतीय*, से हिंदी *दूजा*, *तीजा* तो निकल सकते हैं किंतु *दूसरा*, *तीसरा* नहीं निकल सकते। बीम्स[1] इनका संबंध सं० *द्वि+सृतः*, *त्रि+सृतः* से जोड़ते हैं।

हि० *चौथा*<प्रा० *चउत्थ*<सं० *चतुर्थ*। तिथि तथा लगान के लिए *चौथा* रूप प्रयुक्त होता है।

चार की संख्या तक क्रमवाचक विशेषणों की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न ढंगों से हुई है। इसके आगे-*वां* लगा कर समस्त रूप बनाए जाते हैं, जैसे *पांचवां*, *सातवां*, *बीसवां* इत्यादि। ये रूप सं०—*तम* से निकले माने जाते हैं।[2] हि० *छटा* प्रा० में भी *छट्टा* था। यह सं० *षष्ठ* का रूपांतर है।

ई. आवृत्ति संख्यावाचक

२८१. हि० आवृत्ति संख्यावाचक विशेषण *दुगना*; *तिगना*, *चौगुना*, सं० *गुण* लगा कर बने हैं।

उ. समुदाय संख्यावाचक

२८२. हि० में कुछ समुदायवाचक विशेषण प्रचलित हैं किंतु ये प्रायः अन्य भाषाओं के हैं। कौड़ियां गिनने में चार के लिए *गंडा* शब्द आता है। बीस की संख्या के लिए *कोड़ी* शब्द का ज़िक्र किया जा चुका है। बारह के लिए आधुनिक समय में अंग्रेज़ी *दर्जन* प्रचलित हो गया है। अंग्रेज़ी का *ग्रोस* शब्द बारह दर्जन के लिए कुछ प्रचलित हो चला है।

परिशिष्ट

पूर्ण संख्यावाचक

२८३. हिंदी पूर्ण संख्यावाचक विशेषण तथा उनके संस्कृत

---

[1] बी., क. ग्रं., भाग § २७

[2] बी., क. ग्रं., भा. २, § २७

तथा प्राप्त प्राकृत रूप तुलना के लिए नीचे दिए जाते हैं। प्रा
रूपों के इकट्ठा करने में हार्नली के व्याकरण[1] से विशेष सहा
मिली है।

हिंदी	प्राकृत	संस्कृत
(१) एक	एक, एक्को, एगो, एओ	एक
(२) दो	दो, दुए, दुवे, दोण्णि, बे	द्वौ (√द्वि)
(३) तीन	तिण्णि, तओ	त्रीणि (√त्रि
(४) चार	चत्तारि, चत्तारो, चउरो	चत्वारि (√च
(५) पांच	पञ्च	पञ्च (पंचन्)
(६) छः	छ	षट् (षष्)
(७) सात	सत्त	सप्त (√सप्त
(८) आठ	अट्ठ	अष्ट, अष्टौ
(९) नौ	णअ, णव, नअ	नव
(१०) दस	दस, दह, दह, रह	दश
(११) ग्यारह	एआरह	एकादश
(१२) बारह	बारह	द्वादश
(१३) तेरह	तेरह	त्रयोदश
(१४) चौदह	चउद्दह	चतुर्दश
(१५) पंद्रह	पण्णरह, पण्णरहां, पण्णारहां	पञ्चदश
(१६) सोलह	सोलह	षोडश
(१७) सत्रह	सत्तरह	सप्तदश

[1] हा०, ई. गि. ग्रै०, § ३५७

हिंदी	प्राकृत	संस्कृत
(१८) अठारह	अट्ठरह, अट्ठारह	अष्टादश
(१९) उन्नीस	उनवीसइ, उनवीसा, एकूनवीसा	ऊनविंशति,
(२०) बीस	वीसा, वीसइ	विंशति
(२१) इक्कीस	एक्क वीसा	एकविंशति
(२२) बाईस	बावीसं, बावीसा	द्वाविंशति
(२३) तेईस	तेवीसं, तेवीसा	त्रयोविंशति
(२४) चौबीस	चउव्वीसं	चतुर्विंशति
(२५) पचीस	पंचवीसा,* पंचवीसं*	पंचविंशति
(२६) छब्बीस	छव्वीसं	षड्विंशति
(२७) सत्ताईस	सत्तावीसा	सप्तविंशति
(२८) अट्ठाईस	अट्ठावीसा	अष्टाविंशति
(२९) उंतीस	अणवीसा, एकूणवीसा	ऊनत्रिंशत्
(३०) तीस	तीसा, तीसआ	त्रिंशत्
(३१) इकतीस		एकत्रिंशत्
(३२) बत्तीस	वत्तीसा	द्वात्रिंशत्
(३३) तेंतीस	तेत्तीसा	त्रयस्त्रिंशत्
(३४) चौंतीस		चतुस्त्रिंशत्
(३५) पैंतीस	पचतीसं पणतीसं	पंचत्रिंशत्
(३६) छत्तीस		षटत्रिंशत्
(३७) सैंतीस	सत्ततीसं	सप्तत्रिंशत्
(३८) अड़तीस	अट्ठतीसा	अष्टात्रिंशत्

	हिंदी	प्राकृत	संस्कृत
(३९)	उंतालीस		ऊनचत्वारिंशत्
(४०)	चालीस	चत्तालीस	चत्वारिंशत्
(४१)	इकतालीस	एक्कचत्तालीस	एकचत्वारिंशत्
(४२)	ब्यालीस	बायालीसं	द्वि "
(४३)	तितालीस	तेआलीसा	त्रि "
(४४)	चवालीस	चौवालीसा	चतुर् "
(४५)	पैंतालीस	पञ्चचत्तालीसा	पंच "
(४६)	छियालीस	*छचत्तालीसा	षट् "
(४७)	सैंतालीस	*सत्तअचालीसं	सप्त "
(४८)	अड़तालीस	अडयाले, अट्ठअचालीसं	अष्ट "
(४९)	उंचास	ऊणवंचासा, ऊणपंचासा	ऊनपंचाशत्
(५०)	पचास	पणासा, पंचास*, पन्ना	पंचाशत्
(५१)	इक्यावन		एकपंचाशत्
(५२)	बावन	बावणं	द्वा "
(५३)	तिरपन	त्रिप्पण*, तेवण	त्रि "
(५४)	चौअन	चउप्पण्ण	चतुः "
(५५)	पचपन	पंचावण	पंच "
(५६)	छप्पन	छप्पण*	षट् "
(५७)	सत्तावन	सत्तावणं*	सप्त "
(५८)	अट्ठावन	अट्ठवणं*	अष्ट "
(५९)	[illegible]		ऊनषष्टि

हिंदी	प्राकृत	संस्कृत
(६०) साठ	सट्ठि, सठ्ठ	षष्टि
(६१) इकसठ		एकषष्टि
(६२) बासठ		द्वा "
(६३) तिरसठ		त्रि "
(६४) चौंसठ		चतुः "
(६५) पैंसठ		पंच "
(६६) छियासठ		षट् "
(६७) सड़सठ	सत्तसट्ठी	सप्त "
(६८) अड़सठ	अट्ठसट्ठी	अष्ट "
(६९) उनहत्तर		ऊनसप्तति
(७०) सत्तर	सत्तरि	सप्तति
(७१) इकहत्तर		एकसप्तति
(७२) बहत्तर		द्वि "
(७३) तिहत्तर		त्रि "
(७४) चौहत्तर		चतुर् "
(७५) पचहत्तर		पञ्च "
(७६) छिहत्तर		षट् "
(७७) सतत्तर		सप्त "
(७८) अठत्तर		अष्ट "
(७९) उनासी		एकोनाशीति
		अशीति

हिंदी	प्राकृत	संस्कृत
(८१) इक्यासी		एकाशीति
(८२) बयासी		द्व्यशीति
(८३) तिरासी		त्र्यशीति
(८४) चौरासी		चतुरशीति
(८५) पचासी		पञ्चाशीति
(८६) छियासी		षडशीति
(८७) सतासी		सप्ताशीति
(८८) अठासी		अष्टाशीति
(८९) नवासी		नवाशीति
(९०) नब्बे	नउए, नव्वए*	नवति
(९१) इक्यानवे		एकनवति
(९२) बानवे		द्वि "
(९३) तिरानवे		त्रि "
(९४) चौरानवे		चतुर "
(९५) पंचानवे		पञ्च "
(९६) छियानवे		षण्णवति
(९७) सत्तानवे	सत्तानउए	सप्तनवति
(९८) अट्ठानवे		अष्टानवति
(९९) निन्यानवे		नवनवति
(१००) सौ	सत, सय, सआ, सअं	शत

हिंदी	प्राकृत	संस्कृत
१०५ एक सौ पाँच	पंचोत्तरसउ	पञ्चोत्तरशत
२०० दो सौ		द्विशत
१,००० हज़ार (दस सौ)		सहस्र
१००,००० लाख (सौ हजार)		लक्ष
१००,००,००० करोड़ (सौ लाख)		कोट
१००,००,००,००० अरब (सौ करोड़)		अर्बुद
१००,००,००,००,००० खरब (सौ अरब)		खर्व

अध्याय ८

सर्वनाम

२८४. हिंदी सर्वनामों के नीचे लिखे आठ मुख्य भेद हैं—

अ—पुरुषवाचक	(*मैं, तू*)
आ—निश्चयवाचक	(*यह, वह*)
इ—संबंधवाचक	(*जो*)
ई—नित्यवाचक	(*सो*)
उ—प्रश्नवाचक	(*कौन, क्या*)
ऊ—अनिश्चयवाचक	(*कोई, कुछ*)
ए—निजवाचक	(*अपना*)
ऐ—आदरवाचक	(*आप*)

नीचे इन पर तथा विशेषण के समान प्रयुक्त सर्वनामों पर व्युत्पत्ति की दृष्टि से विचार किया गया है। हिंदी सर्वनामों में प्रायः संज्ञाओं के समान ही कारक-चिह्न लगते हैं, अतः सर्वनामों की कारक-रचना पर विचार करना व्यर्थ होगा।

अ. पुरुषवाचक (*मैं, तू*)

क. उत्तमपुरुष (*मैं*)

२८५. उत्तमपुरुष *मैं* के नीचे लिखे मुख्य रूपांतर होते हैं—

	एक०	बहु०
मूलरूप	*मैं*	*हम*
विकृत रूप	*मुझ (संप्र० मुझे)*	*हम (संप्र० हमें)*
सबंध कारक	*मेरा*	*हमारा*

हि० *मैं* का संबंध संस्कृत तृतीया के रूप *मया* से माना जाता है—सं० *मया* > प्रा० *मइ; मए*, अप० *मइं*, *मईं* > हि० *मैं*। सं० *अहं* से इसका संबंध कुछ भी नहीं है।[1] चैटर्जी के अनुसार *मैं* का अनुनासिक अंश सं० तृतीया—*एन* के प्रभाव के कारण हो सकता है।[2]

२८६. हि० *मुझ* का संबंध षष्ठी कारक के प्राकृत रूप *मह* के अतिरिक्त एक अन्य रूप *मज्झ* > प्रा० *मह्यं*, सं० *मह्यं*, से किया जाता है। *मुझ* या *मझ* का प्रयोग पुरानी हिंदी में षष्ठी के अर्थ में भी होता था।[3] *उ* का आगम हि० *तुझ* के प्रभाव के कारण हो सकता है। चतुर्थी में *मुझको* के अतिरिक्त *मुझे* रूप भी प्रयुक्त होता है। यह *ए* विकृत रूप का चिह्न है जो *मुझ* में ऊपर से लगा है।

२८७. हि० *हम* का संबंध प्रा० *अम्हे* या *म्हे* से है जिनके *म* और *ह* में स्थान-परिवर्तन हो गया है। इन प्राकृत रूपों की व्युत्पत्ति *अस्मे* से मानी जाती है। यह वैदिक भाषा में वास्तव में मिलता है। कुछ कारकों में संस्कृत में भी इसके रूपांतर पाए जाते हैं, जैसे *अस्मान्*, *अस्माभिः*। संस्कृत प्रथम पुरुष बहुवचन *वयं* से हि० *हम* का किसी तरह भी संबंध नहीं हो सकता। हि० *हमें* का संबंध प्रा० अप० *अम्हइं* से किया जाता है।[4]

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § ६३
[2] चै., बे. लै., § ५२९
[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § ६३
[4] बी., क. ग्रै., भा. २, § ६४

अध्याय ८

सर्वनाम

२८४. हिंदी सर्वनामों के नीचे लिखे आठ मुख्य भेद हैं—

अ—पुरुषवाचक	(मैं, तू)
आ—निश्चयवाचक	(यह, वह)
इ—संबंधवाचक	(जो)
ई—नित्यवाचक	(सो)
उ—प्रश्नवाचक	(कौन, क्या)
ऊ—अनिश्चयवाचक	(कोई, कुछ)
ए—निजवाचक	(अपना)
ऐ—आदरवाचक	(आप)

नीचे इन पर तथा विशेषण के समान प्रयुक्त सर्वनामों पर व्युत्पत्ति की दृष्टि से विचार किया गया है। हिंदी सर्वनामों में प्रायः संज्ञाओं के समान ही कारक-चिह्न लगते हैं, अतः सर्वनामों की कारक-रचना पर विचार करना व्यर्थ होगा।

अ. पुरुषवाचक (मैं, तू)

क. उत्तमपुरुष (मैं)

२८५. उत्तमपुरुष मैं के नीचे लिखे मुख्य रूपांतर होते हैं—

	एक०	बहु०
मूलरूप	*मैं*	*हम*
विकृत रूप	*मुझ (संप्र० मुझे)*	*हम (संप्र० हमें)*
संबंध कारक	*मेरा*	*हमारा*

हि० *मैं* का संबंध संस्कृत तृतीया के रूप *मया* से माना जाता —सं० *मया* > प्रा० *मइ, मए*, अप० *मइं, मईं* > हि० *मैं*। सं० *अहं* इसका संबंध कुछ भी नहीं है।[1] चैटर्जी के अनुसार *मैं* का अनु-सिक अंश सं० तृतीया—*एन* के प्रभाव के कारण हो सकता है।[2]

२८६. हि० *मुझ* का संबंध षष्ठी कारक के प्राकृत रूप *मह* के तिरिक्त एक अन्य रूप *मज्झ* > प्रा० *मह्यं*, सं० *मह्यं*, से किया जाता । *मुझ* या *मझ* का प्रयोग पुरानी हिंदी में षष्ठी के अर्थ में भी होता ।[3] *उ* का आगम हि० *तुझ* के प्रभाव के कारण हो सकता है। तुर्यो में *मुझको* के अतिरिक्त *मुझे* रूप भी प्रयुक्त होता है। *ए* विकृत रूप का चिह्न है जो *मुझ* में ऊपर से लगा है।

२८७. हि० *हम* का संबंध प्रा० *अम्हे* या *म्हे* से है जिनके और *ह* में स्थान-परिवर्तन हो गया है। इन प्राकृत रूपों की उत्पत्ति *अस्मे* से मानी जाती है। यह वैदिक भाषा में वास्तव मिलता है। कुछ कारकों में संस्कृत में भी इसके रूपांतर पाए जाते हैं, जैसे *अस्मान्, अस्माभिः*। संस्कृत प्रथम पुरुष बहुवचन *वयं* से हि० *हम* का किसी तरह भी संबंध नहीं हो सकता। हि० *हमें* का संबंध प्रा० अप० *अम्हइं* से किया जाता है।[4]

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § ६३
[2] चै., बे. लै., § ५२९
[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § ६३
[4] बी., क. ग्रै., भा. २, § ६४

२८८. व्रज आदि पुरानी हिंदी के *हौं* का संबंध सं० *अ* या *अहकं** से है। शौरसेनी में इसका रूप *अहमं* तथा *अहअं* औ अपभ्रंश में *हमुं* तथा *हउं* मिलता है। अप० *हमुं* से व्रज *हउं* या रूप होना संभव है।

संबंध को छोड़ कर अन्य कारकों में व्रजभाषा में एकवच में *मो* विकृत रूप मिलता है। बीम्स के मतानुसार इसका संबं सं० पष्ठी के *मम* रूप से है।[1] प्रा० में पष्ठी में *मम, मह, मज्झ* तथ *मे* रूप मिलते हैं। इनके अतिरिक्त *मह* रूप भी पाया गया है अप० में यही *महुं* हो जाता है। *महुं* से *मौं* तथा *मो* हो सकन असंभव नहीं है।

ख. मध्यम पुरुष (तू)

२८९. मध्यम पुरुष सर्वनाम के मुख्य रूपांतर निम्नलिखि हैं—

	एक०	बहु०
मूलरूप	*तू*	*तुम*
विकृत रूप	*तुझ (सप्र० तुझे)*	*तुम (सप्र० तुम्हें)*
संबंध कारक	*तेरा*	*तुम्हारा*

हि० *तू* का संबंध सं० *त्वया* > प्रा० *तुम, तुअं* > अप० > *तुं* से है।

व्रज आदि पुरानी हिंदी का *तैं* रूप हिंदी *मैं* की तरह सं० *त्वया* > प्रा० *तइ, तए* > अप० *तइ* से संबंध रखता है।

२९०. हि० *तुझ* का संबंध प्राकृत के पष्ठी के *तुह* के रूपांत *तुज्झ* तथा सं० *तुभ्यं* से माना जाता है। प्रा० के पूर्व संस्कृत में इस तरह का रूप नहीं मिलते। हि० *तुझे* में *ए* विकृत रूप का चिह्न है।

[illegible]

ब्रज० तो अप० तह > सं० तुस* से निकला माना जाता है।

२९१. हि० तुम का संबंध प्रा० तुम्हे, तुम्ह > सं तुष्मे* से माना जाता है। हि० तुम्हें का संबंध प्रा० अप० तुम्हइं से है।

२९२. षष्ठी के मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा रूप विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं अतः साथ में आनेवाली संज्ञा के अनुरूप इनके लिंग तथा वचन में भेद होता है। र लगा कर बने हुए षष्ठी के इन सब रूपों का संबंध करक, करो, केरा, करा आदि प्राकृत प्रत्ययों के प्रभाव से माना जाता है। उदाहरण के लिए प्रा० मह केरो या मह करो रूप से हि० म्हारो, मारो, मेरा आदि समस्त रूप निकल सकते हैं—

> अम्ह करको > अम्ह अरओ > अम्हारो > हमारो > हमारा;
> तुम्ह करको > तुम्ह अरओ > तुम्हारो > तुम्हारो > तुम्हारा।

आ. निश्चयवाचक (यह, वह)

क. निकटवर्ती (यह)

२९३. संस्कृत के अन्यपुरुष के रूप हिंदी में इस अर्थ में प्रचलित नहीं हैं। हिंदी में अन्यपुरुष का काम निश्चयवाचक सर्वनामों से लिया जाता है। हिंदी में निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम यह के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं—

यह (इ : य)

	एक	बहु०
मूल रूप	यह	ये
विकृत रूप	इस (सब० इसे)	इन (सब० इन्हें)

हि० यह, ये की व्युत्पत्ति सं० एषः एते एतानि आदि रूपों से स्पष्ट ही है। हार्नली[1] भी इनका संबंध सं० एष से जोड़ते हैं।

---

[1] ह., ई. हि. ग्रै., § ४३८

२८८. ब्रज आदि पुरानी हिंदी के हौं का संबंध सं० अहं
या अहकं* से है। शौरसेनी में इसका रूप अहमं तथा अहअं और
अपभ्रंश में हमु तथा हउं मिलता है। अप० हमु से ब्रज हउं या हौं
रूप होना संभव है।

संबंध को छोड़ कर अन्य कारकों में ब्रजभाषा में एकवचन
में मो विकृत रूप मिलता है। बीम्स के मतानुसार इसका संबंध
सं० षष्ठी के मम रूप से है।[1] प्रा० में षष्ठी में मम, मह, मज्झ तथा
मे रूप मिलते हैं। इनके अतिरिक्त मह रूप भी पाया गया है।
अप० में यही महुं हो जाता है। महुं से मौं तथा मो हो सकना
असंभव नहीं है।

ख. मध्यम पुरुष (तू)

२८९. मध्यम पुरुष सर्वनाम के मुख्य रूपांतर निम्नलिखित
हैं—

	एक०	बहु०
मूलरूप	तू	तुम
विकृत रूप	तुझ (संप्र० तुझे)	तुम (संप्र० तुम्हें)
संबंध कारक	तेरा	तुम्हारा

हि० तू का संबंध सं० त्वया> प्रा० तुम, तुअं > अप० > तुं
से है।

ब्रज आदि पुरानी हिंदी का तैं रूप हिंदी मैं की तरह सं०
त्वया> प्रा० तइ, तए> अप० तइं से संबंध रखता है।

२९०. हि० तुझ का संबंध प्राकृत के षष्ठी के तुह के रूपांतर
तुज्झ तथा सं० तुभ्य से माना जाता है। प्रा० के पूर्व संस्कृत में इस
तरह का रूप नहीं मिलते। हि० तुझे में ए विकृत रूप का चिह्न है।

---

[1] बी० क० ग्रै०, भा० २ § ६३

ब्रज० तो अप० तहं> सं० तुस* से निकला माना जाता है।

२९१. हि० तुम का संबंध प्रा० तुम्हे, तुम्ह> सं तुष्मे* से माना जाता है। हि० तुम्हें का संबंध प्रा० अप० तुम्हइं से है।

२९२. षष्ठी के मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा रूप विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं अतः साथ में आनेवाली संज्ञा के अनुरूप इनके लिंग तथा वचन में भेद होता है। र लगा कर बने हुए षष्ठी के इन सब रूपों का संबंध करक, करो, केरा, करा आदि प्राकृत प्रत्ययों के प्रभाव से माना जाता है। उदाहरण के लिए प्रा० मह केरो या मह करो रूप से हि० म्हारो, मारो, मेरा आदि समस्त रूप निकल सकते हैं—

अम्ह करओ > अम्ह अरओ > अम्हारो > हमारो > हमारा ;
तुम्ह करओ > तुम्ह अरओ > तुम्हारो > तुम्हारो > तुम्हारा।

आ. निश्चयवाचक (*यह, वह*)

क. निकटवर्ती (*यह*)

२९३. संस्कृत के अन्यपुरुष के रूप हिंदी में इस अर्थ में प्रचलित नहीं है। हिंदी में अन्यपुरुष का काम निश्चयवाचक सर्वनामों से लिया जाता है। हिंदी में निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम यह के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं—

यह (इ : य)

	एक	बहु०
मूल रूप	यह	ये
विकारी रूप	इस (कर्म० इसे)	इन (कर्म० इन्हें)

हि० यह, ये की व्युत्पत्ति सं० एषः एते एतानि आदि रूपों से स्पष्ट ही है। हार्नली[1] भी इनका संबंध सं० एषः से जोड़ते हैं।

[1] हा. ई. हि. ग्रै., § ४१८

चैटर्जी के मतानुसार निकटवर्ती निश्चयवाचक समस्त रूपों का संबंध सं० मूल शब्द *एत-*(*एष; एषा, एतद्*) से है।[1]

हि० *इस* स्पष्ट रूप से प्रा० *एअस्स*< सं० *अस्य* से संबद्ध मालूम होता है। चैटर्जी इसका संबंध सं० *एतस्य* से जोड़ते हैं। हि० *इन* रूप प्रा० *एदिणा, एइणा,*< सं० *एतेन* से संबद्ध नहीं हो सकता। *न* के-*न* में संबंध-कारक बहुवचन के चिह्न का प्रभाव मालूम होता है।

इसे और *इन्हें* मूल रूपों के विकृत रूप हैं।

ख. दूरवर्ती (*वह*)

२९४. हिंदी दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम *वह* के मुख्य रूपांतर निम्नलिखित हैं—

वह (उ : व)

	एक०	बहु०
मूल रूप	*वह*	*वे*
विकृत रूप	*उस* (संप्र० *उसे*)	*उन* (संप्र० *उन्हें*)

सं० *तद्* (*सः, सा, तत्*) के रूपों से हिंदी के इस सर्वनाम का संबंध नहीं है। चैटर्जी[2] के अनुसार हि० *वह* सं० के कल्पित रूप *अव**> प्रा० *ओ** से संबंध रखता है। ईरानी में *अव* और *अवं* रूप पाए जाते हैं। दरद भाषाओं में भी ये वर्तमान हैं। यदि यह व्युत्पत्ति ठीक है तो हि० *उस* का संबंध प्रा० *अउस्स**< सं० *अवस्य** से जोड़ा जा सकता है। इसी प्रकार *वे* और *उन* के संबंध में कल्पनाएँ की जा सकती हैं। *उसे* और *उन्हें* विकृत रूप माने जा सकते हैं। वास्तव में इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति अनिश्चित है।

---

[1] चॅ., बे. लैं., § ५६६

[2] चॅ., बे. लैं., § ५७२

इ. संबंधवाचक (जो)

२९५. हिंदी संबंधवाचक सर्वनामों के रूपांतर निम्नलिखित —

	एक०	बहु०
मूलरूप :	जो	जो
विकृत रूप :	जिस (संप्र० जिसे)	जिन (संप्र० जिन्हें)

हि० जो का संबंध संस्कृत यः से है। हि० *जिस*<*यस्य*> प्रा० *स्स, जस्स* से संबद्ध है। हि० *जिन* सं० षष्ठी बहुवचन *यानां** से कला माना जाता है यद्यपि साहित्यिक संस्कृत में *येषां* रूप चलित है। *जिसे* और *जिन्हें* इस ढंग के अन्य प्रचलित रूपों समान ही बने हैं।

ई. नित्यसंबंधी (सो)

२९६. हिंदी नित्यसंबंधी सर्वनामों *सो* का व्यवहार साहित्यिक हिंदी में कम होता है। इसके स्थान पर प्रायः दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम व्यवहृत होने लगा है। हि० *सो* के निम्नलिखित रूपांतर संभव हैं—

	एक०	बहु०
मूलरूप :	सो	सो
विकृत रूप :	तिस (संप्र० तिसे)	तिन (संप्र० तिन्हें)

व्युत्पत्ति की दृष्टि से हिंदी *सो* का संबंध सं० *सः*> प्रा० *सो* से है। पुरानी हिंदी तथा बोलियों में *सो* का प्रयोग अन्यपुरुष के अर्थ में बराबर मिलता है। हि० *तिस* का संबंध प्रा० *तस्स*< सं० *तस्य* से है। हि० *तिन* की उत्पत्ति प्रा० *तेणं*< सं० *तानां** (*तेषां*) से मानी जाती है।

उ. प्रश्नवाचक (कौन, क्या)

२९७. हिंदी प्रश्नवाचक सर्वनाम *कौन* के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं—

		एक०	बहु०
मूलरूप	:	*कौन*	*कौन*
विकृत रूप	:	*किस* (सप्र० *किसे*)	*किन* (सप्र० *किन्हें*)

हि० *कौन* की व्युत्पत्ति प्रा० *कवन, कवण, कोउण* < सं० *कः पुनः* से मानी जाती है। हिंदी की बोलियों में *कौन* के स्थान पर *को* के रूप भी मिलते हैं जिनका संबंध सं० *कः* के से सीधा है। हि० *किस* का संबंध प्रा० *कस्स* < सं० *कस्य* से स्पष्ट है। हि० *किन* की उत्पत्ति प्रा० *केणा* सं० *काना* * (*केषां*) कल्पित रूप से मानी जाती है। *किसे, किन्हें* रूप अन्य प्रचलित रूपों के समान बने प्रतीत होते हैं।

हि० नपुंसक लिंग की व्युत्पत्ति अनिश्चित है। सं० *किम्* से इसका संबंध संभव नहीं है।

ऊ. अनिश्चयवाचक (*कोई, कुछ*)

२९८. हिंदी अनिश्चयवाचक सर्वनाम *कोई* के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं—

		एक०	बहु०
मूलरूप	:	*कोई*	*कोई*
विकृत रूप	:	*किसी*	*किन्हीं*

हि० *कोई* की व्युत्पत्ति प्रा० *कोवि* < सं० *कोऽपि* से मालूम पड़ती है। हि० *किसी* का संबंध सं० *कस्यापि* से हो सकता है। हि० *किन्हीं* रूप की व्युत्पत्ति अनिश्चित है।

हि० नपुंसक लिंग *कुछ* का संबंध सं० *किंचित्* रूप से जोड़ा जाता है। प्रा० में *कच्छु** संभावित रूप माना जाता है।

ए. निजवाचक (*आप*)

२९९. हि० निजवाचक सर्वनाम *आप*, प्रा० *अप्पा, अत्ता* सं० *आत्मन्* से निकला है। हि० *अपना* वास्तव में *आप* का संबंध-कारक

रूप है किंतु हिंदी में निजवाचक होकर स्वतंत्र शब्द हो गया है। इस रूप का संबंध प्रा० *अप्पाणो*>अप० *अप्पाणु* जैसे रूपों से माना जाता है। सं० *आत्मा* से संबद्ध प्रा० *अत्ता, अत्ताणो* रूप आधुनिक भाषाओं में नहीं आ सके हैं। हि० *आपस* का संबंध प्रा० *आप्पस्स** < सं० *आत्मस्य** संभावित रूपों से जोड़ा जाता है।

ऐ. आदरवाचक

३००. व्युत्पत्ति की दृष्टि से आदरवाचक *आप* और निजवाचक *आप* एक ही शब्द हैं। शिष्ट हिंदी में मध्यम पुरुष *तू* या *तुम* के स्थान पर प्रायः सदा ही *आप* व्यवहृत होता है।

ओ. विशेषण के समान प्रयुक्त सर्वनाम

३०१. विशेषण के समान प्रयुक्त सर्वनामों के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं[1]—

परिमाणवाचक	गुणवाचक
इतना	*ऐसा*
उतना	*वैसा*
तितना	*तैसा*
जितना	*जैसा*
कितना	*कैसा*

व्युत्पत्ति की दृष्टि से परिमाणवाचक रूपों का संबंध सं० *इयत्, कियत्*> प्रा० *एत्तिय, केत्तिय* आदि से है।[2] *-ना* को बीम्स ने लघुसूचक अर्थ का द्योतक माना है।[3]

गुणवाचक रूपों का संबंध सं० *यादृश्, तादृश्* आदि रूपों से जोड़ा जाता है, जैसे सं० *कीदृश्*> प्रा० *केरिसा*> हि० *कैसा*।

---

[1] गु., हि. व्या., § १४१

[2] हा., ई. रि. पै.; § २९६

[3] बी., क. ग्रै., २, § ७४

अध्याय ९

क्रिया

अ. संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा हिंदी क्रिया

३०२. एक-दो कालों के रूपों को छोड़कर संस्कृत क्रिया पूर्णतया संयोगात्मक थी। छः प्रयोगों, दस कालों तथा तीन पुरुष और तीन वचनों को लेकर प्रत्येक संस्कृत धातु के ५४० (६×१०×३×३) भिन्न रूप होते हैं। फिर संस्कृत की समस्त धातुओं के रूप समान नहीं बनते। इस दृष्टि से संस्कृत की २००० धातुएं दस श्रेणियों में विभक्त हैं, जिन्हें गण कहते हैं। एक गण की धातुओं के रूप दूसरे गण की धातुओं से भिन्न होते हैं। इस तरह संस्कृत क्रिया का ढंग बहुत पेंचीदा है।

यह अवस्था बहुत दिन नहीं रह सकती थी। म० भा० आ० काल में आते-आते क्रिया की बनावट सरल होने लगी। यद्यपि मा० भा० आ० में क्रिया संयोगात्मक ही रही किंतु पाली क्रिया में उतने रूप नहीं मिलते जितने संस्कृत में पाए जाते हैं। दस गणों में से पाँच (१, ४, ६, ७, १०) के रूप पाली में इतने मिलते-जुलते होने लगे कि इन्हें साधारणतया एक ही गण माना जा सकता है। शेष गणों के रूपों पर भी भ्वादिगण (१) का प्रभाव अधिक पाया जाता है। संस्कृत की धातुएं भ्वादिगण में सब से अधिक संख्या में पाई जाती हैं। संभवतः भ्वादिगण का अन्य गणों के रूपों पर अधिक प्रभाव का

---

[1]बी., क. ग्रै., भा. ३, अ. १

यही कारण रहा हो। इसके अतिरिक्त तीन वचनों में से द्विवचन पाली से लुप्त हो गया, और छः प्रयोगों में से आत्मनेपद और परस्मैपद में अन्तिम का प्रभाव विशेष हो जाने से वास्तव में पांच ही प्रयोग पाली में रह गए। संस्कृत के लुट् और लृङ् के निकल जाने से पाली के लकारों की संख्या भी दस से आठ रह गई। इस तरह किसी एक धातु के पाली में साधारणतया २४० (५ ×८× २× ३) रूप हो सकते हैं।

प्राकृतों की क्रिया सरलता में एक कदम और आगे बढ़ गई। महाराष्ट्री में गणों का प्रायः अभाव है, समस्त क्रियायें साधारणतया प्रथम भ्वादिगण के समान रूप चलाती हैं। छः प्रयोगों में से केवल तीन—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य तथा प्रेरणार्थक—रह गए। द्विवचन लौट कर आया ही नहीं। कालों में केवल चार—वर्तमान, आज्ञा, भविष्य तथा कुछ विधि के चिह्न रह गए। कालों के कम हो जाने से कृदंत के रूपों का व्यवहार अधिक होने लगा जिसका प्रभाव आ० आ० भा० की क्रिया के इतिहास पर विशेष पड़ा। अब तक भी क्रिया के अधिकांश रूप संयोगात्मक ही थे यद्यपि इस संबंध में कुछ गड़बड़ी हो गई थी।

प्रा० तथा म० आ० भा० की क्रिया के विकास के संबंध में संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि संस्कृत, पाली तथा प्राकृत तीनों में क्रिया संयोगात्मक ही रही किंतु रूपों की संख्या में क्रमशः कमी होती गई। जब प्रत्येक प्रयोग, काल तथा वचन आदि के अर्थों को व्यक्त करने के लिए धातु के पृथक्-पृथक् रूप नहीं रह गए तब वियोगात्मक ढंग से नए रूपों का बनाया जाना स्वाभाविक था। यह अवस्था हमें आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में आकर मिलती है।

अन्य आ० भा० आ० भाषाओं की क्रियाओं की तरह ही हिंदी क्रिया के रूपांतरों का ढंग भी अत्यंत सरल है। पाँच धातुओं को

छोड़ कर शेष हिंदी धातुओं में संस्कृत के गणों के समान किसी प्रकार का भी श्रेणी-विभाग नहीं है। प्रयोगों के भावों को प्रकट करने का ढंग भी हिंदी का अपना नया है। इसकी सहायता से हिंदी में प्रयोगों के भाव स्पष्ट रूप से किन्तु सरलतापूर्वक प्रकट हो जाते हैं। ये रूप संयोगात्मक हैं। कालों की संख्या पंद्रह के लगभग है किंतु ये प्रायः कृदंत अथवा कृदंत और सहायक क्रिया के संयोग से बनते हैं। संस्कृत कालों से विकसित काल हिंदी में दो तीन ही हैं। म० भा० आ० भाषाओं के समान हिंदी में एकवचन और बहुवचन ये दो ही वचन हैं जिनके तीन पुरुषों में तीन-तीन रूप होते हैं। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हिंदी क्रिया के रूपों की बनावट बहुत बड़ी संख्या में वियोगात्मक हो गई है। शुद्ध संयोगात्मक रूप बहुत कम मिलते हैं। कुछ में दोनों प्रकार के रूपों का मिश्रण है। इस संबंध में विस्तार-पूर्वक आगे विचार किया जायगा।

आ. धातु

३०३. धातु क्रिया के उस अंश को कहते हैं जो उसके समस्त रूपांतरों में पाया जाता हो, जैसे *चलना*, *चला*, *चलेगा*, *चलता* आदि समस्त रूपों में चल् अंश समान रूप से मिलता है अतः चल् धातु मानी जायगी। धातु की धारणा वैयाकरणों के मस्तिष्क की उपज है। यह भाषा का स्वाभाविक अंग नहीं है। क्रिया के *-ना* से युक्त साधारण रूप से—*ना* हटा देने पर हिंदी धातु निकल आती है, जैसे *खाना*, *देखना*, *चलना* आदि में *खा*, *देख*, *चल* धातु हैं।

वैयाकरणों[1] के अनुसार संस्कृत धातुओं की संख्या लगभग २००० मानी जाती है। इनमें से केवल ८०० का प्रयोग वास्तव में प्राचीन साहित्य में मिलता है। इन ८०० में २०० के लगभग तो केवल वेदों और ब्राह्मण-ग्रंथों में प्रयुक्त हुई हैं, ५०० वैदिक और संस्कृत दोनों साहित्यों में मिलती हैं और १०० से कुछ अधिक केवल

[1] वे., वे. लै., § ६१४

संस्कृत में मिलती हैं। म० भा० आ० में आते-आते इन ८०० धातुओं की संख्या और रूपों में परिवर्तन हुआ। जैसा ऊपर कहा जा चुका है वैदिक काल की लगभग २०० धातुयें संस्कृत काल में ही लुप्त हो चुकी थीं। आगे चल कर संस्कृत में प्रयुक्त धातुओं में से भी बहुतों का प्रचार नहीं रहा। प्राचीन धातुओं के आधार पर कुछ नई धातुयें भी बन गईं तथा कुछ बिल्कुल नई धातुयें तत्कालीन प्रचलित भाषाओं से भी आ गईं। प्राकृत धातुओं की ठीक-ठीक गणना अभी कदाचित् नहीं हो पाई है।

हार्नली[1] के अनुसार हिंदी धातुओं की संख्या लगभग ५०० है। ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी धातुयें दो मुख्य श्रेणियों में विभक्त की जाती हैं—मूल धातु और यौगिक धातु। हिंदी मूल धातु वे हैं जो संस्कृत से हिंदी में आई हैं। हार्नली के अनुसार इनकी संख्या ३९३ है। मूल धातुओं में भी कई वर्ग किए जा सकते हैं। कुछ मूल धातुयें संस्कृत धातुओं से बिल्कुल मिलती-जुलती हैं (ही० *खा*<सं०*खाद्*) कुछ में संस्कृत के किसी विशेष गण के रूप का प्रभाव पाया जाता है या गण-परिवर्तन हो जाता है (हि० *नाच*<सं० *नृत्-य*) और कुछ में वाच्य का परिवर्तन मिलता है (हि० *बेच*<सं० *विक्रि-य*) इस दृष्टि से हार्नली ने मूल धातुओं को सात वर्गों में रक्खा है। चैटर्जी[2] मूल धातुओं को निम्नलिखित चार मुख्य वर्गों में रखते हैं—

(१) वे मूल धातुयें जो प्रा० भा० आ० से आई हैं (तद्भव)।
(२) वे मूल धातुयें जो प्रा० भा० आ० की धातुओं के प्रेरणार्थक रूपों से आई हैं (तद्भव)।
(३) वे मूल धातुयें जो आधुनिक काल में संस्कृत से ले ली गई हैं (तत्सम या अर्द्ध तत्सम)।

---

[1]हार्नली, 'हिंदी रूट्स', जर्नल आव् दि एशियाटिक सोसायटी आव् बंगाल, १८८०, भाग १

[2]चै०, बे० लैं०, § ६१५

(४) वे मूल धातुयें जिनकी व्युत्पत्ति संदिग्ध है। ये सब देशी हों यह आवश्यक नहीं है।

हिंदी यौगिक धातुयें वे कहलाती हैं जो संस्कृत धातुओं से तो नहीं आई हैं किंतु जिनका संबंध या तो संस्कृत रूपों से है और या वे आधुनिक काल में गढ़ी गई हैं। ये तीन वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं—

(१) नाम धातु (हि० *जम*<सं० *जन्म*)।

(२) संयुक्त धातु (हि० *चुक*<सं० *च्युत्+कृ*)।

(३) अनुकरणमूलक, अथवा एक ही धातु को दोहरा कर बनाई हुई धातुयें (हि० *फूकना, फड़फड़ाना*)।

हार्नली के अनुसार हिंदी यौगिक धातुओं की संख्या १८९ है। मूल और यौगिक धातुओं के अतिरिक्त कुछ विदेशी भाषाओं की धातुयें तथा शब्द हिंदी में धातुओं के समान प्रयुक्त होने लगे हैं।

इ. सहायक क्रिया[1]

३०४. हिंदी की काल-रचना में कृदंत रूपों तथा सहायक क्रियाओं से विशेष सहायता ली जाती है इसलिए काल-रचना पर विचार करने के पूर्व इन पर विचार कर लेना अधिक युक्तिसंगत होगा। हिंदी काल-रचना में *होना* सहायक क्रिया का व्यवहार होता है। इसके रूप भिन्न-भिन्न अर्थों और कालों में प्रयुक्त होते हैं। *होना* के मुख्य रूप नीचे दिए जाते हैं—

वर्तमान निश्चयार्थ

१	हूँ	हैं
२	है	हो
३	है	हैं

[1] बी., क. ग्रै., भा. ३, अ ४

भूत निश्चयार्थ

१	*था*	*थे*
२	*था*	*थे*
३	*था*	*थे*

भविष्य निश्चयार्थ

१	*होऊंगा*	*होवेंगे*
२	*होगा*	*होगा*
३	*होगा*	*होंगे*

वर्तमान आज्ञा

१	*होऊं*	*हों*
२	*हो*	*होओ*
३	*हो*	*होवें*

भूत संभावनार्थ

१	*होता*	*होते*
२	*होता*	*होते*
३	*होता*	*होते*

भविष्य आज्ञा के अर्थ में मध्यम पुरुष बहुवचन में होना रूप प्रयुक्त होता है। स्त्रीलिंग में इनमें से अनेक रूपों में परिवर्तन होते हैं।

ये सब रूप हिंदी में होना क्रिया के रूपांतर माने जाते हैं किन्तु व्युत्पत्ति की दृष्टि से इनका संबंध संस्कृत की एक से अधिक क्रियाओं से है।

३०५. हूं आदि वर्तमान निश्चयार्थ के रूपों का संबंध सं० √अस् से माना जाता है, जैसे हि० हूं (बो० हौं) <प्रा० अम्हि अम्मि <सं० अस्मि; हि० है (बो० अ) <प्रा० अत्थि <सं० अस्ति। इस क्रिया से बने हुए हिंदी बोलियों के अनेक रूपों में तथा कुछ अन्य

प्रा० भा० आ० भाषाओं के रूपों में भी √अस् का अ-वर्तमान है। खड़ी बोली हिंदी में यह लुप्त हो गया है।

३०६. *था* आदि भूत निश्चयार्थ के रूपों का संबंध सं० √स्था से माना जाता है। जैसे—

हि० *था* < प्रा० *थाइ, ठाइ* < सं० *स्थित*।

३०७. हि० √*होना* के शेष समस्त रूपों का संबंध सं० √भू से माना जाता है। जैसे—

हि० *होता* < प्रा० *होन्तो*— < सं० *भवन्*।

हि० *हुआ* (बो० *हुयो, भयो*) < प्रा० *भाविओ* < सं० *भवति*।

३०८. पूर्वी हिंदी की कुछ बोलियों में पाए जाने वाले *बाटे* आदि रूपों का संबंध सं० √*वृत्* से जोड़ा जाता है, जैसे हि० *बाटे* < प्रा० *वट्टइ* सं० *वर्तते*।

हि० *रहना* की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। चैटर्जी[1] ने इस संबंध में विस्तार के साथ विचार किया है किन्तु किसी अंतिम निर्णय पर नहीं पहुँच सके हैं। टर्नर[2] इसका संबंध सं० *रहित*, आदि शब्दों की √*रह्* धातु से जोड़ते हैं।

पहाड़ी, बंगाली, गुजराती, राजस्थानी तथा पुरानी अवधी आदि में पाई जाने वाली *छ* से युक्त सहायक क्रिया की व्युत्पत्ति प्रा० भा० आ० की कल्पित धातु √*अच्छ्** से मानी जाती थी।[3] टर्नर[4] अन्य मतों का खंडन कर के सं० *आ*+√*क्षि* से इसका उद्गम समझते हैं। हिंदी में इसके रूपों का व्यवहार नहीं होता है।

---

[1] चै., बे. लै., § ७६८

[2] टर्नर, नेपाली डिक्शनरी, पृ० ५३१ रहनु

[3] चै., बे. लै., § ७६६

[4] टर्नर, नेपाली डिक्शनरी, पृ० १९१ छनु

इ. कृदंत

३०९. हिंदी काल-रचना में वर्तमानकालिक कृदंत तथा भूतकालिक कृदंत के रूपों का व्यवहार स्वतन्त्रता-पूर्वक होता है।

वर्तमानकालिक कृदंत धातु के अंत में–ता लगाने से वनता है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत वर्तमानकालिक कृदंत के–अंत (शतृ प्रत्ययांत) वाले रूपों से मानी जाती है। जैसे—

हि० *पचता* < प्रा० *पचंतो* < सं० *पचन्*

हि० *पचती* < प्रा० *पचंती* < सं० *पचन्ती*

३१०. *भूतकालिक कृदंत* धातु के अंत में—*आ* लगाने से वनता है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के भूतकालिक कर्मवाचक कृदंत के त, इत (क्त प्रत्यांत) वाले रूपों से मानी जाती है। जैसे—

हि० *चला* (वो० *चल्यो*) < प्रा० *चलिओ* < सं० *चलितः*

हि० *करा* <प्रा० *करिओ*< सं० *कृतः*

भोजपुरी आदि विहारी वोलियों में भूतकालिक कृदंत में-*ल* अंत वाले रूप भी पाए जाते हैं। इनका संबंध म० भा० आ० के—*इल्ल* तथा प्रा० भा० आ० के—*ल* प्रत्यय से जोड़ा जाता है। इस संबंध में चैटर्जी[1] ने विस्तार के साथ विचार किया है।

३११. हिंदी में पाए जाने वाले अन्य कृदंत रूपों की व्युत्पत्ति भी यहाँ ही दे देना उपयुक्त होगा।

पूर्वकालिक कृदंत अविकृत धातु के रूप में रहता है या धातु के अंत में *कर*, *के*, *कर के* लगा कर वनता है।

संस्कृत में यह कृदंत-*त्वा* और -*य* लगाकर वनता है। क्रिया के पहले उपसर्ग आने पर ही संस्कृत में-*य* लगता था किन्तु प्राकृत में

---

[1] चैं, बे. लै, § ६८१, ६८८

. ब्रजभाषा तथा बंगाली, उड़िया, गुजराती आदि कुछ अन्य
ाधुनिक आर्यभाषाओं में -ब-लगाकर क्रियार्थक संज्ञा बनती है।
सका संबंध संस्कृत कर्मवाच्य भविष्य कृदंत प्रत्यय *-तव्य* से माना
ाता है जैसे, हिं० बो० *करब* < प्रा० *करेअव्वं, करिअव्वं* < सं०
र्तव्यम्। हिंदी की कुछ बोलियों में भविष्य काल में भी इस -ब अंत
ाले रूप का व्यवहार पाया जाता है।

३१३. *कर्तृवाचक संज्ञा* क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप में ला, *हारा* आदि शब्द लगा कर बनाई जाती है, जैसे *मरने वाला, जाने* ला आदि। हि० *वाला* का संबंध सं० *पालक* से जोड़ा जाता है था हि० *हारा* की व्युत्पत्ति कुछ लोग सं० *धारक* तथा अन्य सं० ारक से मानते हैं।

बोलियों में-*अइया* लगाकर भी कर्तृवाचक संज्ञा बनती है, जैसे *पढ़ैया, चढ़ैया* आदि। इसका संबंध सं० कर्तृवाचक संज्ञा के प्रत्यय *-तृ-+क* से माना जाता है जैसे, हि० *पढ़ैया* < सं० *पठतृकः*।

३१४. *तात्कालिक कृदन्त* रूप वर्तमानकालिक कृदंत के विकृत रूप में ही लगाकर बनता है जैसे, *आते ही, खाते ही,* आदि। *अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त*, वर्तमानकालिक कृदंत का विकृत रूप मात्र है, जैसे *उसे काम करते देर हो गई*। *पूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त* भूतकालिक कृदंत का विकृत रूप है, जैसे *उसे गये बहुत दिन हो गये*।

३. कालरचना

३१५. मुख्य काल तीन हैं—वर्तमान, भूत, भविष्य। निश्चयार्थ, आज्ञार्थ तथा संभावनार्थ इन तीन मुख्य अर्थों तथा व्यापार की सामान्यता,[1] पूर्णता तथा अपूर्णता को ध्यान में रखते हुए समस्त

[1] हिं० ए० अ० § २८९

हिंदी कालों की संख्या १६ हो जाती है। क्रिया की रचना की दृष्टि से इनका संक्षिप्त वर्गीकरण नीचे दिया जाता है।

क. साधारण अथवा मूलकाल

	उदाहरण
(१) भूत निश्चयार्थ	वह चला
(२) भविष्य ,,	वह चलेगा
(३) वर्तमान संभावनार्थ	अगर वह चले
(४) भूत ,,	अगर वह चलता
(५) वर्तमान आज्ञार्थ	वह चले
(६) भविष्य आज्ञार्थ	तुम चलना

ख. संयुक्त काल

वर्तमानकालिक कृदंत + सहायक क्रिया

(७) वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ	वह चलता है
(८) भूत ,, ,,	वह चलता था
(९) भविष्य ,, ,,	वह चलता होगा
(१०) वर्तमान ,, संभावनार्थ	अगर वह चलता हो
(११) भूत ,, ,,	अगर वह चलता होता

भूतकालिक कृदंत + सहायक क्रिया

(१२) वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ	वह चला है
(१३) भूत ,, ,,	वह चला था
(१४) भविष्य ,, ,,	वह चला होगा
(१५) वर्तमान ,, ,,	अगर वह चला हो
(१६) भूत ,, ,,	अगर वह चला होता

३१६. ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी कालों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है[1]—

क. संस्कृत कालों के अवशेष काल—इस श्रेणी में वर्तमान संभावनार्थ और आज्ञा आते हैं।

ख. संस्कृत कृदंतों से बने काल—इस श्रेणी में भूत निश्चयार्थ, भूत संभावनार्थ तथा भविष्य आज्ञा आते हैं।

ग. आधुनिक संयुक्तकाल—इस श्रेणी में कृदंत तथा सहायक क्रिया के संयोग से आधुनिक काल में बने समस्त अन्य काल आते हैं।

हिंदी भविष्य निश्चयार्थ की बनावट असाधारण है। यह इन तीन वर्गों में से किसी के अन्तर्गत भी नहीं आता है। संस्कृत धातु क कृदंत रूप के संयोग के कारण इसे ख. वर्ग में रक्खा जा सकता है।

क. संस्कृत कालों के अवशेष

३१७. जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, संस्कृत कालों के अवशेष स्वरूप हिंदी में केवल दो काल हैं—वर्तमान संभावनार्थ और आज्ञा।

ग्रियर्सन[2] ने इन कालों के संबंध में विस्तारपूर्वक विचार किया है। उनके मत में हिंदी वर्तमान संभावनार्थ के रूपों का संबंध संस्कृत के वर्तमान काल के रूपों से है। ग्रियर्सन के अनुसार तुलनात्मक कोष्टक नीचे दिया जाता है।

		सं०	प्रा०	अप०	हि०
एक०	(१)	चलामि	चलामि	चलउं	चलूं
	(२)	चलसि	चलसि	चलहि, चलइ	चले
	(३)	चलति	चलइ	चलहि, चलइ	चले

[1] धी., क. ग्रै., भा. ३, § ३२

[2] ग्रियर्सन रैडिकल ऐंड पार्टिसिपियल टेन्सेज़, जर्नल आव् दि एशियाटिक सोसायटी आव् बंगाल, १८९६, पृ० ३५२-३७५

(१)	चलामः	चलामो	चलहुं	[illegible]
(२)	चलथ	चलह	चलहु	[illegible]
(३)	चलन्ति	चलन्ति	चलहिं	[illegible]

३१८. हिंदी प्रथम पुरुष के रूपों का विकास संस्कृत रूपों से स्पष्ट है। सं० प्रथम पुरुष बहुवचन का *त* मराठी में अब भी मौजूद है, जैसे म० *उठती* (वे उठते हैं)।

हिंदी मध्यम पुरुष के रूपों के विकास के संबंध में भी कोई विशेष कठिनाई नहीं मालूम पड़ती। किंतु उत्तम पुरुष के हिंदी रूपों का संबंध संस्कृत रूपों से उतनी सरलता से नहीं जुड़ता। बीम्स[1] के अनुसार इस पुरुष के एकवचन और बहुवचन के रूपों में आपस में परिवर्तन हो गया है, जैसे, सं० *चलामः*> प्रा० *चलामु*, *चलाउ**> चलें, चलूँ। इसी प्रकार सं० *चलामि*> प्रा० *चलाइ**> ऐसा चलें, चलें। ऐसा भी माना जाता है कि सं० *चलाम* से ही इकार के लोप हो जाने और *म* के अनुस्वार में परिवर्तित हो जाने से हि० एकवचन चलूं बना होगा। ऐसी अवस्था में हिंदी उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप प्रथम पुरुष बहुवचन के रूप से प्रभावित माना जा सकता है। इस तरह के उदाहरण मिलते हैं। वर्तमान निश्चयार्थ से वर्तमान संभावनार्थ में परिवर्तन आधुनिक माना जाता है।

३१९. ग्रियर्सन के मतानुसार हिंदी आज्ञा के रूपों का संबंध भी संस्कृत वर्तमान काल के रूपों से ही है किंतु बीम्स इनका संबंध संस्कृत आज्ञा के रूपों से जोड़ते हैं जो संभव नहीं प्रतीत होता कदाचित् संस्कृत के वर्तमान और आज्ञा दोनों ही का प्रभाव हिंदी के आज्ञा के रूपों पर पड़ा है। नीचे संस्कृत, प्राकृत तथा हिंदी के आज्ञा के रूप बराबर-बराबर दिए जा रहे हैं—

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. ३, § ३३

	सं०	प्र०	हि०
ए०	(१) चलानि	चलमु	चलूं
	(२) चल	चलसु, चलाहि, चल	चल
	(३) चलतु	चलदु, चलउ	चले
ब०	(१) चलाम	चलामो	चलें
	(२) चलत	चलह, चलध	चलो
	(३) चलंतु	चलंतु	चलें

यह ध्यान देने योग्य बात है कि मध्यम पुरुष एकवचन को छोड़ कर आज्ञार्थ के अन्य हिंदी रूप वर्तमान संभावनार्थ के ही समान हैं। आज्ञा और संभाव्य भविष्यत् के रूपों का इस तरह का हेल-मेल कुछ-कुछ पाली प्राकृत में भी पाया जाता है।

आदरार्थ आज्ञा का विशेष रूप हिंदी में मध्यमपुरुष बहुवचन में मिलता है, जैसे *आप मीठा लीजिये*। इसकी व्युत्पत्ति सं० आशीर्लिङ् के चिह्न-या-(जैसे *दद्यात*) से मानी जाती है। प्राकृत में यह एज्ज, इज्ज (देज्ज दिज्ज) रूपों में मिलता है।

३२०. खड़ी बोली में तो नहीं किंतु ब्रज, कन्नौजी में जो ह लगाकर भविष्य निश्चयार्थ बनता है वह भी इसी श्रेणी में आता है। ग्रियर्सन के अनुसार दिए हुए नीचे के कोष्ठक से यह संबंध बिल्कुल स्पष्ट हो जावेगा—

	सं०	प्रा०	अप०	ब्रज
ए०	(१) चलिष्यामि	चलिस्सामि चलिहिमि	चलिसउं, चलिहिउं	चलिहौं
	(२) चलिष्यसि	चलिस्ससि चलिहिसि	चलिस्सहि, चलिसइ चलिहिहि, चलिहिइ	चलिहै

	(३) चलिष्यति	चलिस्सइ	चलिस्सहि,	चलिस्सइ,	ग्री
		चलिहिइ	चलिहिहि,	चलिहिइ	
बहु०	(१) चलिष्यामः	चलिस्सामो	चलिस्सहुं,	चलिहिहुं	
		चलिहिमो			
	(२) चलिष्यथ	चलिस्सह	चलिस्सहु	चलिहिहु	ग्रि
		चलिहिइ			
	(३) चलिष्यन्ति	चलिस्सन्ति	चलिस्सहि,	चलिहिहि	ग्रि
		चलिहिन्ति			

वर्तमान संभावनार्थ के समान यहाँ भी उत्तम पुरुष एकवचन और बहुवचन के रूपों में अदल-बदल का होना मानना पड़ेगा, अथवा उत्तम पुरुष बहुवचन के रूप पर प्रथम पुरुष के बहुवचन के रूप का भी प्रभाव हो सकता है।

खड़ी बोली हिंदी में *वर्तमान निश्चयार्थ* नहीं पाया जाता है किंतु पुरानी साहित्यिक व्रज में यह काल मिलता है, जैसे *खेलत स्याम अपने रंग, बनते आवत धेनु चराये*। यह वर्तमान-कालिक कृदंत है।

३२१. हिंदी भविष्य निश्चयार्थ देखने में मूल काल मालूम होता है किंतु वास्तव में यह बाद का बना हुआ काल है। ध्यान देने से मालूम पड़ता है कि इसकी रचना वर्तमान संभावनार्थ के रूपों में *गा, गे, गी, गीं* आदि लगाकर होती है। भविष्य के इन ... संबंध संस्कृत √*गम्* के भूतकालिक कृदंत *गत*> प्रा० *गओ*, *गओ* से जोड़ा जाता है।[1]

इसी प्रकार मारवाड़ी आदि में *ल* अंत वाले भविष्य में आने वाले *ल* का संबंध सं० *लग्न*> प्रा० *लग्गो* से जोड़ा जाता है

---

[1] बी, क ई, भा ३, § ५४

[2] बी, क ई, भा ३, § ५५

ख. संस्कृत कृदंतों से बने काल

३२२. संस्कृत कृदंतों से बने हिंदी कालों का संबंध संस्कृत कालों से सीधा नहीं है। संस्कृत कृदंतों के आधार पर बने हुए हिंदी कृदंतों का प्रयोग आधुनिक समय में काल के लिए होने लगा। कृदंतों के रूपों को काल के स्थान पर प्रयुक्त करने का ढंग बहुत पुराना है। स्वयं साहित्यिक संस्कृत में ही बाद को यह ढंग चल गया था। मूल कालों की संख्या में कमी हो जाने पर प्राकृत में भी कृदंतों का इस तरह का प्रयोग बहुत पाया जाता है। आधुनिक काल में आकर जब प्राचीन कालों के संयोगात्मक रूप नष्टप्राय हो गए थे तब अधिकांश कालों की रचना के निमित्त कृदंत रूपों का व्यवहार स्वाभाविक है।

केवल मात्र कृदंतों से बने काल हिंदी में तीन हैं—भूत निश्चयार्थ, भूत संभावनार्थ तथा भविष्य आज्ञा। इनके लिए क्रम से भूतकालिक कृदंत, वर्तमानकालिक कृदंत तथा क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग होता है। इन कृदंतों की व्युत्पत्ति पर ऊपर विचार किया जा चुका है, अतः इन कृदंती कालों के इतिहास में कोई विशेषता नहीं रह जाती। मूल कृदंत के रूपों के बहुवचन में एकारांत विकृत रूप (*चले, चलते*) हो जाते हैं, तथा स्त्रीलिंग एकवचन में *ई* (*चली, चलती*) और बहुवचन में *ईं* (*चलीं, चलतीं*) लगाई जाती है। इन कृदंती कालों के कारण ही हिंदी क्रिया में लिंगभेद पाया जाता है।

संस्कृत कर्मवाच्य भविष्य प्रत्यय–*तव्य* से संबद्ध *ब* अंत वाले भविष्य काल का प्रयोग हिंदी की अवधी आदि बोलियों में पाया जाता है।

ग. संयुक्त काल

३२३. हिंदी के शेष समस्त काल इस श्रेणी में आते हैं। इनकी रचना वर्तमान या भूतकालिक कृदंत के रूपों में सहायक क्रिया लगा कर होती है। इन कालों का संबंध संस्कृत के कालों से बिल्कुल भी

नहीं है, केवल क्रिया के कृदंत रूप तथा सहायक क्रिया का विका
संस्कृत रूपों से अवश्य हुआ है। इन रूपों का इतिहास कृदंत तथ
सहायक क्रिया शीर्षक विवेचनों में दिखलाया जा चुका है। दोनों के
मिला कर काल-रचना के लिए व्यवहार होना आधुनिक है

ऊ. वाच्य

३२४. हिंदी में वाच्य बनाने का ढंग आधुनिक है। मूल क्रिय के भूतकालिक कृदंत के रूपों में *जाना* धातु के आवश्यक रूपों के संयोग से हिंदी कर्मवाच्य बन जाता है।

संस्कृत में *-य-* लगाकर कर्मवाच्य बनता था। प्राकृतों में यह *-य-*-*इय*-*-इय्य-* या *-ईय-* तथा *-इज्ज-* में परिवर्तित हो गया था। कुछ आधुनिक आर्यभाषाओं में *-इज्ज>-ईज-* या *-इज*- *-इआ-* रूप प्राकृतों से होकर संस्कृत से आए हैं, जैसे सिंधी *करीजे*, मारवाड़ी *करीजणो*।[1] पुरानी ब्रजभाषा तथा अवधी में भी संयोगात्मक रूप मिलते हैं, जैसे अवधी *दीजिय*, *दरिअइ*।[2]

कुछ लोगों के मत में हिंदी के आदर-सूचक आज्ञार्थ के रू (*कीजिये* आदि) भी इससे प्रभावित हैं।

-आ- लगाकर कर्मवाच्य बनाने के कुछ उदाहरण बोलियों में पाए जाते हैं, जैसे *तन की तपन बुझाय* (तन की तपन बुझ जाती है), *कहावे* (कहा जाता है)। चैटर्जी के मतानुसार *-आ-* कर्मवाच्य की उत्पत्ति सं० नाम धातु के चिह्न *-आय-* से हुई है।[3]

हिंदी में भूत निश्चयार्थ काल संस्कृत के भूतकालिक कर्मवाच्य कृदंत से संबद्ध है। संस्कृत के कर्मणि प्रयोग के चिह्न हिंदी में अब तक

---

[1] चै., बे. लै., § ६५३

[2] सक., ए. अ., § २७३

[3] चै., बे. लै., § ६७१

मौजूद हैं अर्थात् अकर्मक धातुओं में क्रिया का यह रूप कर्ता से संबद्ध रहता है और सकर्मक धातु में कर्म से। पिछली अवस्था में कर्ता रण कारक में रक्खा जाता है—

सं०	हि०
कृष्णः चलितः	*कृष्ण चला*
कृष्णेन पुस्तिका पठिता	*कृष्ण ने पुस्तक पढ़ी*

आधुनिक मागधी भाषाओं में भूतकाल में कर्तरि प्रयोग ही रह या है। इसी कारण बिहार आदि पूर्वी प्रांतों के लोग अपनी बोलियों प्रभाव के कारण हिंदी में भी यथास्थान कर्मणि प्रयोग नहीं कर ते हैं। उधर के लोगों के मुंह से *उस ने आम खाया* के स्थान पर *आम खाया* निकलता है।

ए. प्रेरणार्थक धातु.

३२५. संस्कृत में प्रेरणार्थक (णिजंत) रूप धातु में *-अय-* गाकर बनता है। कुछ स्वरांत धातुओं में धातु और *-अय-* के बीच -प-भी लगता है। जैसे *√कृ कारयति*, *√हर् हासयति*, *किन्तु √दा पयति*, *√गै गापयति*। पाली प्राकृत में अधिकांश प्रेरणार्थक तुओं में-प-जुड़ने लगा था यद्यपि पाली काल तक यह वैकल्पिक हा, जैसे सं० *पाचयति*, पाली *पाचति*, *पाचेति*, *पचापेति*। प्राकृत में प्रेरणार्थक धातु बनाने के दो ढंग थे, एक में संस्कृत का *अय-ए-* परिवर्तित हो जाता था, जैसे सं० *कारयति* > प्रा० *कारेइ*, दूसरे में -प+प-में बदल जाता था, जिसमे प्राकृत में *करावेइ*, या *करावेइ* रूप बनते थे।[1]

हिंदी में प्रेरणार्थक धातु के चिह्न *-आ-* *-वा-* प्राचीन चिह्नों के रूपांतर मात्र हैं। अकर्मक धातुओं में *-आ-* लगाने से धातु सकर्मक मात्र होकर रह जाती है अतः ऐसी धातुओं के प्रेरणार्थक रूप *-वा-* लगा कर बनते हैं, जैसे *जलना*, *जलाना*, *जलवाना*; *पकना*, *पकाना*, *पकवाना*। सकर्मक धातुओं में *-आ-वा-वा-* दोनों चिह्न

---

[1] पी., क. ई., प्रा. ३, § २६

प्रेरणार्थ का ही बोध कराते हैं, जैसे *मिलना*, *मिलाना* या *मिलवा*
करना, *कराना* या *करवाना*। हिंदी में वास्तव में *-वा-* रूप व्युत्प
की दृष्टि से स्पष्ट प्रेरणार्थक है।

ऐ. नामधातु

३२६. नामधातु भारतीय आर्यभाषाओं में प्राचीनकाल से
पाए जाते हैं। संज्ञा या विशेषण में क्रिया के प्रत्यय जोड़ने से हिंदी
नामधातु बनते हैं। हिंदी नामधातु के मध्य में आने वाले *-आ-* का
संबंध संस्कृत नामधातु के चिह्न *-आय-* से जोड़ा जाता है
इस पर प्रेरणार्थक के *-आपय-* का प्रभाव भी माना जाता है
जो हो हिंदी में प्रेरणार्थक *-आ-* और नामधातु के *-आ-* के रू
में कोई भेद नहीं रह गया है।

ओ. संयुक्त क्रिया

३२७. प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं में जो काम प्रत्यय
आदि लगा कर किया जाता था वह काम अब बहुत कुछ संयुक्त
क्रियाओं से होता है। अन्य आधुनिक भाषाओं के समान हिंदी में भी
संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग बहुत पाया जाता है। हिंदी संयुक्त
क्रियाओं की रचना आधुनिक है, अतः इस संबंध में ऐतिहासिक
विवेचन असंभव है। संयुक्त क्रियायें द्राविड़ भाषाओं में भी बहुत
प्रचलित हैं,[1] किंतु उनका हिंदी पर प्रभाव पड़ना कठिन मालूम
पड़ता है। हिंदी संयुक्त क्रियाओं का विस्तृत वर्गीकरण गुरु[2] तथा
केलाग[3] के व्याकरणों में दिया हुआ है।

शब्द को दोहरा कर बनी हुई कुछ संयुक्त क्रियायें भी हिंदी में
पाई जाती हैं, जैसे *खटखटाना*, *फड़फड़ाना*, *तिलमिलाना*। ये प्रायः
अनुकरणमूलक हैं, और ऐतिहासिक व्याकरण की दृष्टि से ऐसी
साभ्यास क्रियायें कोई महत्त्व नहीं रखतीं।

[1] चै., बे. लै., § ७६५
[2] गु., हि. व्या., § ३९९-४३३
[3] कै., ई. हि. ग्रै., § ३४५-३६५

अध्याय १०

अव्यय

३२८. व्याकरण के अनुसार अव्यय प्रायः चार समूहों में
भक्त किए जाते हैं—(१) क्रियाविशेषण, (२) समुच्चयबोधक,
) संबंधसूचक और (४) विस्मयादिबोधक। हिंदी विस्मयादि-
क अव्ययों का कोई विशेष इतिहास नहीं है। व्युत्पत्ति की दृष्टि
कुछ शब्द अवश्य रोचक हैं जैसे हि० *दुहाई* (दो+हाय),
श (फा० *शादबाश*)। हि० *अर* का संबंध द्राविण भाषाओं
अड़े रूप से बतलाया जाता है। अधिकांश संबंधसूचक अव्ययों पर
चार 'संज्ञा' शीर्षक अध्याय में 'कारक-चिह्नों' के समान प्रयुक्त
य शब्द, नाम के प्रकरण में हो चुका है। अतः इस अध्याय में
ी क्रियाविशेषण और समुच्चयबोधक अव्ययों के संबंध में ही
चार किया गया है।

अ. क्रियाविशेषण

३२९. क्रियाविशेषणों की उत्पत्ति प्रायः संस्कृत संज्ञाओं
था सर्वनामों से हुई है। अर्थ की दृष्टि से ये कालवाचक, स्थान-
चक, दिशावाचक तथा रीतिवाचक इन चार मुख्य वर्गों में
भक्त किए जाते हैं। आजकल संस्कृत तथा फारसी-अरबी के भी
त से शब्द तत्सम या तद्भव रूपों में क्रियाविशेषण के समान
दी में प्रयुक्त होने लगे हैं। इतिहास की दृष्टि से ऐसे शब्द
शेष महत्त्व नहीं रखते।

¹बी., क. वै., भा० ३. § ८४

क. सर्वनाम-मूलक क्रियाविशेषण

३३०. कालवाचक—*अब, जब, तब, कब* (—*ब* लगाकर) वीम्स[1] के अनुसार अब का संबंध सं० *वेला* शब्द से है जिस ओर उड़िया के *एते वेल एवे* रूप भी संकेत करते हैं। इसी तरह ज *तब, कब* का संबंध भी वीम्स सं० *वेला* शब्द से ही जोड़ते हैं। इ सब में केवल सर्वनाम वाले अंश में भेद है। हिंदी खड़ी बोली त पंजाबी के *जद, तद, कद* की उत्पत्ति सं० *यदा, तदा, कदा* से स्प ही है।

चैटर्जी[2] के मतानुसार *अब* का संबंध वैदिक *एव, एवा* > सं *एवं*> प्रा० *एव्वं, एव्वं* से है। इसी ढंग पर वे अन्य कालवाच क्रियाविशेषणों का संबंध भी जोड़ते हैं।

ही के संयोग से हिंदी के ये क्रियाविशेषण *अभी (अब+ही)*, *कभी (कब+ही)* रूप धारण कर लेते हैं। *जभी, तभी* का प्रयोग अभ कम होता है।

हिंदी के इन क्रियाविशेषणों के भोजपुरी रूप *एवे* *जेबेर, तेबेर, केबेर* हैं, तथा व्रजभाषा में *अबै, जबै, तबै, कबै* प्रयुक्त होते हैं। वीम्स के अनुसार इन सब रूपों का संबं सं० *वेला* से ही है। व्रज *अबई* आदि *अब+ही* ही के ढंग से बने संयुक्त रूप मालूम पड़ते हैं।

३३१. स्थानवाचक—*यहां, वहां, जहां, तहां, कहां* (-*हां* लगाकर) वीम्स के अनुसार *हां* से युक्त इन स्थानवाचक रूपों का संबं सं० *स्थाने* से है (*तहां*—*तत्स्थाने*) अवधी के *एठिया, ओठिया* तथा भोजपुरी के *एटा, एटाई* रूप इसी व्युत्पत्ति की ओर संकेत करते हैं। हिंदी के इन क्रियाविशेषणों का उच्चारण *यां, वां, जां, तां, कां* भी

---

[1] बी., क. ग्रं., भा. ३, § ८१
[2] चै., बे. लें., § ६०२

तरफ झुकता जाता है। चैटर्जी[1] के अनुसार इन रूपों का संबंध म० भा० आ० के -त्थ-<सं० -त्र से है।

ब्रज के इतै, जितै, तितै, कितै का संबंध सं० अत्र, यत्र, तत्र, ,से माना जाता है।

३३२. दिशावाचक क्रियाविशेष—इधर, उधर, जिधर, तिधर धर। हिंदी के इन रूपों की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। बीम्स ने—भ्रंश का संबंध सं० मुख के लघुत्व-बोधक संभावित रूप मुखर* से या है, जैसे सं० मुखर*>म्हर (भोज० एम्हर, उम्हर) >न्हर बिहारी एहर) >न्धर >धर। यह व्युत्पत्ति संतोषजनक नहीं लूम होती।

३३३. रीतिवाचक यों, ज्यों, त्यों, क्यों (—यों लगाकर)।

बीम्स[2] इनका संबंध सं० मत्> प्रा० मन्तो से मानते हैं यद्यपि स्कृत में इस प्रत्यय से बने हुए रूप अर्थ की दृष्टि से परिमाण-चक होते हैं, जैसे इयत्, कियत् आदि। ध्वनि-साम्य की दृष्टि से गाली केमन्त आदि तथा अवधी इमि, जिमि, तिमि, किमि बीच के प मालूम होते हैं।

केलाग[3] हिंदी के इन रूपों का संबंध सं० इत्थं, कथं जैसे रूपों मानते हैं, किंतु हिंदी शब्दों में य के आगम का कोई संतोषजनक ारण नहीं देते। चैटर्जी[4] इनकी उत्पत्ति अप० जेंव, तेंव, केंव=जेंं, ां, केंं से मानते हैं और इन अपभ्रंश रूपों को प्रा० भा० आ० ई केव*, तेव* केव* संभावित रूपों से संबद्ध करते हैं जो उनके मत वैदिक एव की नकल पर बने होंगे। वास्तव में इन रूपों की ुत्पत्ति अत्यंत संदिग्ध है।

---

[1] चै, बे. लै., § ३०४
[2] बी, क. ग्रै., भा. ३, § ८१
[3] के, हि ग्रै., § ४९४
[4] चै, बे लै., § ६१०

हि० तड़के का संबंध √तड़ (टूटना) धातु के पूर्वकालिक कृदंत अव्यय से लगाया जाता है, किंतु यह व्युत्पत्ति संदिग्ध है।

हि० भोर शब्द का सं० √भा (चमकना) से संबंध सिद्ध नहीं होता।

हि० तुरंत तुरत < सं० अव्यय त्वरितम्।

हि० झट < सं० अव्यय झटति।

हि० अचानक की व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है। कुछ लोग इसका संबंध सं० अ+√चित 'बिना सोचे' से जोड़ते हैं और कुछ सं० चमत्कार > हि० चौंक के निकट से बताते हैं, किंतु दोनों व्युत्पत्तियाँ अत्यंत संदिग्ध हैं।

स्थानवाचक

हि० भीतर < सं० अभ्यंतर

हि० बाहिर < सं० बहिः

रीतिवाचक

हि० जानो < हि० जानना

हि० मानो < हि० मानना

हि० ठीक का सं० √स्था से संबंध संदिग्ध है।

हि० सचमुच का संबंध सं० सत्य से है। हिंदी में यह रूप दोहरा कर बनाया गया है।

अन्य

हि० हाँ की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। केलाग इसकी तुलना मराठी क्रिया आहे, आहों से करते हैं।

हि० नहीं को केलाग न+आहि का संयुक्त रूप बताते हैं।

---

[1] के., हि. ग्रै., § ४९९

[2] के., हि. ग्रै., § ३७२

परिशिष्ट

पारिभाषिक शब्द-संग्रह

अ. हिंदी-अंग्रेजी

अंकित लेख	Inscription
अग्र, अगला	Front
अघोष	Voiceless, breathed
अनुकरणमूलक	*Onomatopoetic*
अनुनासिक	Nasal
अनुरूपता	Assimilation
अनुलिपि	Transliteration
अंतर्वर्ती	Intermediate, mediate
अपवाद	Exception
अप्रयुक्त	Obsolete
अभ्यास	Duplication
अर्द्ध-विवृत	Half-open
अर्द्ध-संवृत	Half-close
अर्द्ध-स्वर	Semi-vowel
अलिजिह्वा, कौवा	Uvula
अलिजिह्व	Uvular
अल्पप्राण	Un-aspirated
अव्यय	Indeclinable
अस्पष्ट ल	Dark l
आदि स्वरागम	Prothesis
आधुनिक भारतीय आर्यभाषा	New Indo-Aryan
उच्चस्थानीय स्वर	High vowel
उच्चारण	Pronunciation
उच्चारण-स्थान	Place of articulation
उत्क्षिप्त	Flapped
उदासीन स्वर	Neutral vowel
उद्धृत शब्द	Loan-word
उपकुल	Sub-family (of speech)
उपशाखा	Sub-branch (of speech)
उपसर्ग	Prefix
उपसर्गात्मक अव्यय	Preposition
उपान्त्य	penultimate
उपालिजिह्वा	Pharyngeal

ऊष्म	Sibilant
ओष्ठ	Lip
ओष्ठ्य	Labial
औपम्य, सादृश्य	Analogy
कंठ्य	Velar, guttural
कंठ-तालव्य	Gutturo-Palatal
कंठोष्ठ्य	Gutturo-Labial
जिह्वामूलीय	Back guttural
कंपनयुक्त	Trilled
कर्तृवाचक संज्ञा	Noun of Agency
कारक	Case
काल	Tense
मूलकाल	radical
कृदंती काल	participial
संयुक्त काल	periphrastic
काल-रचना	formation of tenses
वर्तमान निश्चयार्थ	present indicative
भूत निश्चयार्थ	past indicative
भविष्य ,,	future indicative
वर्तमान संभावनार्थ	present conjunctive
भूत ,,	past conjunctive
आज्ञा	imperative
भविष्य आज्ञा	future imperative
वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ	present imperfect indicative
भूत ,, ,,	past imperfect indicative
भविष्य ,, ,,	future imperfect indicative
वर्तमान ,, संभावनार्थ	Present imperfect conjunctive
भूत ,, ,,	past imperfect conjunctive
वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ	present perfect indicative
भूत ,, ,,	past perfect indicative
भविष्य ,, ,,	future perfect indicative
वर्तमान ,, संभावनार्थ	present perfect conjunctive
भूत ,, ,,	past perfect conjunctive
क्रिया	Verb
सकर्मक	transitive
अकर्मक	intransitive
क्रियार्थक संज्ञा	Infinitive, verbal noun
क्रियारूप	Conjugation
	Mood

सभावनार्थ	*contingent*
ंदेहार्थ	presumptive
ाज्ञार्थ	imperative
ंतार्थ	negative contingent
ादरार्थ आज्ञा	optative
ेशेषण	Adverb
	Family (of speech)
	Participle
र्तमानकालिक कृदंत	present participle
ूतकालिक "	past participle
र्वकालिक "	conjunctive participle
समुदाय	Central group
	Paragraph
र्स	Voiced
	Voiced plosive
ाक	Tongue
ह्वाग्र	tip
ह्वामध्य	front
पश्चजिह्वा	middle
ह्वामूल	back
ह्वाफल	root
लीय	blade
	Uvular
	Palatal
	Palate
ठोर	hard
मल	soft
त्रिम	artificial
य	Dental
गीय	Pre-dental
ाय	Centro-dental
य	Post-dental
	Dento-labial, labio-dental
	Long
	Bilabial
त	Root
गिक	*Primary*
म	secondary
संयुक्त	denominative
अनुकरणमूलक	compounded and suffixed
ध्वनि	onomatopoeic
	Sound

ध्वनिविकार-संबंधी नियम	Phonetic law
ध्वनि-विज्ञान	Phonetics
ध्वनि-श्रेणी	Phoneme
ध्वनि-संबंधी, ध्वन्यात्मक	Phonetic
ध्वनि-संबंधी चिह्न	Phonetic sign
ध्वन्यात्मक लेखन या लिपि	Phonetic transcription
नामधातु	Denominative
नासिका विवर	Nasal cavity
नियम, व्यापक नियम	Law
निरर्थक, स्वार्थिक	Pleonastic
निम्नस्थानीय स्वर	Law vowel
परसर्ग	Postposition
पश्च, पिछला	Back
पुरुष	Person
उत्तम	first
मध्यम	second
प्रथम	third
पार्श्विक	Lateraral
प्रत्यय	Suffix
प्रधान स्वर	Cardinal vowel
प्रयोगात्मक ध्वनिशास्त्र	Experimental phonetics
प्राचीन भारतीय आर्यभाषा	Old Indo-Aryan
प्रामाणिक उच्चारण	Standard pronunciation
प्रेरणार्थक धातु	Causative
फुसफुसाहट	Whisper
फुसफुसाहटवाला स्वर	Whispered vowel
बल	Stress
वाक्यबल	sentence stress
अक्षर बल	syllabic stress
शब्द बल	word stress
बल देना	to stress
बली	stressed
बलहीन	unstressed
बोली	Dialect
भारत-ईरानी	Indo-Iranian
भारत-यूरोपीय कुल	Indo-European Family
भारतीय आर्यभाषा	Indo-Aryan speech
भाषा	Language, speech
भाषा-ध्वनि	Speech-sound
भाषण अवयव	Speech-mechanism
भाषा-विज्ञान	Linguistics, philology, science of language

भाषा-तत्वविज्ञ	Philologist
भाषा-समुदाय	Group of speech
मध्यकालीन भारतीय आर्यभा	Middle Indo-Aryan
मध्यवर्ती	Inner
महाप्राण	Aspirated
महाप्राणत्व	Aspiration
मात्रा-काल	Quantity (of a vowel)
मिथ्या औपम्य या सादृश्य	False analogy
मिश्रित स्वर	Mixed vowel
मुखरता, व्यक्तता	Sonority
मुखविवर	Mouth cavity
मूलधातु	Primary root
मूर्द्धन्य	Retroflex
मूल रूप	Direct form
मूल शब्द, प्रतिपदिक	Stem
मूल स्वर	Simple vowel
रचनात्मक उपसर्ग तथा प्रत्यय	Forative Affix
लिपि	Script
लिपिचिह्न, अक्षर	Character
लिंग	Gender
लोप	Elision
वंशक्रम	Genealogy
वंशक्रमानुसार वर्गीकरण	Genealogical classification
वचन	Number
वर्ग	Class
वर्गीकरण	Classification
वर्त्स्य	Alveolar
वर्ण	Letter, alphabetic sound
वर्णमाला	Alphabet
वाक्य-विन्यास	Construction
कर्तृवाचक वाक्य विन्या	active construction
कर्मवाचक ,, ,,	passive construction
वाक्यांश	Phrase
वाच्य	Voice
कर्तृ	active
कर्म	passive
बाह्य	Outer
विकार	Change
विकृत रूप	Oblique form
विदेशी शब्द	Foreign words
विपर्यय	Metathesis
वियोगात्मक	Analytic

विवृत (स्वर)	Open (vowel)
विवृत्ति, विच्छेद	Hiatus
विस्मयादिबोधक	Interjection
व्यंजन	Consonants
व्युत्पत्ति	Derivation
शब्द-विन्यास	Spelling
शब्द-समूह	Vocabulary
शब्दांश, अक्षर	Syllable
एकाक्षरी शब्द	monosyllabic
अनेकाक्षरी शब्द	polysyllabic
शाखा	Branch (of speech)
श्रुति	Glide
पश्चात् श्रुति	off glide
पूर्व श्रुति	on glide
श्वास	Breath
निःश्वास	out
प्रश्वास	in
श्वास नाल	Wind pipe
संकेत	Symbol
संख्यावाचक	Numerals
पूर्णांक संख्यावाचक	cardinal
क्रम संख्यावाचक	ordinal
अपूर्ण संख्यावाचक	*fractional*
समुदाय संख्यावाचक	multiplicative
संघर्ष	Friction
संघर्षी	Fricative
[illegible]	Declension
संयुक्त क्रिया	Compound verb
संयुक्त व्यंजन	*Consonantal group*
संयुक्त स्वर	Diphthong
संयोगात्मक	Synthetic
संवृत (स्वर)	*Close (vowel)*
समास	Compound
समुच्चय बोधक	Conjunction
सहायक क्रिया	Auxiliary verb
सर्वनाम	Pronoun
पुरुषवाचक	personal
निश्चयवाचक	demonstrative
संबंधवाचक	relative
नित्यसंबंधी	correlative
प्रश्नवाचक	interrogative

Analytic	वियोगात्मक
Aspirate	ह-कार
aspirated consonant	महाप्राण व्यंजन
aspiration	महाप्राणत्व
Anaptyxis	मध्यस्वरागम
Assimilation	अनुरूपता
Auxiliary verb	सहायक क्रिया
Back	पश्च, पिछला
Bilabial	ओष्ठ्य
Branch (of speech)	शाखा
Breath	श्वास
out	निःश्वास
in	प्रश्वास
Breathed	दे० *Voiceless*
Cardinal vowel	प्रधान स्वर
Case	कारक
Causative	प्रेरणार्थक धातु
Central group	केन्द्रवर्ती समुदाय
Change	विकार
Character	लिपिचिह्न, अक्षर
Class	वर्ग
Classification	वर्गीकरण
Clear *l*	स्पष्ट ल
Close (vowel)	संवृत (स्वर)
Compound	समास
Compound verb	संयुक्त क्रिया
Conjugation	क्रिया रूप
Conjunction	समुच्चयबोधक
Consonant	व्यंजन
consonantal group	संयुक्त व्यंजन
Construction	वाक्य-विन्यास
active	कर्तृवाचक
passive	कर्मवाचक
Dark *l*	अस्पष्ट ल
Declension	संज्ञा-रूप
Denominative	नामधातु
Dental	दंत्य
Dento-labial	दंत्योष्ठ
Derivation	व्युत्पत्ति
Dialect	बोली
Diphthong	संयुक्त स्वर

Duplicated verb	साभ्यास क्रिया
Duplication	अभ्यास
Elision	लोप
Epiglottis	स्वरयंत्रमुख आवरण
Exception	अपवाद
Experimental phonetics	प्रयोगात्मक ध्वनिशास्त्र
Explosion	स्फोट
Explosive	स्फोटक
False analogy	मिथ्या औपम्य या सादृश्य
Family (of speech)	कुल (भाषा)
Flapped	उत्क्षिप्त
Foreign words	विदेशी शब्द
Formative affix	रचनात्मक उपसर्ग तथा प्रत्यय (रचनात्मक अनुबंध)
Fricative	संघर्षी
Friction	संघर्ष
Front	अग्र, अगला
Gender	लिंग
Genealogical classification	वंशक्रमानुसार वर्गीकरण
Genealogy	वंश-क्रम
Glide	श्रुति
off-glide	पश्चात् श्रुति
on-glide	पूर्व श्रुति
Glottal	स्वरयंत्रमुखी
Group of speech	भाषा-समुदाय
Guttural	कण्ठ्य
gutturo-palatal	कण्ठ-तालव्य
gutturo-labial	कण्ठोष्ठ्य
back-guttural	जिह्वामूलीय
Half-close	अर्द्ध-संवृत
Half-open	अर्द्धविवृत
Hiatus	विवृत्ति, विच्छेद
High vowel	उच्चस्थानीय स्वर
Indeclinable	अव्यय
Indo-Aryan speech	भारतीय आर्यभाषा
Indo-European (Family)	भारत-यूरोपीय कुल
Indo-Iranian	भारत-ईरानी
Infinitive	क्रियार्थक शब्द
Inner	मध्यवर्ती
Inscription	अंकित लेख
Interjection	विस्मयादिबोधक
Intermediate, mediate	अन्तर्वर्ती

Labial	ओष्ठ्य
Labio-dental	दे० Dento labial
Language	भाषा
Larynx	स्वरयंत्र
Lateral	पार्श्विक
Law	नियम, व्यापक नियम
Letter	वर्ण
Lip	ओष्ठ
Linguistics	भाषा-विज्ञान
Loan-word	उद्धृत शब्द
Long	दीर्घ
Low vowel	निम्नस्थानीय स्वर
Mechanism of speech	भाषण अवयव
Metathesis	विपर्यय
Middle Indo-Aryan	मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा
Mixed vowel	मिश्रित स्वर
Mood	क्रियार्थभेद
Indicative	सामान्यार्थ, निश्चयार्थ
contingent	संभावनार्थ
presumptive	संदेहार्थ
imperative	आज्ञार्थ
negative contingent	संकेतार्थ
optative	आदरार्थ
Mouth cavity	मुख विवर
Nasal	अनुनासिक
Nasal Cavity	नासिका विवर
Nasalized	सानुनासिक
Nasalization	सानुनासिकता
Neutral vowel	उदासीन स्वर
New Indo-Aryan	आधुनिक आर्यभाषा
Noun of Agency	कर्तृवाची संज्ञा
Number	वचन
Numeral	संख्यावाचक
cardinal	पूर्ण संख्यावाचक
ordinal	क्रम संख्यावाचक
fractional	अपूर्ण संख्यावाचक
multiplicative	समुदाय संख्यावाचक
Oblique form	विकृत रूप
Obsolete	अप्रयुक्त
Old Indo-Aryan	प्राचीन भारतीय आर्यभाषा
Open (vowel)	विवृत (स्वर)

Outer	बाह्य
Palatal	तालव्य (कठोर)
Palate	तालु
hard	कठोर
soft	कोमल
artificial	कृत्रिम
Paragraph	खंड
Participle	कृदन्त
present	वर्तमानकालिक
past	भूतकालिक
conjunctive	पूर्वकालिक
Penultimate	उपान्त्य
Person	पुरुष
first	उत्तम
second	मध्यम
third	प्रथम
Pharyngeal	उपालिजिह्व
Pitch-accent	दे० Musical accent
Philologist	भाषा-विज्ञानी
Philology	दे० Linguistics
Phoneme	ध्वनि श्रेणी
Phonetic	ध्वनिसंबंधी, ध्वन्यात्मक
Phonetic Law	ध्वनिविकार-संबंधी नियम
Phonetics	ध्वनि विज्ञान
Phonetic sign	ध्वनि-संबंधी चिह्न
Phonetic transcription	ध्वन्यात्मक लेखन या लिपि
Phrase	वाक्यांश
Place of articulation	उच्चारण स्थान
Pleonastic	निरर्थक प्रत्यय, स्वार्थिक
Post-dental	दन्तमूलीय
Post-position	परसर्ग
Pre-dental	दन्त्याग्रीय
centro-dental	दन्तमध्यीय
Prefix	उपसर्ग
Preposition	उपसर्गीभूत अव्यय
Primary roots	मूलधातु
Pronoun	सर्वनाम
Personal	पुरुषवाचक
demonstrative	निश्चयवाचक
relative	संबंधवाचक
correlative	नित्यसंबंधी
interrogative	प्रश्नवाचक

indefinite	अनिश्चयवाचक
reflexive	निजवाचक
honorific	आदरवाचक
Pronunciation	उच्चारण
Prothesis	आदिस्वरागम
Quality (of a vowel)	स्थानभेद
Quantity (of a vowel)	मात्राकाल
Retroflex	मूर्द्धन्य
Rolled	लुंठित
Root	धातु
Primary	मूल
secondary	यौगिक
denominative	नाम
compound	संयुक्त
onomatopoetic	अनुकरणमूलक
Science of Language Linguistics	दे० Linguistics
Script	लिपि
Semi-vowel	अर्द्धस्वर
Short	ह्रस्व
Sibilant	ऊष्म
Simple vowel	मूलस्वर
Sonority	मुखरता या व्यक्तता
Sound	ध्वनि
Speech	भाषा
speech-sound	भाषा-ध्वनि
speech-mechanism	भाषण-अवयव
Spelling	शब्द-विन्यास
Spontaneous Nasalization	स्वतः अनुनासिकता
Standard pronunciation	प्रामाणिक उच्चारण
Stem	मूलशब्द, प्रतिपादित
Stop	स्पर्श
Stress	बल
sentence stress	वाक्य-बल
syllabic ,,	अक्षर बल
word ,,	शब्द बल
to stress	बल देना
stressed	बली
Sub-branch	उपशाखा
Sub-family	उपकुल
Suffix	प्रत्यय
Syllable	शब्दांश, अक्षर

Polysyllabic	अनेकाक्षरी
Symbol	संकेत, प्रतीक
Synthetic	संयोगात्मक
Tense	काल
redical	मूल काल
participial	कृदंती काल
periphrastic	संयुक्त काल
formation of tense	काल-रचना
present indicative	वर्तमान निश्चयार्थ
past indicative	भूत ,,
future indicative	भविष्य ,,
present conjunctive	वर्तमान संभावनार्थ
past conjunctive	भूत ,,
imperative	आज्ञा
future imperative	भविष्य आज्ञा
present imperfect indicative	वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ
Past imperfect indicative	भूत ,, ,,
future imperfect indicative	भविष्य ,, ,,
present imperfect conjunctive	वर्तमान ,, संभावनार्थ
past imperfect conjunctive	भूत ,, ,,
present perfect indicative	वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ
past perfect indicative	भूत ,, ,,
future perfect indicative	भविष्य ,, ,,
present perfect conjunctive	वर्तमान ,, संभावनार्थ
past perfect conjunctive	भूत ,, ,,
Tongue	जिह्वा
back	पश्च-जिह्वा
blade	जिह्वा-फल
front	जिह्वाग्र
middle	जिह्वा-मध्य
root	जिह्वा-मूल
tip	नोक
Transliteration	अनुलिपि
Trilled	कंपनयुक्त
Unaspirated	अल्पप्राण
Unstressed	बलहीन
Uvula	अलिजिह्वा, कौवा
Uvular	अलिजिह्व
Velar	कण्ठ्य

Verb	क्रिया
transitive	सकर्मक
intransitive	अकर्मक
Verbal noun	क्रियार्थक संज्ञा
Voice	वाच्य
active	कर्तृ
passive	कर्म
Voiced	घोष
voiced plosive	घोष स्पर्श
Voiceless, breathed	अघोष
Vocabulary	शब्दसमूह
Vocal chords	स्वरतंत्री
Vowel	स्वर
initial	आदि
middle	मध्य
final	अंत्य
front	अग्र
central	अन्तर
back	पश्च
Whisper	फुसफुसाहट
Whispered vowel	फुसफुसाहटवाला स्वर
Wind-pipe	श्वास नाल

अनुक्रमणिका

सूचना—साधारण अंक पैराग्राफ के सूचक है तथा मोटे टाइप के अंक भूमिका के पृष्ठों के सूचक हैं।

लेखक की अन्य पुस्तकें

१. **La langue braj.**
   Published by Adiren-Maisonneuve.
   5, rue be Tournon Paris (6) 1935, Price 35 Francs.
   यह फ्रांसीसी में ब्रजभाषा पर थीसिस है जिस पर पेरिस यूनीवर्सिटी ने लेखक को 'डी० लिट्०' की उपाधि दी थी।

२. ब्रजभाषा व्याकरण
   प्रकाशक, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, १९३७, मूल्य १.००

३. अष्टछाप
   प्रकाशक, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, १९३८, मूल्य १.००
   ब्रजभाषा गद्य में लिखी हुई चौरासी तथा दो सौ बावन वार्ताओं से अष्टछाप कवियों के जीवन-चरित्रों का संकलन।

४. हिंदी भाषा और लिपि
   प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, बारहवाँ संस्करण, १९४९, मूल्य १ २५

५. ग्रामीण हिंदी
   प्रकाशक, साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड, प्रयाग, मूल्य .७५ नये पैसे

६. हिंदी राष्ट्र
   प्रकाशक, लीडर प्रेस, प्रयाग, मूल्य ७५ नये पैसे

७. विचारधारा
   प्रकाशक, साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड, प्रयाग, निबन्ध-संग्रह, द्वितीय संस्करण १९५४, मूल्य ३.५०

८. यूरोप के पत्र
   प्रकाशक, साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड, प्रयाग, मूल्य ४.००

९. ब्रजभाषा
   फ्रांसीसी में लिखे थीसिस का परिवर्तित हिंदी रूपान्तर—प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद। मूल्य ६.००

१०. मध्यदेश

ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन—प्रकाशक, बिहार राष्ट्रभाषा प
पटना १९५५, मूल्य ७.००

११. सूरसागर सार

सूरसागर के ८०० उत्कृष्ट पदों का संकलन—प्रकाशक, साहित्य भवन (प्रा
लिमिटेड, इलाहाबाद, १९५४, मूल्य ५.००

१२. मेरी कालिज की डायरी

प्रकाशक, साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड, इलाहाबाद, १९५८, मूल्य १